Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

सूचना क्रान्ति का समाज पर प्रभाव

डॉ राजेन्द्र प्रसाद यादव
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ज्ञानपुर, भदोही

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिये अर्थात् सामुदायिक जीवन व्यतीत करने के लिए उसे कुछ नियमों और व्यवस्थाओं के अन्तर्गत चलना पड़ता है। प्रारम्भ में तो भाषा और लिपि के अभाव में केवल संकेतों के द्वारा विचार विनियम हुआ करता था परन्तु धीरे–धीरे भाषा और लिपि के आविष्कार ने मानव के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिये। जिस प्रकार आग और पहिये के प्रयोग ने मानव को सभ्यता की ओर अग्रसर किया तथा उसे एक स्थायित्व रूप की जीवन शैली प्रदान की। उसी प्रकार विचार, अभिव्यक्ति आदि को समझने तथा दूसरों को समझाने एवं दूर तक विस्तारित करने में भाषा ने अपना योगदान दिया। प्रारम्भ में तो सूचनाओं को लिखकर व्यक्तियों या पक्षियों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया जाता था जिससे समय और गोपनियता दोनों की हानि होती थी। धीरे–धीरे सूचना के अन्य माध्यमों का अविष्कार हुआ जैसे डाक सेवा, टेलीफोन एवं तार सेवा जिसने मानव के जीवन में प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन किये। आज सूचना क्रांति का युग चल रहा है जिसकी धुरी कम्प्यूटर और इंटरनेट है। आज इस सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में हर पहलू इन्हीं व्यवस्थाओं से प्रभावित है। प्रत्येक क्षेत्र का कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है जिससे समय की बचत होती है और त्वरित सूचनाओं का आदान प्रदान होता है। इस सूचना क्रान्ति के माध्यम से देश में एक ऐसे वर्ग का सृजन हुआ है जो अपने ज्ञान के बल पर विश्व में भारत का नाम रोशन कर रहा है और आने वाले समय में सूचना क्षेत्र में भारत को महाशक्ति बनने में तनिक भी संदेह नहीं रह जायेगा। सूचना क्रांति के वर्तमान दौर में ज्ञान ही शक्ति है वाली कहावत और भी जीवन्त हो उठी है। इसने सरस्वती और लक्ष्मी के मध्य चली आ रही दूरी को पार कर दोनों का संगम करा दिया है। इस क्रान्ति ने विश्व को एक वृहद रूप में नहीं बल्कि एक सूक्ष्म रूप से समेट दिया है उदाहरणस्वरूप हम एशिया महाद्वीप में बैठे अमेरिका की पल पल की सूचना ले लेते हैं।

सूचना क्रांति ने मानव के जीवन के सभी पक्षो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामुदायिक, धार्मिक आदि को प्रभावित किया है अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र को मानव के अनुकूल बनाने का प्रयास अधिक से अधिक मात्रा में किया है। ई0 शिक्षा, ई0 व्यापार, ई0 वाणिज्य, ई–मेडिसिन आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। कुछ राष्ट्र अभी भी इस सूचना क्रांति से स्वयं को दूर रक्खे हुये हैं अतः इसका परिणाम यह हो रहा है कि सूचना प्रौद्योगिकी का गुर जानने वाले बहुत जल्दी समृद्ध होते जा रहे हैं और जो सूचना प्रौद्योगिकी का मर्म नहीं समझ पा रहा है या इस क्रांति में स्वयं को शामिल नहीं कर रहा है वह असीमित लाभ की शक्ति से वंचित रह हाशिये में चला जा रहा है। इस प्रकार समाज में यह सूचना क्रांति एक 'डिजिटल रेखा' खींचती जा रही है। जिसके ऊपर जीवनयापन करने वाली जनता समाज की मुख्यधारा से जुड़ सकेगी और इससे नीचे रहने वाले लोग केवल तेजी से बदलती दुनिया को बस अचंभित हो देखते रहेंगें। हम यहां पर सूचना क्रांति के प्रभावों का सभी स्तर पर मूल्यांकन करेंगे तथा यह भी देखेंगे कि क्या यह क्रांति सही दिशा में हो रही है ? क्या यह हमारी संस्कृति और सभ्यता के साथ न्याय कर रही है ? और जो सबसे विकट प्रश्न सम्मुख उपस्थित होता है। वह यह है कि क्या इन क्रांति से समाज के सभी वर्गों का उत्थान सम्भव है ?

सूचना क्रांति के यदि सामाजिक प्रभावों के बारे में चर्चा करें तो समाज में इस क्रांति ने लोगों के जीवन स्तर पर व्यापक बदलाव ला दिया है। हम आज शिक्षा जगत को ही ले लें तो हमारे प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक को कम्प्यूटर के माध्यम से जोड़ा जा रहा है यद्यपि यह व्यवस्था सभी अपने शिशु रूप में ही है लेकिन हम इस ओर अग्रसर हो रहे हैं। हमारे बहुत से विश्वविद्यालय अब ऑन लाइन हो चुके हैं कुछ तो दूरस्थ शिक्षा कम्प्यूटर के माध्यम से दे रहे हैं और परीक्षा भी ऑन लाइन होती है। टेली–कान्फ्रेन्सिंग के जरिये यहां के वैज्ञानिक विदेशों में बातचीत करते हैं तथा पुस्तकालयों के ऑन लाइन होने पर आप किसी भी पुस्तक को कम्प्यूटर के जरिये पढ़ सकते हैं।

शिक्षा के पश्चात् स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी सूचना क्रांति ने स्वयं को वरदान सिद्ध किया है। टेलीमेडिसिन की मदद से डॉक्टर दूर स्थित मरीजों की टेलीकम्प्यूनिकेशन व सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से मरीज से बातचीत कर सकता है और उसकी शंकाओं का निवारण कर सकता है उसकी रिपोर्ट देख सकता है और तो और अपनी फीस का ऑनलाइन भुगतान भी ले सकता है। विश्व में कहीं पर भी किसी बीमारी की नयी दवा का आविष्कार पता चलने पर मरीज उसे मंगा सकता है तथा इलाज करवाने वहां जा सकता है और जाने से पहले वहां से सम्बन्धित सभी जानकारियां प्राप्त कर सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी का मूर्त रूप सूचना क्रांति है इस क्रांति के माध्मय से अन्य क्षेत्र जैसे रेलवे आरक्षण, विज्ञान आरक्षण, बैंकिंग प्रणाली, बीमा क्षेत्र, टेलीफोन, बिजली बिल जैसे क्षेत्र जो पहले बेहद ऊबाऊ और थका देने वाले क्षेत्र माने जाते थे अब कम्प्यूटर की मदद से इन क्षेत्रों में कार्य को बेहद सरल बना दिया गया है। जिससे नीरसता कम हुयी है और इन क्षेत्रों में उत्पादकता और कार्यकुशलता में बहुत सुधार हुआ है।

सूचना क्रांति ने बैंकिंग को ई–बैंकिंग में परिवर्तन कर दिया है। बैंकिंग क्षेत्र में कम्प्यूटरों के प्रयोग व नेटवर्किंग के चलते तेजी से स्वचालित ट्रेलर मशीन, टेलीबैंकिंग, होम बैंकिंग, क्रेडिट कार्ड, स्मार्ट कार्ड, इलेक्ट्रानिक फण्ड ट्रांसफर आदि व्यवस्थायें अपनायी जा रही हैं। व्यापार के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी बदलाव हुआ। कहीं भी किसी प्रकार की वस्तु का आयात और निर्यात किया जा सकता है जहां इंटरनेट की सेवा उपलब्ध है। व्यापारी वर्ग को हमेशा बाजार के उतार चढ़ावों की चिन्ता रहती है अतः उन्हें पल पल की जानकारी मिलती रहती है ताकि उसी के हिसाब से वे अपनी नीतियां निर्धारित कर सकें।

प्रशासन के क्षेत्र में सूचना क्रांति ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। हम इसके माध्यम से अपनी प्रशासनिक व्यवस्था को चुस्त एवं दुरूस्त करने में सक्षम हुय हैं। इस प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप प्रशासन के सभी क्षेत्र निरन्तर एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं। अतः यदि आवयश्कता पड़ जाये तो भारत के गृह सचिव से टेलीकान्फ्रेसिंग के जरिये एक छोटे से ग्राम प्रधान की बात हो सकती है जिसकी कल्पना पहले नहीं की जा सकती थी। पुलिस को अपराधियों को पकड़ने में इससे बहुत सहायता मिलती है। अपराधियों के बारे में सटीक एवं गोपनीय जानकारी अधिकारियों और उनके अधीनस्थों को इसी के माध्यम से प्राप्त होती है। कम्प्यूटर पर आधारित कैमरों का प्रयोग करके महत्वपूर्ण स्थानों में सदैव निगरानी रक्खी जाती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ई–प्रशासन कम्प्यूटरों का अनुप्रयोग करके प्रशासनिक व्यवस्था को अधिक शक्तिशाली, पारदर्शी, जवाबदेह, व त्वरित कार्यवाही वाला बनाने पर आधारित है।

इंटरनेट पर संचार का स्वरूप है ई–मेल जो अत्यन्त सस्ती व तीव्र है। ई–मेल कम्प्यूटर से कम्प्यूटर को डाक पहुंचाने की व्यवस्था है। यह बहुत त्वरित गति से होता है और जहां पहुंचना है उसके ई–मेल बैंग में जाकर संग्रहीत हो जाती है। इस सेवा से सभी क्षेत्रों में लाभ पहुंचा है और भारत जैसे

विविधता पूर्ण राष्ट्र में, जो भौगोलिक, सामाजिक तथा सभी क्षेत्रों में विविधतापूर्ण है, में इस सेवा से सूचनाओं के त्वरित गति से पहुंचाना आवश्यक होता है।

मनोरंजन के क्षेत्र में भी सूचना क्रांति ने बहुत व्यापक स्तर पर बदलाव ला दिया है। आज हम मनोरंजन के क्षेत्र में मात्र कुछ वस्तुओं तक सीमित नहीं है वरन् हमारे पास आज मनोरंजन के हजारों विकल्प मौजूद हैं चाहे तो हम कम्प्यूटर में बैठकर इंटरनेट के माध्यम से विश्व में कहीं भी किसी प्रकार के कार्यक्रमों का लुफ्त उठायें या तो उसी कम्प्यूटर में बैठकर गेम खेले या सीडी द्वारा फिल्म देखे और यदि अन्य प्रकार से मनोरंजन करना है तो टीवी द्वारा बहुत से चैनल उपलब्ध हैं जो हमें विभिन्न प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रम उपलब्ध कराते हैं। अब एक नयी प्रणाली का भी आविष्कार हो चुका है जिसे डी0टी0एच0 की संज्ञा दी गयी है जो श्हरी या नगरीय क्षेत्रों से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय हो रहा है क्योंकि यह निःशुल्क एक बार भुगतान करके सीधे उपग्रह के माध्यम से बहुत से टीवी चैनलों द्वारा मनोरंजन तथा ज्ञानवर्द्धन दोनों करता है। मनोरंजन के जिस क्षेत्र में व्यक्ति की रूचि हो वह उसी क्षेत्र के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकता है जो पहले इंटरनेट के अभाव में संभव नहीं थीं।

सूचना प्रौद्योगिकी का यदि वास्तव में मनुष्य को लाभ हुआ है तो वह है मीडिया के क्षेत्र में। लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में स्थापित पत्रकारिता ने स्वयं को नये कलेवर में पेश किया है। प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनों का ही अपनी–अपनी जगह पर महत्व है और ये दोनों एक दूसरे से अभिन्न भी हैं अर्थात एक दूसरे के पूरक भी हैं। हमारे न्यूज चैनलों ने समाज की बहुत सही वास्तविकताओं अर्थात कडुवे सत्यों को उजागर किया जिसके बारे में अभी तक लोग कल्पना नहीं कर सकते थे जिसे रिश्वत लेकर प्रश्न पूछना, सरकारी कार्यो में धाँधली, खोजी पत्रकारिता के तहत कई स्टिंग आपरेशन आदि। इलेक्ट्रानिक मीडिया के व्यापक प्रचार–प्रसार से एक ऐसे मंच का सृजन हुआ है। जिस मंच के द्वारा कोई भी व्यक्ति जो देश के बारे में सचेत हैं और अपनी राय बेबाकी से व्यक्त कर सकता है, उसे सुविधा हुयी है। भारत जैसे राष्ट्र में यह बहुत आवश्यक है क्योंकि यहां का इतना विशाल मानवीय संसाधन अपनी बात ऊपर तक पहुंचाने का माध्यम चाहता था जो सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से उपलब्ध हो गया। इसका एक दूसरा पहलू भी है कि न्यूज चैनल इस प्रकार का कार्य करके राजनीतिज्ञों और प्रशासनिक अधिकारियों को जनता के प्रति जवाबदेह बनाने की दिशा में कठोर कदम है क्योंकि बंद कमरे में नीति निर्धारित करना और जनता के सामने नीति निर्धारित करने में बहुत अंतर होता है।

किसी भी राष्ट्र के विकास अर्थात् समग्र विकास की कल्पना तब तक नहीं की जा सकती जब तक वहां के निवासियों का उचित प्रकार से नियोजन न किया जाये अर्थात बेरोजगारी की स्थिति का सूचकांक जितना ऊपर होगा विकास उतनी धीमी गति से होगा। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से रोजगार की बहुत दिशायें खुली हैं। आज विभिन्न प्रकार की टेलीफोन कम्पनियां, आऊटसोर्सिंग कम्पनियां तथा कम्प्यूटर आधारित उद्योगों के लोगों को आजीविका उपलब्ध करायी है। भारत में एक नवीन धनाढ्य वर्ग उभरा है जो देश के आर्थिक विकास में बहुत साथ दे रहा है। सरकार भी इस ओर बहुत ध्यान दे रही है क्योंकि यह हमारा मुनाफा कमाने वाला क्षेत्र है। अतः सरकार ने कम्प्यूटर शिक्षा को सभी शैक्षिक क्षेत्रों में लागू करेन के लिए विश्व की नई नामी–गिरामी कम्पनियों से समझौते किये हैं जो कई राज्यों में लागू भी हो चुके हैं।

सूचना क्रांति से हमें सामरिक क्षेत्र में भी सहायता मिलती है। सेनाओं को सही स्थान पर लगाना, दुश्मन की गतिविधियों की सटीक जानकारी प्राप्त करना और शंतिकाल में भी सीमाओं की निगरानी उपग्रह आधारित निगरानी प्रणाली से करना बहुत सारी सुविधायें हमें सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राप्त हुयी है

जिससे धन तथा जन दोनों की हानि से हम बचे रहते है। हमें आज अपनी सामरिक शक्ति को ठोस करने के लिए बहुत प्रकार की सूचना प्रणालियों की आवश्यकता है जिस पर कार्य भी चल रहा है आशा यही है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ हर उस स्तर पर लेगा जिस स्तर पर हमारी स्वतंत्रता और संप्रभुता को हानि न पहुंचती हो।

सूचना प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन की दशा और दिशा दोनों मे ंपरिवर्तन कर दिया। यद्यपि भारत के ग्रामीण स्तरों पर अभी यह अपने प्रारम्भिक दौर में है क्योंकि हम अमेरिका या अन्य यूरोपीय देशों से मुकाबला नहीं कर सकते क्योंकि हम एक विकाशील देश हैं वे विकसित। लेकिन भारत धीरे–धीरे इस क्षेत्र में विश्व के किसी भी देश को पीछे करने की क्षमता रखता है क्योंकि इस समय भारत संसार का सबसे अधिक युवा राष्ट्र है और युवा वर्ग ही किसी राष्ट्र का भविष्य निर्माता होता है और भारत एक कृषि प्रधान देश है और गाँवों का देश है अतः पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से गाँवों में सूचना प्रौद्योगिकी का व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार किया जाये ताकि सभी वर्ग इससे जुड़ सकें तथा लाभान्वित हो सके क्योंकि शहरी व्यक्ति तो सूचना क्रांति का लाभ उठा रहा है लेकिन ग्रामीण व्यक्ति उतना नहीं। इसके कारण हैं जिस पर विचार करना है।

सूचना क्रांति के कुछ नकारात्मक पक्ष भी हैं जिस पर भी ध्यान देना आवश्यक है क्यांकि यह क्रांति एक ऐसी असमानता की रेखा खींच रही है जिसे यदि समय रहते नहीं पाटा गया तो यह विनाश की ओर ले जायेगी। शैक्षिक क्षेत्र में सूचना क्रांति का व्यापक स्तर पर प्रयोग हो रहा है लेकिन सही नीति एवं क्रियान्वयन के अभाव में छात्रों का नैतिक स्तर गिर रहा है जो हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के लिये खतरनाक हो सकता है, जैसे मोबाइल से भेज जा रहे अश्लील एसएमएस या एमएमएस जो किशोरों द्वारा अधिक प्रयोग में लाये जाते हैं।

व्यापार के क्षेत्र में इंटरनेट के माध्यम से अवैध व्यापार अर्थात मादक पदार्थ या वैश्यावृत्ति को भी संचालित किया जा रहा है जिसको रोकने के लिए कठोर कदम उठाना आवश्यक है यद्यपि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता परन्तु न्यूनतम तो किया जा सकता है।

प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सूचनायें लीक होने के संदर्भ में और देश की प्रमुख सामरिक साइटों के हैक होने के खतरे जिसे कुशल विशेषज्ञों की टीम द्वारा रोकने के अधिक तथा प्रभावशाली प्रयास किये जाने चाहिये नहीं तो हमारी एकता और अखंडता खतरे में पड़ सकती है।

टीवी चैनलों पर भी निगरानी आवश्यक है क्योंकि कुछ टीवी चैनल सस्ती लोकप्रियता बटोरने के चक्कर में और अधिक त्वरित सूचना प्रदान करने के लिए तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर पेश करते हैं तथा जातीय उन्मादों को अधिक प्रभावी तरीके से दिखाकर लोगों की भावनायें भी भड़का देते हैं। धार्मिक क्षेत्र में यह अधिक देखने को मिलता है। अतः मीडिया को उसकी नैतिक जिम्मेदारी का अहसास कराते हुए एक ऐसी नीति का निर्धारण हो जो न तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीनती हो और न ही व्यक्ति की गोपनियता।

अन्त में जो सबसे नकारात्मक प्रभाव है वह यह कि हमारे देश में 40 प्रतिशत जनता अभी भी इस क्रांति से पूर्णतः दूर है। अतः उन्हें भी इस क्रांति की धारा से जोड़ने का प्रयास सभी स्तर पर करना होगा। अतः यदि इस डिजिटल डिवाडर को यदि विवेकपूर्ण तरीके से शीघ्रता से न पाटा गया तो सूचना क्रांति की तेज प्रगति के चलते वह अन्तर बहुत तेजी से बढ़ेगा जिससे समाज में असंतोष और अशान्ति की स्थिति पैदा होगी जो अन्ततः सम्पूर्ण मानव सभ्यता को विनाश की ओर ले जायेगी।

सूचना प्रौद्योगिकी ने मानव के जीवन के सभी पक्षों को सभी दिशाओं से प्रभावित किया है चाहे वह सामाजिक क्षेत्र में हो या आर्थिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में। सूचना क्रांति ने विश्व को एक वैश्विक गाँव में तब्दील कर लिया आज हम बिना सूचना प्रौद्योगिकी के विकसित जीवन की कल्पना नहीं कर सकते लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी ने समाज में कुछ असमानताओं को भी जन्म दिया है। लेकिन असमानता के लिए प्रौद्योगिकी को जिम्मेदार ठहराना एक प्रतिप्रेक्षण है। प्रौद्योगिकी तो साधन मात्र है इसका जिस प्रकार प्रयोग किया जाय वह उसी अनुरूप कार्य करेगी। इस साधन का साध्य बनना होगा समाज कल्याण व सभ्यता विकास को। यह सरकार, प्रबुद्ध जनो, प्रशासन की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह प्रौद्योगिकी की अनुप्रयोग सामाजिक समानता, समरसता व समृद्धि के लिए सुनिश्चित करे जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी स्वयं सूचना प्रबंधन के जरिये बहुत महत्व की युक्ति साबित हो सकती है। अतः कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सूचना क्रांति एक धारा है उसे मनुष्य ही अपनी बुद्धि के माध्यम से सही या गलत दिशा देता है।

सन्दर्भ सूची –

1. कम्प्यूटर संचार सूचना, इण्डिया पब्लिकेशन नई दिल्ली, अगस्त 2008
2. गोयल हेमन्त कुमार : कम्प्यूटर शिक्षा, आर0एल0 बुक डिपो मेरठ, 2012
3. द्विवेदी संजय : मीडिया : नया दौर नयी चुनौतियाँ, प्रकाशक यश पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2017
4. रघु कृष्ण पूराम :सूचना प्रौद्योगिकी में वैश्विक रूझान और उनके निहितार्थ, प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, सितम्बर, 2013
5. गौड़ प्रकाश : कम्प्यूटर अनुप्रयोग, रोजगार एवं नये आयाम, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2018
6. रानपाल डी0एन0 : सूचना प्रौद्योगिकी और उच्च शिक्षा, यश पब्लिकेशन दिल्ली, 2017
7. मिश्रा मनोज : सूचना क्रान्ति का युवाओं पर प्रभाव, (लेख) कुरूक्षेत्र मासिक हिन्दी पत्रिका, जून 2021
8. श्रीवास्तव राकेश : सूचना क्रान्ति का सामाजिक जीवन पर प्रभाव, लेख, शोख ऋतु अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका नान्डेड, महाराष्ट्र, 2000

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

Alcoholism and crime in Jharkhand: A Sociological Enquiry

Meera Kumari
Research Scholar,
P.G.Dept. of Sociology,
Ranchi University, Ranchi

Abstract

Drugs and alcohol play a significant part in devastating millions of Indian lives. The emotional strain of addiction, the financial burden to the country, and lives lost from overdose all have a dramatic effect on individuals, families, and communities. Of these effects, one of the most damaging to our society is the direct impact that drug use and the illegal drug trade has on crime and safety. Possession and distribution of most drugs are crime and is responsible for most of the arrests made in India each year. There is a proven correlation between inmates convicted of violent crimes and alcohol use during or prior to the act. Excessive drinking can lower inhibitions, impair a person's judgment, and increase the risk of aggressive behaviors. Alcohol is also legal for adults over the age of 21 to buy and consume, making it more accessible than other drugs. As a result, alcohol-related violence and crime is a major problem in our society, and one that continues to worsen the situation. In this paper researcher has tried to examine the impact of alcohol use in context with increasing the crime rate as well as its social implication over the society and family.

Key words: Alcohol, drugs, family, society, Jharkhand, crime

Introduction

The relationship between alcohol and violence is complex. Drinking does not inevitably lead to violent behaviour, and most episodes of drunkenness pass without any violence. However, by lowering inhibitions and impairing judgement alcohol can increase both aggression and the willingness to take risks.The state of alcoholism in India is a matter of serious physical and psychological dependence which interferes with the physical and mental health and the social, economic and familial responsibilities not only of the person indulging in the frequent consumption of the alcoholic beverages, but the people associated with him. This menace of alcoholism has been tremendously increasing in the developing countries like India since the 1980's. India has witnessed dangerous patterns of excessive alcohol intake leading to intoxication related higher levels of risks involved. The Global Status Report on 'alcohol and health', 2014, compiled a data taking into consideration persons who consumed alcohol and who were above 15 years of age, released by the World Health Organization (WHO) revealed that the amount of alcohol consumption has risen in India between the period of 2008 to 2012.[1]

An alarming revelation made was that over 11 percent of the population in India indulged in heavy or binge drinking while globally the figure stood at 16 percent. It was further brought forth that around 30 percent of the total population of India consumed alcohol in the year 2010. 93 percent of alcohol was consumed in the form of spirits, followed by beer with 7 percent and less that 1percent of the population consumed wine. In terms of alcohol consumption, it was Kerala which led the Indian states followed by Maharashtra and Punjab. An average individual above the age of 15 years consumed over 8 litres of alcohol per annum. India was also rated 4 on a scale of 1 to 5 on the 'years of life lost' scale which is based on alcohol attributable years of life lost. This indicates that alcohol consuming population of India loses most of the years of their life due to drinking and its harmful consequences. India has been identified as the third largest market in the world for its alcoholic beverages with high level of alcoholic contents due to its beaming population which has paved way for many multi-national liquor companies to invest in India. According to the Indian Alcohol Policy Alliance per capita consumption of alcohol in India has increased by 106.7 percent over the period of 15 years between the span of 1970 to 1996. The rate at which the sale of alcohol is growing is 6 percent per annum and it is estimated that shortly this rate is going to increase to 8 percent per year. Alcohol use among youth is increasing from 23-36 yrs in 1950 to 1960 to 19-45 yrs in 1980 to 1990.[2]The reasons attributed towards this growing trend is changing social norms, urbanization, increased availability, high intensity mass marketing, relaxation of overseas trade rules along with poor level of alcohol related awareness.

Alcohol plays a key role in crimes such as public order offences, assault and murder, as well as rape and sexual assault. This is in addition to offences that are obviously alcohol-related, such as driving under the influence of alcohol. The type and severity of alcohol-related offences are wide-ranging, from inconvenience and disturbance to violent assault and manslaughter. Harmful alcohol use is not simply a matter of individual responsibility. The impact of alcohol-related crime and anti-social behaviour has a ripple effect, extending beyond those directly affected to impact on the entire community, including our perceptions of safety and security. Alcohol-related crimes that take place in the home, particularly those associated with domestic abuse, can often go unreported and unaccounted for in calculations of the economic and even human costs of crime. The growing trend in home drinking – over 50% of all alcohol bought in Ireland is now bought for domestic consumption – may in the future also be accompanied by a rise in alcohol-related intimidation, assault and violence in and near the home. In addition to the economic costs, it is crucial that we don't forget the human costs in terms of trauma and loss. The human impact can take its toll in the form of fear and anxiety, stress and intimidation, as well as the personal financial cost of repairing damage, painting over graffiti, etc.

Since alcohol is legal and readily available, it has an especially strong connection with crime and violence. Forty percent of all crimes today are associated with alcohol use and approximately 37 percent of offenders serving in jail report drinking at the time they were arrested.

In fact, alcohol was found to be associated with violent crimes (murder, rape, assault, spousal abuse, and child abuse) more than any illegal drug. In about half of all homicides and assaults, the offender, the victim, or both parties were reported to have been drinking. Alcohol is also a major factor in violence between people who know each other. Around two-thirds of victims attacked by a current or former spouse or significant other reported the involvement of alcohol, compared to only 31 percent of stranger-related violence victims.

Sixty percent of people arrested test positive for illegal drugs upon arrest, and a study from 2004 found that around one-third of state prisoners and one-fourth of federal prisoners admitted to committing crimes while under the influence of illegal substances. Exactly which types of illegal substances are involved varies, but there are clear trends.[3]

There are three main types of crime associated with alcohol and drug abuse: use-related crime, economic-related crime, and system-related crime. The first, use-related crime, occurs when criminal acts result from people ingesting drugs and then committing crimes under the influence of those drugs.

- Economic-related crime is the type of crime that people commit in order to have money to continue their drug addiction. Theft and prostitution are the most common types of economic-related drug crimes.
- System-related crimes are those that result from how drugs are sold and how the criminal justice system deals with drug dealers. These crimes include things like manufacturing drugs, transporting them, selling them, as well as violence that results from these activities (like turf wars where drug use is rampant).

Crime and Alcohol

The one thing that all these types of crimes and substances have in common is that the key to interrupting the cycle of drug dependence and crime is effective addiction treatment. Yet even though a high percentage of jail and prison inmates qualify as having a substance abuse disorder, few are able to access any sort of addiction treatment while incarcerated. Drug offenders who complete their sentences and are released without having undergone addiction treatment are almost certain to resume alcohol or drug abuse and are highly likely to re-offend on another drug-related charge.

Addiction treatment is more complicated than incarceration, but it has been shown to produce a positive return on investment. Every dollar spent on addiction treatment saves nearly six dollars because of fewer arrests and incarcerations, as well as lower medical, child welfare, and public benefit costs.

Alcohol and drug use are closely intertwined with a crime. Incarceration may take someone out of the environment that allows him or her to use, but the real key to breaking the link between drugs and crime is professional addiction treatment. Fortunately, there are people and

organizations ready to help. If you have an alcohol or drug abuse problem, please contact us today. Reaching out is step one to recovery.[3]

According to World Health Organization, alcohol consumption is declining in most developed countries like Japan, Canada, United States, Australia and other improved or industrialized countries but rising in many of the developing countries like India, Iraq and other countries with a less developed industrial base including Philippines. The global burden of alcohol use over all countries was estimated to be 4% of the total disability adjusted life years lost, which makes it more damaging than tobacco at 2.6%. Alcohol causes 1.8 million annual deaths (3.2% of total worldwide, with 80% of this excess mortality occurring in the developing regions of the world. Violence is of particular interest because of the mental and physical harm it inflicts on others. The victims, often well known to the executor, include spouses, children, and friends. Alcohol is frequently a factor in such violence. When the victim is the offender's spouse, alcohol is a factor as much as 75 percent of the time. Alcohol consumption is cited also as a common correlate of violence committed by teenagers. Although the two behaviors often are observed together, much is still unknown about their association.[5]

Alcoholism the people who consume the alcohol they either become addicted to it. Teenage people mostly consume the alcohol and drugs like drugs we, can directly see the effect of it through the month or the week and the person become habitual to it mean in a day if they do take the drugs so they become mad, or sever changes may occur in the behaviour but in alcohol we do not see the direct side effect of it every bad things comes in side effect after a period of time they neither good for the health nor they body so, after a period of time the person see the side effect of it like related to any kind like health issues, alcohol slowly harm the body drugs and alcohol are the two serious things in the society.

Status of alcoholism and crime in Jharkhand

There are various causes for an individual's failure. Failure in life may be due to some inborn deficiencies such as physical or mental handicap, dumbness, deafness, blindness, feeble mind, deficient legs and hands, and so on. Some of the deficiencies might have been developed later in life. Since an individual does not have any control over many of these deficiencies, he is bound to yield to them and suffer from them. They make such an individual a parasite on society. Some of the deficiencies which can be managed or overcome, are often neglected by some individuals and hence they fall a prey to the problem of poverty. We may include under this category, deficiencies such as illiteracy, laziness, extravagance, immorality, bad habits such as gambling, alcoholism, etc. Though alcoholism does not invariably lead to personal disorganization, it is undoubtedly an important cause of personal disorganization. In particular, the drinking habit among the poor and labour class has generated serious problems all over the world and alcoholism among poor is dangerous morally, socially and economically. The poor drink usually to escape from their besetting worries which are largely due to indegency. But as is obvious, drinking can help only to perpetuate poverty and by no stretch of imitation can be regarded as solution of this problem. Excessive drinking can help only to perpetuate poverty and by no

stretch of imagination can be regarded as solution of this problem. Excessive drinking can help only perpetuate poverty and by no stretch of imagination can be regarded as solution of this problem. Excessive drinking robs a man of his sense of discrimination; he is unable to distinguish between good and bad, right and wrong.

Causes of Drinking : There are different reasons for drinking in Jharkhand. Some of them are as below:[6]

i. **Misery Drinking :** Men drink, because they are miserable, because life holds no joy for them nor any other prospect other than a dreary and unending round of toil. In such a life scheme drinking is a blessed palliative medicine.

ii. **Occupational Factor :** Men drink because their occupation has completely exhausted them. They look forward to the respite which intoxication affords after the heat of the blast furnace or the stench of the stockyards.

iii. **Bad Housing and Lack of Recreational Facilities :** Men drink, because their houses are so cold, dark and sordid, that they cannot stay there for a long time. The failure of community to satisfy the emotions in a sane and healthy manner also leads to such craving.

iv. **Ignorance :** Men who do heavy manual work have long been deluded by the belief that alcohol furnishes added strength and vigour with which they can pursue their labour. This illusory feeling of physical vitality after the consumption of alcohol is the cause of drunkenness.

v. **Inherent Nervous Defects :** There are born drunkards whose neurological heritage is such that they are unable to face reality. In their desperate effort to flee the world these unhappy persons become hopeless alcoholics.

vi. **God's Curse or Gift :** Some persons believe that men drink because they are steeped in original sin. Others maintain with equal conviction that men drink because the Lord intended that they should have occasional movements of pleasant oblivion from this vale of tears- and placed the grapes on earth for that particular purpose.

vii. **For companionship and Fun :** Men drink for companionship, for fun, for conceivability for what the Germans call Gemulichkeit, a compound of all tree.

viii. **Fashion :** Drinking to excess is a "perversion of the hard instinct", brought about by the pathetic attempt of one individual to enter into rapport with his fellows.

ix. **For Business Reasons :** Men drink for business reasons in the capacity of either potential customers or sellers. The great game of "entertaining the visiting buyer" falls into this category.

x. **Sudden success in Business :** Many cases of drinking arise after apparent success in Business or professional life.

xi. **Urbanization :** The urbanization and mechanization of life along with material mindedness which modern civilization has brought, has also been responsible for the increase in drinking.

xii. Social Inadequacy : There are certain persons who are unable to face the hard realities of life and start drinking to overcome their social inadequacy temporarily which later on takes the form of habitual drinking.

Harmful effects of Alcohol:

The use of liquor and other intoxicants is harmful for every progressive and growing individual and society. It is harmful in as much as it intellectually impoverishes, morally softens and spiritually damns the person addicted to it.

1. **The wastage of national wealth** : It has been estimated that a successful enforcement of prohibition policy would increase the purchasing capacity of people by Rs.140 crores; of this Rs.44 crores will be invested for productive purpose. It is obvious, therefore, that prohibition would save the country from huge wastage of national wealth.[7]
2. **Low standards of health :** The consumption of liquor leads to deterioration of health. This may happen due to any of two following reasons :
   (i) Liquor is narcotic and leads to nervous degeneration, liver cirrhosis, high blood pressure and a host of other deseases, and
   (ii) Money spent on liquor reduces one's resources and may not leave one with sufficient funds to buy nutritious food.
3. **Lowering of efficiency :** With the fall in the standards of bodily health and mental agility, the fall in efficiency is but a cordilary. The alcoholic is whimsical and incapable of sustained attention, concentration and putting in long hours of work.
4. **Mental imbalance :** A man under the influence of liquor has no control over his will and fickle minded. He is unable to think and work constructively. His own vision and thinking get bharred if intoxication is strong.
5. **Increase in poverty :** In India villagers and labourer drink in spite of their poverty. This obviously increases their poverty though it may provide them temporary well-being and euphoria.
6. **Individual disorganization :** The consumption of liquor makes a man wayward in habits and whimsical in moods. He also loses all control over his will and his desire to grow and progress becomes feeble. He grows carelss and indifferent and feels little difference between morality and immorality. All this produces personality disintegration.
7. **Family disorganization :** More homes are broken due to drinking than any other single cause. This is easy to understand. As the moral sense of man is destroyed and his inhibitions removed due to alcoholism, prostitution and adultery are the normal consequences. An alcoholic shows little respect to his wife or children. This leads to constant family tension and divorce.
8. **Increase in Crime :** Under the influence or liquor prople act in unsocial ways as their inhibitions are removed. This includes murder, rape and other crimes. 48 Moreover, in order to meet the expenses of drink a man way take to gambling or even theft.

In Jharkhand, 216 persons per 100,000 are estimated to have medically treated tuberculosis, based on reports from household respondents. The prevalence of medically treated tuberculosis

is lower among men (164) than among women (265) and is higher in rural areas (239) than in urban areas (137).[8] Blood pressure is the force exerted by circulating blood against the arterial walls. Hypertension or high blood pressure is a condition in which the blood vessels have persistently raised pressure. Hypertension is a major risk factor for cardiovascular diseases, chronic kidney diseases, and brain diseases, and it is a major cause of premature deaths worldwide. Some of the risk factors for developing hypertension are unhealthy diets, physical inactivity, alcohol and tobacco consumption, and excess body weight. In Jharkhand, among adults aged 15-49, a negligible proportion (3%) of women and two-fifth (40%) of men drink alcohol. Among men, consumption is higher in rural areas than in urban areas (42% versus 35%). Most men who drink alcohol drink it about once a week (43%) or less than once a week (29%), and 28 percent drink almost every day.[9]

Conclusion

Focusing at the familial level, it is found that alcohol use has led to spousal abuse. There are different shades of domestic violence: physical, mental economic and social in nature. Severe acts of physical domestic violence include wife battering – biting, kicking, chocking, hitting, fisting or threatening with the use of deadly weapons. According to the report of Indian Alcohol Policy Alliance[10], "85 percent of men who were violent towards their wives were frequent or daily users of alcohol. More than half of the abusive incidents took place under the influence of alcohol. An assessment showed that domestic violence reduced to one tenth of previous levels after alcohol treatment.A study conducted by National Institute of Mental Health and Neuro Sciences[11], Bangalore and sponsored by World Health Organization shows that 20 percent of women reported domestic violence and 94.5 percent of women identified their husband's alcohol consumption as a risk factor in incidents of domestic violence. The children of the family are also at a risk of alcohol related violence. There have been frequent incidents of child abuse due to alcoholics. Parental alcohol consumption may have other negative ramifications for child's health. It has been further observed that the children of substance abusing parents are more likely to have behavior problems that may lead to psychiatric disorders, delinquency or violent behaviors in later child hood and adolescence. The alcohol consumption has a direct impact on parenting ability and the amount of time parents spend with their offspring and therefore adversely affects children's well being. However, the relationship between parental substance use and children's mental health may be a result of factors that determine outcomes such as parental psychiatric disorder, individual personality or home environment Maternal drug and alcohol consumption also has a direct impact on the child's health and behavior problems especially in early childhood. Maternal excessive alcohol consumption or on the other hand the cruel treatment meted out to her by the abusive alcoholic husband may sometimes create severe situations of child miscarriage too which is again made punishable under our India criminal law. The marital violence and consequent child abuse perpetrated by excessive intake of alcoholism has seen an increasing trend which needs to be curbed strictly to safeguard the social pious fabric of Indian familial system.

Alcoholism has played a potential role in the increased violence against women especially relating to sexual offences 85% crime against women due to alcoholism. The Report further quotes that, "Alcoholism plays a major role in 70-85 percent of offences against women. The survey was recently conducted, based on national crime records bureau data, according to which 2,026 girls and women in 2014 were sexually exploited, 1423 were kidnapped, 1286 were raped, and 11206 faced several forms of violence and crime. "Thus sexual violence and unprotected and unplanned sexual activity constitute another set of alcohol related problems.[12]

To effectively confront the grave problem of alcohol related crimes, a multifaceted balanced approach needs, to be adopted. Public education forms an integral part of this approach. This awareness against the harmful effect of intoxicants and related drugs must be initiated right from the school and college. No liquor vend should be opened within a mile of any school, college, religious place and bus stop. Information in relation to ill effects of the intoxicants could be displayed across the different states of the country via boards, banners in public places for appropriate information. State must also try its best to implement effectively the laws relating to curbing the menace of alcohol and related crimes. So, to say, stricter traffic laws need to be implemented in a serious manner. State should further make an endeavor to start various drug de-addiction centers for treatment of habitual users of alcohol and drugs to weed out this problem of alcoholism completely. Youth must be provided ample employment opportunities by helping them acquire technical/ professional education and loans to further their own enterprises. Games and tournaments should be encouraging to take care of their health and in turn avoid stress and frustrations.

Bibliography

1. World Health Organisation Report 2012.
2. Times of India, 85% crime against women due to alcoholism: NCRB (April 25, 2019), https://www.timesofindia.indiatimes.com
3. The Hindu, The Alcohol Economy (April 25, 2019), https://www.thehindubusinessline.com
4. World Health Organisation Report 2018.
5. Gajmer P, Yamang H, Gurung S et al. 2020, Knowledge and attitude on the effects of alcohol consumption during pregnancy among the childbearing women residing in the urban andrural areas of Sikkim. International Journal of Advance Research in Nursing. Volume 3;Issue 1; Page No. 94-1014. http://rchiips.org/nfhs/pdf/NFHS4/India.pdf
6. Taylor, J.L.; Dolhert, N.; Friedman, L.; et al. 1996, Alcohol elimination and simulator performance of male and female aviators: A preliminary report. Aviate Space Environ Med 67(5):407-413.
7. 9. Li, T.K.; Beard, J.D.; Orr, W.E.; et al.1998, Gender and ethnic differences in alcohol metabolism. Alcohol Clin Exp Res 22(3):771-772.

8. The Hindu, The Alcohol Economy (April 25, 2019), https://www.thehindubusinessline.com

9. Kwo, P.Y.; Ramchandani, V.A.; O'Connor, S.; et al. 1998, Gender differences in alcohol metabolism: Relationship to liver volume and effect of adjusting for body mass. Gastroenterology 115(6):1552-1557.

10. Indian Alcohol Policy Alliance Report 2015.

11. National Institute of Mental Health and Neuroscience Report 2017.

12. NCRB Report 2014.

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

अष्टांगिक योग में व्यक्तित्त्व विकास के आधार स्तम्भ : यम और नियम

डॉ0 अभिषेक अग्निहोत्री
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज,
गंगापुर–वाराणसी
ई–मेल : abhi.agni.91@gmail.com

भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों ने अपनी साधना पद्धति में किसी न किसी रूप में योगमार्ग का अवलम्बन किया है। वास्तव में यदि योग की परिभाषा पर विचार किया जाय तो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति योगमय है। योग शब्द युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। सामान्यतः इसके तीन अर्थ होते हैं– समाधि, योग (जोड़ना) और संयम। यह तीनों शब्द सम्मिलित रूप से मिलकर योग को अभिव्यक्त करते हैं। योग का साधन है संयम और जोड़ना और लक्ष्य है समाधि। अष्टांगिक योगमार्ग का प्रथम चरण यम नियम के रूप में बाह्य संयम से प्रारम्भ होता है। अष्टांग योग का प्रथम अंग 'यम' है। यम के अन्तर्गत पाँच कर्तव्य[1] बताये गये हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह। सामान्यतः ये पांचों कार्य किसी विशेष कर्म का निषेध करते हैं, जैसे– अहिंसा अपने आप में कोई कर्म नहीं है अपितु हिंसा न करना ही अहिंसा है। यह हिंसा की वृत्ति मानसिक, वाचिक एवं कार्मिक तीनों में से किसी भी प्रकार की हो सकती है। योगशास्त्र में इन तीनों का ही निषेध किया गया है और यह हिंसा की वृत्ति जीव, जन्तु, मनुष्य एवं किसी भी प्राणी के प्रति हो सकती है। इसलिए अहिंसा के विषय में यह कहा गया है कि 'सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामभिद्रोहः' सदैव सभी प्राणियों के प्रति पीड़ा पहुँचाने की भावना। हिंसक कर्म का बीज तो हिंसक विचार में निहित होता है पहले हिंसा का विचार उत्पन्न होता है जिसका प्रकटीकरण हिंसक वाणी या कर्म में होता है। अतः योग चित्तवृत्तिनिरोध के रूप में हिंसक वृत्ति को ही रोकने की बात करता है।

यम का दूसरा अंग सत्य है, सत्य भी प्रमुख रूप से असत्य बोलने का निषेध है। झूठ न बोलना ही सत्य है, सत्य बोलने के लिए झूठ का निषेध अत्यन्त आवश्यक है। इसका भी मन, वाणी एवं कर्म के आधार पर बहुत ही गम्भीर चिन्तन किया गया है। मन से सत्य का वाचन करने वाला उन्नति को प्राप्त करता है।[2] सत्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि व्यक्ति जैसा देखता है वैसा ही कहता है तो वह सत्य है।[3] सत्य के आधार पर समाज में आपसी विश्वास, सामंजस्य एवं शान्ति की स्थापना सम्भव होती है। इसलिये ऋग्वेद में कहा गया है कि सत्य की जिह्वा मधुर तथा प्रिय को पवित्र करती है।[4] सत्यनिष्ठ बुद्धि कुटिल विचारों को नष्ट कर देती है।[5] सत्य को धारण करने वाला व्यक्ति समाज में स्तुत्य होता है[6], तथा सत्य बड़े–बड़े समूहों वाले शत्रुओं को पराजित कर देता है।[7] अतः मनुष्य के व्यक्तित्त्व निर्माण की दृष्टि से सत्य विचार एवं वाणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यम का तीसरा अंग अस्तेय भी मानव व्यक्तित्त्व निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अस्तेय की परिभाषा लेते हुए योगसूत्र के भाष्यकार का कहना है कि अशास्त्रोक्त विधि से दूसरों के धनादि को ग्रहण करना ही अस्तेय है।[8] दूसरे के धन को प्राप्त करने की इच्छा रखना या उसे छल–छद्म पूर्वक प्राप्त करना अस्तेय के अन्तर्गत आता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि किसी के धन का लोभ मत करो।[9] अपने कर्तव्य कर्मों का भलीभाँति निष्पादन न करना तथा उसके परिणाम स्वरूप प्राप्त होने वाले फल की इच्छा करना या उसे ग्रहण करना यह भी चोरी के अन्तर्गत आता है। इसीलिए अपने कर्तव्य को पूर्ण निष्ठा के साथ करना तथा उससे प्राप्त होने वाले फल में प्रसन्न रहना ही अस्तेय माना गया है।

भारतीय साधना पद्धति में ब्रह्मचर्य को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है। योगसूत्रकार ने ब्रह्मचर्य को यम के चौथे अंग के रूप में प्रस्तुत किया है। भाष्यकार व्यास ने इस पर टिप्पणी लिखते हुए गुप्तेन्द्रिय अर्थात् जननेन्द्रिय का निग्रह ब्रह्मचर्य कहा है परन्तु शास्त्रीय दृष्टिकोण एवं भारतीय चिन्तन पद्धति में ब्रह्मचर्य की एक व्यापक अवधारणा स्वीकार की गयी है। ब्रह्मचर्य मात्र शारीरिक क्रिया ही नहीं वरन् यह एक मानसिक चिन्तन है। ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत कामभाव का स्मरण, चिन्तन, प्रेक्षण, भाषण, कामक्रीड़ा, संकल्प, प्रयत्न एवं क्रिया ये आठ अंग आते हैं इन सभी के निषेध को ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। ब्रह्मचर्य मानव व्यक्तित्त्व में तेजस्विता को उत्पन्न करता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि इन्द्र ने ब्रह्मचर्य से ही देवों को तेजस्वी बनाया।[10] ब्रह्मचर्य मानव व्यक्तित्त्व एवं विचार में संयम को उत्पन्न कर लक्ष्य के प्रति एकाग्रता की वृद्धि करता है। विशेष रूप से विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य रक्षण का बहुत ही अधिक महत्त्व है। मन के विक्षेपों को दूर कर ज्ञानार्जन में अपनी समस्त मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों को सन्निविष्ट करने के लिए ब्रह्मचर्य का विधान किया गया था। अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रह्मचारी स्नातक संसार में बहुत यशस्वी होते हैं।[11]

न्यूनतम विषय सामग्री में भी अपना भरण पोषण कर लेना अपरिग्रह के अन्तर्गत आता है। विषय सामग्री को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के अनेक प्रकार के हिंसादि दोष तथा उनके प्रति आसक्ति के उत्पन्न होने से मानव व्यक्तित्त्व का क्षरण होता है तथा अनेक दुर्गणों की वृद्धि होती है। भ्रष्टाचारादि दोष उत्पन्न होते हैं। अतः मानव व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से अपरिग्रह का बहुत ही महत्त्व है। वस्तुओं के उपार्जन में प्रकृति, पर्यावरण, समाज, संस्कृति एवं सृष्टि में संतुलन बना रहे उसमें किसी प्रकार का व्यवधान एवं असंतुलन न उत्पन्न हो इस भावना से किए गए कर्म को शास्त्रकारों ने यज्ञ कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि यज्ञ के अवशिष्ट को खाने वाले महापुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं जब कोई व्यक्ति यज्ञ परम्परा का पालन नहीं करता और स्वयं के स्वार्थ के लिए उपार्जित करने की चेष्टा करता है तो वह पाप का भक्षण करता है।[12]

अष्टांग योग का दूसरा अंग 'नियम' है। नियम के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान यह पांच कर्म आते हैं। शौच का अर्थ पवित्रता है। इसके बाह्यन्तर दो भेद हैं, बाह्य शौच के अन्तर्गत पवित्र भोजन, वस्त्र एवं शारीरिक पवित्रता आती है। जबकि आन्तरिक शौच के अन्तर्गत चित्त के दोष दूर करना तथा भावनाओं का शुद्धिकरण आता है। वस्त्र, आहार तथा शरीर की स्वच्छता मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वच्छता की शिक्षा देने के लिए सरकार एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के द्वारा वर्तमान समय में भी अनेक कार्यक्रम किये जा रहे हैं। व्यक्तित्त्व के इस महत्त्वपूर्ण अंग को ही योगांग के रूप में स्वीकार कर मानव व्यक्तित्त्व विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सन्देश दिया गया है।

विद्यमान साधनों से अधिक का संग्रह न करने की इच्छा रखना संतोष है।[13] मानव व्यक्तित्त्व में संतोष का न होना ही सामाजिक अशांति एवं अव्यवस्था का बहुत बड़ा कारण है। 'संतोषः परमंसुखम्' के रूप में हमारे शास्त्रकारों ने सुख का परम आधार संतोष को माना है। व्यक्ति अपने कर्म के द्वारा धर्मपूर्वक जो उपार्जित करे उसमें सम्यरूपेण तुष्ट रहना ही संतोष है। जब कोई व्यक्ति अपने द्वारा कृत्य कर्म से अधिक फल प्राप्ति की अपेक्षा रखता है तब असंतुष्टि की भावना के कारण वह स्वयं भी दुःख प्राप्त करता है और समाज में भी अव्यवस्था उत्पन्न करता है। ऐसा असंतुष्ट व्यक्ति दुगुना धन पाकर भी दरिद्र रहता है।[14]

विविध प्रकार के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक परिस्थितियों में भी संतुलन बनाये रखना तप के अन्तर्गत आता है। शरीर की अनुकूलता, प्रतिकूलता, भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, खड़े–बैठे हुए स्थिति में भी अपने ध्येय के प्रति एकनिष्ठ और संयमित रहना तप है। तप की भावना मानव व्यक्तित्त्व के संतुलन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जिस व्यक्ति में अनुकूल–प्रतिकूल द्वन्द्वों की सहन की क्षमता जितनी अधिक होती है वह व्यक्ति परिवार समाज एवं राष्ट्र के संतुलन में उतना ही महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

इन्द्रिय सहयोगजन्य सुख की तृष्णावश ही लोग गलत मार्गों का अनुसरण करते हैं। अनेक सामाजिक कुकृत्यों का मूल कारण व्यक्ति में तप की भावना का अभाव है। शास्त्रों में कहा गया है कि तप द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान होने से मन वश में आता है, मन वश में आने से आत्मा की प्राप्ति होती है, और आत्मा की प्राप्ति हो जाने से संसार के समस्त क्लेषों से छुटकारा मिल जाता है।[15]

भारतीय चिंतन में स्वाध्याय की व्यापक परिकल्पना है, स्वाध्याय का अर्थ केवल पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं अपितु स्वयं के अन्तःकरण कर्म एवं चरित्र का भी अध्ययन है। यद्यपि अष्टांग योग के भाष्यकार ने मोक्षशास्त्रों के अध्ययन एवं ओंकार के जप को स्वाध्याय माना है।[16] परन्तु इन दोनों प्रकार के कर्मों में ही बाह्य एवं आन्तरिक स्वाध्याय का संकेत उन्होंने दिया है। वैदिक वांग्मय स्पष्ट रूप से कहता है कि स्वाध्याय से कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।[17] यदि किसी व्यक्ति ने स्वाध्याय से प्रमाद किया तो वह निश्चित रूप से मार्ग से भटक जायगा। शास्त्रों का अध्ययन एवं उनके अनुकूल अपने आचरण व चरित्र की दिशा में बढ़ोत्तरी का सम्यक अवलोकन सदैव करते रहना चाहिए। यदि इसमें किसी प्रकार का प्रमाद उत्पन्न हुआ या किसी एक पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया गया तो सम्यक स्वाध्याय की प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती।

ईश्वर के प्रति समस्त कर्मों के अर्पण को ईश्वरप्राणिधान कहा गया है।[18] ईश्वर के प्रति कर्मों के अर्पण की यह श्रेष्ठ भावना व्यक्ति को अनेक प्रकार के संतापों से मुक्त कर देती है। वह जय–पराजय, हानि–लाभ सभी में निःस्पृह भाव से स्थित हो कर अपने कर्मों को सम्यक्रूपेण निष्पादन करता है। गीता में कहा गया है कि ऐसा योगी जो मन एवं बुद्धि से अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पित कर देता है वह दृढ़निश्चयी सदैव संतुष्टि का अनुभव करता है।[19] ईश्वरार्पण बुद्धि से किये गये कर्म समाज में एक प्रकार से न्यास की भावना की अभिवृद्धि करते हैं और ऐसे कर्मशील लोग ही यथार्थ में संन्यासी होते हैं।

वास्तव में मनुष्य का व्यक्तित्त्व निर्माण उसके अन्तःकरण मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त के संतुलन पर निर्भर करता है, जिसका बाह्य प्रकटीकरण उसके कर्मों के माध्यम से होता है। परन्तु अन्तःकरण के संतुलन की अवस्था तक पहुँचने के पूर्व कुछ ऐसे विधि–निषेध आवश्यक होते हैं, जो हमें हमारे अन्तःकरण के वृत्तियों का वास्तविक आभास करा सके, नहीं तो व्यक्ति स्वयं की अपने अन्तःकरण को समझ सकने में असफल रहता है। यम और नियम योग की प्रथम साधनावस्था में ऐसे विधि–निषेध है जो व्यक्ति के चित्तवृत्तियों का आभास कराकर उनके निरोध की तरफ अग्रसर करते हैं। जिसका अनुशासन योग के द्वितीय सूत्र 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के द्वारा किया गया है। परन्तु इस यम और नियम के पालन का आन्तरिक प्रभाव के साथ–साथ बाह्य प्रभाव भी परिवार समाज एवं सृष्टि के साथ व्यक्ति के संतुलन के रूप में उद्भासित होता है, और वह व्यक्ति समाज में एक श्रेष्ठ मर्यादित एवं अनुशासित व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अतः व्यक्ति के व्यक्तित्त्व निर्माण में अष्टांगिक योगमार्ग के यम और नियम का अद्वितीय प्रभाव है।

सन्दर्भ–

1. अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमा (पतंजलि योगसूत्र – 2.30)
2. मनसा वा एऽवदनऋतानि (अथर्ववेद 7.1.1)
3. यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते (ऋग्वेद 5.44.6)
4. ऋतस्य जिह्वा पवतेमधुप्रियम् (ऋग्वेद 9.75.2)
5. ऋतस्य धृतिर्वृजिनानि हन्ति (ऋग्वेद 4.23.8)
6. अभिश्रावे भवता सत्यवाचा (अथर्ववेद 18.1.29)
7. ऋतम् सासाह महिचित्तपृतन्यतः (ऋग्वेद 8.86.5)
8. स्तेयमशास्त्रपूर्वकम् द्रव्याणां परतः स्वीकारणम् (पातंजलयोग भाष्य 2.30)
9. मागृधः कस्यस्विद्धनम् (यजुर्वेद 40.1)

10. इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत (अथर्ववेद 11.5.19)
11. स स्नातः पृथिव्यांबहुरोचते (अथर्ववेद 11.5.26)
12. यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः । भुंजते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3.13)
13. सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा (पातंजलयोग भाष्य 2.32)
14. द्विभाग धनमादाय प्र क्षिणात्यवर्तया (अथर्ववेद 12.2.35)
15. तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्वात् संप्राप्यते मनः । मनसा प्राप्यतेत्वात्मा ह्यत्माप्त्या निवर्तते ।। (मैत्रायण्युपनिषद 4.3)
16. मुच्छशास्त्राणामध्ययनं प्रणव जपो वा । (पातंजलयोग भाष्य 2.32)
17. स्वाध्यायान्माप्रमदः (तैत्तिरियोपनिषद् 1.11)
18. तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् (पातंजलयोग भाष्य 2.32)
19. संतुष्टः सततं योगो ह्यात्मादृद्धनिश्चयः। मय्यर्पित मनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः समेप्रियः (श्रीमद्भागवद्गीता 12.14)

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

जनजातीय समस्याओं के निराकरण में मीडिया की भूमिका
(झारखंड राज्य के विशेष संदर्भ में)

अंकुर कुमार पाण्डेय
शोध छात्र
ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज.

भारत भौगोलिक दृष्टिकोण से एक विशाल देश है। यहाँ का भौगोलिक क्षेत्र एक–दूसरे से भिन्न तथा पृथक विशेषताओं के कारण अपनी भिन्न पहचान रखते हैं। सामान्यतया इन क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों के रहन–सहन, कर्म, कला, भाषा, और साहित्य के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों में भी भिन्नता पायी जाती है। इन्हीं भिन्नताओं में एक वर्ग है आदिवासी समुदाय का जो देश के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक ढाँचे का अभिन्न हिस्सा है। विकासात्मक गतिविधियों एवं समाज की मुख्य धारा से जुड़ना इस समुदाय की बड़ी चुनौती है। आदिवासी समुदाय दुर्गम, बीहड़ क्षेत्रों में तथा जंगलों में फैला हुआ है। भारत के कई क्षेत्रों में आज भी आदिवासी समाज विकास का बाट जोह रहा है। कई क्षेत्रों में ये आधुनिक सभ्यता के लाभों से वंचित, प्रगति के दौड़ में पिछड़ा, शिक्षा के वरदान से अछूता, शोषण का शिकार, आधुनिक कृषि एवं उद्योग–धंधों से अनभिज्ञ तथा सभ्यता के आरंभिक सोपानों में अवस्थित है। पहाड़ी धरातल, अनुपजाऊ भूमि, अविकसित यातायात एवं सघन वन आदिवासी क्षेत्रों की प्रमुख विशेषता रही है।

बीज शब्द–जनजाति, विकास, सरकार, योजना, मीडिया, संविधान, समस्याएं, संचार, समाज, सामुदायिक, अनुसूचित क्षेत्र।

आदिवासियों को मूल निवासी कहा जाता है वे आदिकाल से देश में निवास कर रहे हैं। लेकिन जिस तरह से समाज का क्रमागत विकास हुआ, लोगों के जीवन स्तर, खान–पान, आचार–विचार, शिक्षा व स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई, तकनीक का विकास हुआ, कार्यालयों में नए–नए उपकरणों का प्रयोग होने लगा, ऑनलाइन माध्यम से कार्य संपादित किए जाने लगे वहीं दूसरी तरफ आदिवासी लोगों के विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। हजारों वर्षों से जंगलों व पहाड़ी इलाकों में रहने वाले आदिवासियों को हमेशा से दबाया व कुचला जाता रहा है, जिससे उनकी जिंदगी अभावग्रस्त ही रही है। इनका खुले मैदान के निवासियों और तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले लोगों से न के बराबर ही संपर्क रहा है। सरकार आदिवासियों के नाम पर हर साल हजारों करोड़ रुपये का प्रावधान बजट में करती है इसके बाद भी 6–7 दशक में उनकी आर्थिक स्थिति व जीवन–स्तर में कोई बदलाव नहीं आया है। स्वास्थ्य सुविधाएं, पीने का साफ पानी आदि मूलभूत सुविधाओं के लिए वे आज भी तरस रहे हैं। सरकार योजनाएं बनाती है, लेकिन उन योजनाओं का हश्र क्या होता है, उन योजनाओं का लाभ आदिवासी ले पा रहे हैं कि नहीं, यह जानने भर की फुर्सत किसी को नहीं है। जरूरत है नेक नीयत की क्योंकि कानून, योजना, परियोजना तो बहुत बनाये गए किन्तु उन्हें सही ढंग से लागू नहीं किया गया। भ्रष्टाचार, बदनीयत, संवेदनहीनता, राजनीतिक दांव–पेंच, क्षेत्रीय अशान्ति, अपराधीकरण, शोषण, भेद–भाव इन सारे कारणों के चलते आज भी भारत के जनजातियों को ठगा सा महसूस हो रहा है।

भारत में कई प्रकार की जनजातियाँ पाई जाती हैं किंतु उनमें प्रमुख हैं भील, गोड़, संथाल, मीणा, नायर, उरांव, मुंडा, हो, गुज्जर, भूमिज, कोया, बोरो, खोड़, लुशाई इत्यादि। अगर हम झारखंड राज्य की बात करें तो झारखंड जनजातियों की दृष्टि से भारत का एक प्रमुख राज्य है। यहाँ 32 प्रकार की अनुसूचित जनजातियाँ हैं। अनुसूचित जनजातियों को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया गया है– प्रमुख जनजाति एवं आदिम जनजाति। झारखंड में 24 जनजातियाँ प्रमुख जनजाति की श्रेणी में तथा 8 आदिम जनजाति की श्रेणी में आती हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में जनजातियों की कुल आबादी 86.45 लाख है। जिसमें प्रमुख जनजातियों की कुल आबादी करीब 83.52 लाख है वहीं 8 आदिम जनजाति की कुल आबादी 2.93 लाख है। जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार राज्य की तीन सबसे बड़ी जनजाति– संथाल (27. 54लाख), उरांव (17.16लाख), मुंडा (12.29लाख) है।

अनुसूचित क्षेत्र– संविधान के पांचवी अनुसूची के तहत अनुच्छेद 244(1) तथा 244(2) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। भारतीय संविधान की धारा 244(1) की 5वीं अनुसूची के पैराग्राफ 6(1) के अनुसार अनुसूचित क्षेत्र अभिव्यक्ति का अर्थ ऐसे क्षेत्रों से है जिसे राष्ट्रपति अपने आदेश से अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकते है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह देश के राष्ट्रपति द्वारा घोषित किसी राज्य का वह भूखंड है जहां अनुसूचित जनजातियाँ रहती है।

संविधान के अनुसूची 5 के पैराग्राफ 6(1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी भी समय राज्य के राज्यपाल के सलाह के बाद एक राज्य में किसी अनुसूचित क्षेत्र में वृद्धि का आदेश दे सकते है। किसी राज्य और राज्यों के संदर्भ में इस पैराग्राफ के अंतर्गत जारी आदेश और आदेशों को राज्य के राज्यपाल की सलाह से निरस्त कर सकते है और अनुसूचित क्षेत्र को फिर से परिभाषित करने के लिए एक नया आदेश दे सकते है। अनुसूचित क्षेत्र को पहली बार 1950 में अधिसूचित किया गया था।

भारतीय संविधान की अनुसूची 5 के तहत भारत के निम्न राज्यों में विनिर्दिष्ट क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है, जो कि वर्तमान में उनके मूल अथवा संशोधित रूप में है–

क्र.सं.	राज्य का नाम	अधिसूचना जारी होने का दिनांक	आदेश
1	आंध्र प्रदेश	26–01–1950	अनु० क्षेत्र (भाग अ राज्य) आदेश, 1950
2	तेलंगाना	07–12–1950	अनु० क्षेत्र (भाग ब राज्य) आदेश, 1950
3	हिमाचल प्रदेश	21–11–1975	अनु० क्षेत्र (हिमाचल प्रदेश) आदेश, 1975
4	गुजरात	31–12–1977	अनु० क्षेत्र (गुजरात) आदेश, 1977
5	उड़ीसा	31–12–1977	अनु० क्षेत्र (उड़ीसा) आदेश, 1977
6	राजस्थान	12–02–1981	अनु० क्षेत्र (राजस्थान) आदेश, 1981
7	महाराष्ट्र	21–12–1985	अनु० क्षेत्र (महाराष्ट्र) आदेश, 1985
8	छत्तीसगढ़	20–02–2003	अनु० क्षेत्र (छत्तीसगढ़) आदेश, 2003
9	मध्यप्रदेश	20–02–2003	अनु० क्षेत्र (मध्यप्रदेश) आदेश, 2003
10	झारखंड	11–04–2007	अनु० क्षेत्र (झारखंड) आदेश, 2007

संप्रति देश में 4,17,199 वर्ग किलोमीटर अनुसूचित क्षेत्र हैं जहां 429.41 लाख अनुसूचित जनजातियों की आबादी है। अगर गौर किया जाए तो अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण के क्रम में राष्ट्रपति ए. पी.जे. अब्दुल कलाम के द्वारा अनुच्छेद 44(2) के तहत संविधान के पांचवी अनुसूची के प्रावधान में झारखंड राज्य को 2007 में शामिल किया गया। झारखंड राज्य के 260 विकास खंड क्षेत्रों में से 112 पांचवी अनुसूची के क्षेत्र में आते है।(24 जिलों में से 15 जिलों में फैले हुए)

ऐसे प्रत्येक राज्य में जिसमें अनुसूचित क्षेत्र है और यदि राष्ट्रपति निर्देश दे तो किसी ऐसे राज्य में भी जिसमें अनुसूचित जनजातियां है, किंतु अनुसूचित क्षेत्र नही है, एक जनजातीय सलाहकार परिषद की स्थापना की जाएगी। जो 20 से अधिक सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से यथाशम्य निकटतम तीन–चौथाई उस राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होंगे। परंतु यदि उस राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों की संख्या जनजाति सलाहकार परिषद में ऐसे प्रतिनिधियों से भरे जाने वाले स्थानों से कम है तो शेष स्थान उन जनजातियों के अन्य सदस्यों से भरे जाएंगे।

दृष्टव्य है कि अनुसूचित क्षेत्र के लिए उक्त राज्यों के राज्यपाल यदि चाहें तो सामान्य कानूनों को जनजातियों पर लागू करते समय परिवर्तन या परिसीमन कर सकते है। वे इन घोषित क्षेत्रों में शांति बनाए रखने एवं प्रशासन के भली–भांति संचालन के लिए नियम भी बना सकते है। ये नियम पांचवी अनुसूची में वर्णित भूमि हस्तांतरण को रोकने, भूमि आवंटन करन, व्यापारियों एवं महाजनों की गतिविधियों को नियंत्रित करने आदि के बारे में हो सकते है। राज्यपाल राज्य के उन अनुसूचित जनजातियों को विशेष कानून के दायरे में ला सकता है जो वास्तव में अनुसूचित क्षेत्र के नहीं रहते है। जिसकी सूचना वह राष्ट्रपति को दे देता है। अनेक राज्यों में इस संबंध में नियम बनाए जा चुके है तथा कुछ राज्यों ने अपने पूर्व अधिनियमों में जनजातियों के हितार्थ आवश्यक परिवर्तन भी किए है। अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्य का राज्यपाल वार्षिक रूप से अथवा जब कभी राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के ऊपर राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

महत्वपूर्ण बातों को जानने के बाद बावजूद आदिवासियों की समस्या को आसानी से तय कर पाना कत्तई आसान नहीं है। हर क्षेत्र की परिस्थितियाँअलग अलग हो सकती हैं अर्थात अलग–अलग क्षेत्र में रह रहे आदिवासियों की समस्या भिन्न–भिन्न हो सकती है। वर्षों से शोषित रहे इस समाज के लिए परिस्थितियां आज भी बहुत कष्टप्रद व समस्याएं बहुत अधिक हैं। ये समस्याएं प्राकृतिक तो होती ही हैं साथ ही यह मानवजनित भी होती है। विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों की समस्या थोड़ी बहुत अलग हो सकती है किंतु बहुत हद तक एक समान ही होती है।

आदिवासियों की प्रमुख समस्याएं–

गरीबी– निश्चित रूप से कहीं ना कहीं आदिवासी समस्याओं का महत्वपूर्ण तत्व गरीबी से जुड़ा है।ऋणग्रस्तता हो या भूमि हस्तांतरण सभी के पीछे गरीबी ही प्रमुख कारण है। संपूर्ण भारत के लिए गरीबी एक अभिशाप है। हमारे यहां गरीबी का आलम यह है कि बहुत से लोगों को बमुश्किल एक वक्त का ही भोजन नसीब हो पाता है। यह हालात अनुसूचित जनजातियों के लिए और भी सोचनीय व दयनीय है। आदिवासियों से जंगलों के वन–उत्पाद से संबंधित उनके परंपरागत अधिकार पूरी तरह से छीन लिए गए हैं। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी दर उन्हें मजदूरी करने के बाद भी प्राप्त नहीं हो पाती है, जिससे समय के सापेक्ष उनकी गरीबी कम होने की जगह बढ़ी ही है।

शिक्षा– शिक्षा मानव के विकास में सहायक होता है। आदिवासी समाज का शिक्षा से कम सरोकार होना उनके कई समस्या से जुड़ा हुआ है। ऋणग्रस्तता, भूमि हस्तांतरण, स्वास्थ्य, बेरोजगारी एवं गरीबी आदि कई समस्याएं हैं जो शिक्षा से प्रभावित होती है। सन 2011 के आंकड़ों को देखें तो स्थिति बहुत हद तक स्पष्ट हो जाती है। जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में साक्षरता की दर जहां 80.9प्रतिशत थी, वहीं झारखंड में यह महज 67.63 प्रतिशत थी। इसमें पुरुषों की साक्षरता दर 76.48 प्रतिशत एवं महिलाओं की महज 55.4 प्रतिशत थी। इसके मुकाबले राज्य में आदिवासी साक्षरता दर सिर्फ 47.63 प्रतिशत थी। यही नहीं स्कूल स्तर पर भी बच्चों की बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने यानी ड्रॉपआउट की दर काफी अधिक है।

इससे यह समझना कठिन नहीं है कि जिस समुदाय में इतनी अधिक संख्या में बच्चे स्कूली स्तर पर ही पढ़ाई छोड़ देते हैं, आखिर उच्च शिक्षा में उनकी स्थिति क्या होगी।

बेरोजगारी– आदिवासी हमेशा से दूर–दराज के क्षेत्रों में समाज के मुख्यधारा के लोगों से दूर रहे हैं। साथ ही जंगलों पर अपना अधिकार समझने वाले आदिवासियों का इन पर भी अब कोई अधिकार नहीं रहा। अशिक्षित या कम शिक्षित होने के कारण इनके पास रोजगार के साधन भी सीमित है। बेरोजगारी के मोर्चे पर झारखंड राज्य के लिए अच्छी खबर नहीं है, बेरोजगारी दर में लगातार इजाफा देखने को मिल रहा है।

ऋणग्रस्तता– आदिवासी लोग अपनी गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी तथा अपने दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण ऋण लेने को मजबूर होते है। जिसके कारण दूसरे लोग इनका फायदा उठाते है। आदिवासियों के लिए ऋणग्रस्तता की समस्या सबसे जटिल है जिसके कारण प्रायः जनजातीय लोग साहूकार जैसे लोग के चंगुल में फंस जाते हैव उनके शोषण के शिकार होते हैं।अपनी पुस्तक जनजातीय भारत में नदीम हसनैन ने बताया है कि नृजातीय अध्ययनों तथा प्रमाणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि ठेकेदारों तथा अन्य लोगों के द्वारा जनजातीय क्षेत्र में हस्तक्षेप से पूर्व ये जनजातियां इतनी दुर्बल, निर्धन व विवश नहीं थी। ये लोग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थे। वन संपदा पर इनका अधिकार था। दुर्भाग्यवश जब आर्थिक विकास की परियोजनाओं के अंतर्गत जनजातीय क्षेत्रों में विकास का झोंका आया तथाइनके क्षेत्र सभी प्रकार के लोगों के लिए खोल दिए गए तो विकास का लाभ उठाने के लिए ये जनजातियां प्रायः तैयार नहीं थी। प्रशासन के संगठित प्रयास की अनुपस्थिति में बाहरी तथा तथाकथित सभ्य लोगों ने इन जनजातियों की संवेदनशीलता का भरपूर लाभ उठाया। नदीम हसनैन आगे कहते हैं कि यद्यपि हमारे पास ऋणग्रस्तता से संबंधित वैज्ञानिक तरीकों से इकट्ठा किए गए आंकड़े बहुत कम है फिर भी कहा जा सकता है कि यह समस्या बहुत ही गंभीर है।

भूमि हस्तांतरण– आदिवासी समाज मुख्य रूप से अपनी जीविका के लिए कृषि पर ही आश्रित होता है। आंकड़ों के अनुसार लगभग 88 प्रतिशत जनजातीय आबादी कृषक है। जनजातियों का अपनी भूमि से बहुत भावनात्मक लगाव रहता है। संचार व्यवस्था में विस्तार होने के कारण समस्त जनजातीय क्षेत्र बाहरी लोगों के लिए खुल गया। ये बाहरीवर्ग इन क्षेत्रों में अपने अपने उद्देश्यों व स्वार्थों के साथ प्रवेश कर गया। जिसके कारण भूमि अधिग्रहण में काफी इजाफा हुआ है। अनुसूचित क्षेत्र व अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार अन्य बहुत से तरीके हैं जिनके द्वारा बाहरी लोग जनजातियों की भूमि को हड़प लेते है।

अस्थाई कृषि– भारतीय जनजातियों में अस्थाई कृषि का प्रचलन बहुत पुराना है। अस्थाई कृषि का अर्थ है कि कुछ समय तक एक ही भूमि पर कृषि कार्य करना फिर उसे खाली छोड़ देना। भारत में इसका प्रचलन असम के सुदूरवर्ती पहाड़ों, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार व झारखंड में अधिक है। यद्यपि अधिकतर क्षेत्रों में इस प्रकार की कृषि को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है फिर भी इसका प्रचलन सीमित स्तर पर ही सही परंतु देखा जा सकता है। भूतपूर्व उपमहानिरीक्षकएम. डी. चतुर्वेदी के अनुसार "इस विचार को त्यागना चाहिए, भूमि कटाव के लिए मुख्यतःअस्थाई कृषि ही उत्तरदाई है।" अतः अस्थाई कृषि को एक बुराई के रूप में देखा गया है।

स्वास्थ्य– जनजातीय समाज के लोगों का सामान्य स्वास्थ्य बहुत बुरा नहीं होता है परंतु लगातार संक्रमण से उन्हें अक्सर बीमारियों का सामना करना पड़ता है। साथ ही दूर–दराज के क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधा की कमी के कारण उनको काफी असुविधा का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी तो हालात काफी मुश्किल हो जाते हैं और तब अस्पताल के अभाव में इनके जीवन मृत्यु तक बात पहुंच जाती है। यह बात सही है कि सरकार स्वास्थ्य तथा चिकित्सा की दिशा में अधिक से अधिक सुविधाएं देने के इच्छुक है किंतु यह भी कटु सच्चाई है कि सरकारी योजनाओं व नीतियों का धरातल पर पहुंच न के बराबर ही हो पाता है। प्रायः

जनजातीय लोग सरकारी अस्पतालों में कम ही आते हैं इसका प्रमुख कारण है इनकी अपनी चिकित्सा पद्धतियां। ढेबर आयोग की टिप्पणी के अनुसार "एक सरल प्रकृति का मनुष्य पुजारी तथा डॉक्टरदोनों के पास जाएगा। पुजारी उसके लिए प्रार्थना करेगा, डॉक्टर उसको दवा देगा। मान्यता यह है कि ईश्वर पुजारी की प्रार्थना सुनता है जिससे दवा का प्रभाव बढ़ जाएगा। डॉक्टर एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से दैवीय शक्तियां कार्य करती है।" अतः आधुनिक चिकित्सा पद्धति को इन जनजातियों तक पहुँचाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए स्थानीय विश्वासों, आस्थाओं तथा संवेदनाओं को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

मदिरापान–जनजातियों में मदिरापान का बहुत अधिक प्रचलन है। अधिकतर जनजातियाँ मदिरापान के संबंध में बहुत संवेदनशील हैं तथा महुए के पेड़ को पवित्र मानती है। मदिरापान सदियों से उनकी परंपराओं का एक भाग रहा है। जनजातीय समाज में लोग अपने ही घरों में मदिरा बनाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी क्रियाविधि हो सब में मदिरा का सेवन जनजातीय समाज के लोग करते हैं। झारखंड राज्य में भी मदिरा का सेवन आदिवासी समुदाय में बहुतायत मात्रा में किया जाता है। अपने शोध कार्य के दौरान वहाँ के लोगों से अन्तःक्रिया के उपरांत पता चला कि मदिरापान सदियों से उनकी परंपरा का भाग रहा है। मदिरा को बनाने के लिए वह प्रायः महुए के फल को इस्तेमाल में लाते हैं। महुए के अलावा बाजरा व चावल से भी मदिरा का निर्माण करते हैं। आदिवासियों के पास अपनी बनाई मदिरा पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद सरकार द्वारा लाइसेंस प्राप्त ठेकेदारों द्वारा बाहरी मदिरा के विक्रय ने आदिवासियों को बहुत सी समस्याओं में उलझा दिया है। मदिरा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बाहरी असामाजिक तत्व इन पिछड़े समुदायों के बीच पहुंचकर आपत्तिजनक कार्य करते हैं। साथ ही इसके आदी होकर आदिवासी अपने को आर्थिक रूप से और भी कमजोर करते जाते हैं।

आवास– सरकार द्वारा निर्धन जनजातियों को उपलब्ध कराए जाने वाले अधिकतर आवास इनकी आवश्यकतानुसार नहीं होते है। इन आवासों का नक्शा अक्सर एक ऐसा वास्तुकार बनाता है जोजनजातीय बस्तियों या आवश्यकताओं, परंपराओं तथा संस्कृति से बिल्कुल अनभिज्ञ होता है। इन जनजातियों के विश्वासों, परंपराओं तथा रीति–रिवाजों पर ध्यान दिए बगैर कोई भी आवासीय योजना सफल नहीं हो सकती है। नगरीय संस्कृति के आधार पर बने आवास इन जनजातियों को स्वीकार्य नहीं होंगे। किसी भी आवास योजना के बनने से पूर्व जनजातियों से उनकी आवश्यकताओं के संबंध में वार्तालाप किया जाना आवश्यक होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि इनकी आवासीय स्थिति में सुधार न किया जाए बल्कि इसका आशय यह है कि मकानों की संरचना के संबंध में इन जनजातीय लोगों के विचारों तथा विश्वासों को ध्यान में रखकर सुधार किया जाए। इसके साथ–साथ स्थान का चयन तथा आवासों की संरचना भी उनके रीति रिवाज एवं परंपराओं के अनुसार ही होनी चाहिए।

संचार–सदियों से आदिवासी समाज के लोग घने जंगलों और दूरवर्ती क्षेत्रों में रहते आए हैं। जहां आम लोगों का पहुंच पाना थोड़ा मुश्किल होता है। संचार माध्यमों की कमी इसका मुख्य कारण है। आज के परिवेश में यह मानी हुई बात है कि किसी भी क्षेत्र के विकास व प्रगति में संचार व्यवस्था का होना अत्यंत आवश्यक है। आज जिस समाज में टेलीविजन, समाचार–पत्र,रेडियो तथा टेलीफोन जैसे संचार माध्यम का अभाव हो तो वहां का विकास स्वतः ही धीमा पड़ जाता है। दूरभाष तथा वायु–संचार की दिशा में अभी बहुत कुछ होना बाकी है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर दूरभाष एवं वायु–संचार की कोई व्यवस्था नहीं है। कठिनाइयों का सामना कर रही जनजातियों के लिए ये सुविधाएं निश्चित ही बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। यहां कमी प्रायः सरकार के प्रयास की भी है, जिन्होंने इन बातों पर प्रभावी ढंग से विचार नहीं किया। हालांकि इधर कुछ सालों से आदिवासी क्षेत्र में संचार के माध्यमों का विकास तेजी से हुआ है, किंतु वह पर्याप्त नहीं है।

संचार व्यवस्थाओं का विकास जनजातियों की राष्ट्रीय जागरूकता तथा बौद्धिक विकास में निश्चित रूप में सहायक होगा। ये संचार व्यवस्थाएं जनजातीय क्षेत्रों की आर्थिक स्थितियों के सुधार में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी। इतिहास साक्षी है कि जब भी जनजातीय क्षेत्रों में विकास की योजनाओं कोक्रियान्वित किया गया है स्थानीय लोग बुरी तरह से शोषित हुए हैं। अतः योजनाओं को बनाते व कार्यान्वित करते समय इन जनजातीय लोगों को बाहरी तत्वों के शोषण से बचाने की समुचित व्यवस्था पर भी उपयुक्त बल दिया जाना चाहिए।

औद्योगीकरण व नगरीकरण– यह कार्पोरेट साम्राज्यवाद का युग है और कार्पोरेट जगत अपनी व्यावसायिक प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए राजनीतिक व रणनीतिक मोलभाव का व्यवस्थित उपयोग करना बखूबी जानता है। साम्राज्यवाद की यह अन्धी दौड़ उपनिवेशवाद का एक छदम रूप भी है। जहां वर्चस्व स्थापित करने की परस्पर होड़ कंपनियों में लगी रहती है। वर्तमान वैश्विक युग में कार्पोरेट जगत दुनिया के हर उस पहलू पर अपना आधिपत्य जमा लेना चाहता है जो उसके व्यावसायिक हितों की पूर्ति करता है।

बाद 5 नवंबर, सन 2009 की है जब 37 गैर–सरकारी संगठनों से जुड़े झारखंड के दूर–दराज के जनजातीय इलाकों से आए सैकड़ों आदिवासियों ने रांची रेलवे स्टेशन से लेकर राजभवन तक पैदल मार्च किया था। वे यहां विकास परियोजनाओं में न तो अपनी हिस्सेदारी की मांग करने के लिए आए थे और ना ही उनकी मंशा राजनीतिक ताकत को इकट्ठा करने की थी। बल्कि वे लोग सैकड़ों किलोमीटर का सफर तय करके झारखंड की राजधानी रांची में सरकार से अपनी जमीन पर अधिकारके मांग को लेकर यहां पहुंचे थे।यह ऐसी जमीन थी जो औद्योगिक अथवा खननपरियोजनाओं के चलते उनसे छीनी जा रही थी। जनजातियों का आर्थिक उत्थान इन विकास योजनाओं का तर्कसंगत परिणाम होना चाहिए था, परंतु ऐसा हुआ नहीं। झारखंड की मैथन, कोनार तथा पचेत जैसी प्रमुख विद्युत परियोजनाएं साथ ही रांची तथा जमशेदपुर की स्टील परियोजनाएं ऐसी कुछपरियोजनाएं है जो जनजातियों के विस्थापन का प्रमुख कारणबनी।

निर्जनीकरण व जनसंख्या ह्रास– निर्जनीकरण व जनसंख्या ह्रास की समस्या जनजातीय भारत की एक दुर्भाग्यपूर्ण तस्वीर पेश करती है। यह एक अजीब विडंबना है कि एक ओर बड़ी जनजातियां जैसे गौड़, भील, संथाल आदि की जनसंख्या राष्ट्रीय औसत से बढ़ रही है तो दूसरी ओर दर्जनों छोटी–छोटी जनजातियां निरंतर लुप्त होने के कगार पर है। जनजातीय निर्जनीकरण के प्रमुख कारणों में परिस्थितियों में परिवर्तन को प्रायः प्रमुख रूप से सम्मिलित किया गया है। प्रकृति–मानव साम्य मेंविघ्न तथा वन नीति का अमानवीकरण ऐसी स्थितियां है जिसके कारण आदिम समुदाय सामाजिक–आर्थिक शोषण व वंचन के ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जिनमें जीवन को जीना ही उनके लिए सजा के समान है। पेयजल की कमी, कुपोषण तथा अन्य बीमारियां ऐसी जनजातियों का भाग्य बन चुकी हैं।

झारखंड में कुल 32 जनजातियां हैं जिनमें से 08 जनजाति आदिम जनजातियाँ हैं, जिन्हें अब विशेष जनजाति का दर्जा दिया गया है। ये जनजातियां असुर, विरहोर, विरजिया, माल–पहाड़िया, सौरिया–पहाड़िया, सबर, हिल खड़िया, परहिया हैं। वर्ष 2011की जनगणना के अनुसार झारखंड में विशेष जनजाति की कुल आबादी 2 लाख 92 हजार है। जिसमें सबर की आबादी तीन प्रतिशत ही है। अगर सरकार ने समय रहते हुए इन्हें विलुप्ति से बचाने के लिए कोई अहम कदम नहीं उठाया तो इन्हें बचाना मुश्किल हो जाएगा। पब्लिक हेल्थ रिसोर्स नेटवर्क(च्भ्त्छ) के द्वारा वर्ष 2017 में किए गए एक शोध में यह निकला है कि एक हजार सबर लोगों में हर साल 10 लोगों की मौत हो जाती है। रिपोर्ट के अनुसार शून्य से पाँच वर्ष के सबर समुदाय के 68 प्रतिशतबच्चे अपने सामान्य वजन से कम हैं। क्रॉनिक हंगर के कारण 56 प्रतिशत बच्चे नाटेपन की समस्या से जूझ रहे है और 42 प्रतिशत बच्चों में दुबलेपन की समस्या है।

प्रति एक हजार पर 131 लोग बीमार हैं। इस जाति विशेष में टी. बी. और मलेरिया जैसी बीमारियां ज्यादा है। 68 प्रतिशत बच्चे कुपोषित पाए गए। ये सर्वे पूर्वी सिंहभूम जिले के डुमरिया प्रखण्ड में 284 सबर परिवारों के बीच किया गया था। झारखंड में कुल सबर की जनसंख्या 8117 है। नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे–4 (छथ्भै) के आंकड़ों के अनुसार झारखंड में 32 प्रतिशत महिला और 24 प्रतिशत पुरुष ऐसे हैं जिनका ठडै कम है। इसका मुख्य कारण उचित पोषण का न मिल पाना है।

अतः हम गौर करें तो जनजातीय समुदाय मेंनिर्जनीकरणव जनसंख्या ह्रास की समस्या केवल झारखंड के ही कुछ विशेष जनजातियों की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के विभिन्न हिस्सों में निवास करने वाले जनजातीय समुदाय की है। इसीलिए इन्हें विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह का नाम भारत सरकार द्वारा दिया गया है।

प्रवसन– जनजातीय प्रवसन कोई नई घटना नहीं हैलेकिन योजनाबद्ध तरीके से तथा संगठित तौर पर बिचौलियों के माध्यम से बड़े पैमाने पर प्रेरित प्रवसन अवश्य एक नई घटना है। विश्व भर में लगभग सभी समुदायों को विशेष रुप से आदिम समुदायों को अपनी जमीन व मूल निवास स्थान से गहरा भावनात्मक संबंध रहा है। इसलिए हम देखते हैं कि जनजातीय प्रवसन सामान्य परिस्थितियों में नहींहोता। जनजातीय प्रवसन को दो पहलुओं से समझा जा सकता है पहला, वेकारकजो जनजातीय समूह को बाहर की ओर जाने के लिए मजबूर करते हैं और दूसरे वे कारक जो किसी जनजातीय समूह को अपनी ओर खींचते हैं या उन्हें विविध तरीके से आकर्षित करके अपना मूल स्थान छोड़ने के लिए उकसाते है। पहली श्रेणी के कारकों में सामाजिक आर्थिक शोषण, बीमारी व भुखमरी तथा बाढ़ व सूखे जैसी प्राकृतिक विपदाओं को शामिल किया जाता है। दूसरे प्रकार के कारकों में शहरों में रोजगार के बेहतर अवसर व अधिक मजदूरी जैसे कारक शामिल किए जा सकते हैजिसके कारण बहुत सी जनजातियां प्रवासी बन जाती है। बिहार तथा झारखंड के उरांव,हो, मुंडा तथा संथाल जैसी जनजातियां उत्तरी बंगाल के असम के चाय बागानों में काम के लिए जाती रही है परंतु पिछले कुछ दशकों में इन क्षेत्रों में हरियाणा, पंजाब और इसी तरह अन्य राज्यों की ओर पलायन या प्रवसन एक नई घटना है। विविध प्रकार के रिपोर्टों में यह उजागर किया गया है कि किस प्रकार प्रवसित जनजातियों का शोषण व उनके ऊपर अत्याचार किए जाते हैं।असंगठित होने के कारण ये प्रवासी अपने शोषण व अत्याचार के खिलाफ प्रभावी आवाज भी नहीं उठा पाते हैं।

इन सबके अतिरिक्त आदिवासी समाज की और भी कई छोटी–बड़ी समस्याएं हैं जो उनके अस्तित्व व पहचान के लिए बाधक और खतरनाक हैं। उपरोक्त सभी समस्याओं के निराकरण हेतु सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न प्रकार की योजनाओं का संचालन व क्रियान्वयन किया जाता रहा है। विशेष प्रावधानों के तहत विशेष योजना का भी प्रावधान किया जाता है जो कि जनजातीय क्षेत्रों के विकास में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं। जितनी भी योजनाओं का संचालन सरकार द्वारा किया जाता है उनके क्रियान्वयन एवं अनुपालन में कई तरह की परेशानियां आती है और इससे संबंधित समाचार मीडिया में प्रकाशित–प्रसारित होते रहते है। लेकिन इन समाचारों को पर्याप्त फॉलोअप नहीं किया जाता साथ ही गैर सरकारी संगठन, स्वयं सहायता समूह एवं राजनीतिक पार्टियां इत्यादि का सहयोग भी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता।

जनजातीय समस्याओं की बात की जाए तो मुख्यधारा की मीडिया से ज्यादा अपेक्षा नहीं किया जा सकता है बल्कि वैकल्पिक मीडिया अधिक गंभीरता से इस क्षेत्र में कार्य कर रहा है। साथ ही सामुदायिक समाचार पत्र–पत्रिकाओं, सामुदायिक रेडियो का कार्य अत्यंत सराहनीय है। प्रस्तुत शोध पत्र में जनजातीय समस्याओं पर मीडिया का कवरेज, नजरिया और निराकरण में मीडिया की भूमिका को परिलक्षित किया गया है।

मीडिया और जनजातीय समाज– मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। लोकतंत्र के तीन स्तंभों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बाद मीडिया को लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता, महत्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह, व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है।

मीडिया के कई रूप हैं– प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, ट्रेडिशनल मीडिया और न्यू मीडिया। इसके साथ ही सामुदायिक मीडिया और सोशल मीडिया। मीडिया एक समग्र तंत्र है जिसमें सूचना के विभिन्न माध्यम सम्मिलित होते है। इन सभी मीडिया की भूमिका को आदिवासी विकास के नजरिए से समझा जा सकता है–

प्रिन्ट मीडिया–प्रिंट मीडिया ऐसी तकनीकों का एक समूह है जिनका उपयोग प्रिंटेड (मुद्रित) रूप में सूचनाओं के प्रसारण और संकलन के लिए किया जाता है। प्रिंट मीडिया के अंतर्गत अखबार, पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तकें, पर्चे व पत्रक इत्यादि आते है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रिंट मीडिया संचार के लिए आवश्यक कोई लिखित या प्रकाशित सूचना है। यह जनसंचार का लिखित या चित्रमय रूप है आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा का स्तर कम है और प्रिंट मीडिया का उपयोग करने के लिए पढ़ा लिखा होना एक अनिवार्य शर्त है। इस नजरिए से देखा जाए तो आदिवासी इलाकों में प्रिंट मीडिया ज्यादा सफल नहीं हो सकता। हालांकि सामुदायिक समाचार पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से प्रिंट मीडिया गांव तक पहुंच रहा है।

इलेक्ट्रानिक मीडिया–इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से होने वाला जनसंचार इलेक्ट्रॉनिक मीडिया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जनसंचार का मुख्य माध्यम है। इससे हजारों मील दूर की गतिविधियों की लाइव जानकारी पल भर में उपलब्ध हो जाती है। रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, इंटरनेट और मल्टी मीडिया इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के घटक है। आदिवासी इलाकों में रेडियो एक सस्ता, सुलभ और प्रभावी माध्यम है। रेडियो भी प्रायः दो तरह के सरकारी व गैर सरकारी है। सरकारी रेडियो यानि आकाशवाणी की पहुँच 99 प्रतिशत क्षेत्रों तक है। सूचना तथा मनोरंजन की दृष्टि से आकाशवाणी एक सशक्त माध्यम है। आकाशवाणी के प्रसारण केंद्रों ने हमारी भारतीय संस्कृति व अन्य क्षेत्रीय संस्कृति को सहेजने एवं सँजोने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसके कार्यक्रम विशिष्ट श्रोता वर्ग को ध्यान में रखकर प्रसारित किए जाते हैं जिनमें युवाओं के लिए 'युववाणी', किसानों के लिए 'खेती किसानी' या 'चौपाल', बच्चों के लिए 'बाल–जगत' इत्यादि शामिल है।

आकाशवाणी रांची से आदिवासियों की भाषा में 'आदिवासी अखाड़ा' नामक कार्यक्रम भी लगातार प्रसारित किया जा रहा है। जनजातियों की विशिष्टता को आज भी आकाशवाणी ने संजो कर रखा है। निजी रेडियो के प्रसारण अभी गांवों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच सके है। टेलीविजन और इंटरनेट का अभी भी आदिवासी इलाकों में बहुत व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार नहीं हो पाया है।

परंपरागत माध्यम– परंपरागत माध्यमों के अंतर्गतलोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोककला, लोकनृत्य, नुक्कड़, नाटक, कठपुतलीनाच इत्यादि आते है। यह मीडिया भारत की परंपराओं से बना है इसीलिए इसे परंपरागत माध्यम कहा जाता है। वास्तव में यही एक महत्वपूर्ण माध्यम है जो आदिवासी क्षेत्रों के विकास में पूरी तल्लीनता से अपना योगदान दे रहा है। इतना महत्वपूर्ण होने के बावजूद यह माध्यम अन्य माध्यमों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है।

न्यू मीडिया–न्यू मीडिया वास्तव में परंपरागत मीडिया कासंशोधित रूप हैजिसमें तकनीकी क्रांतिकारी परिवर्तन व इसका नया रूप सम्मिलित है। इंटरनेट के आने के उपरांत जब इंटरनेट का प्रयोग मीडिया के लिए किया जाने लगा तो उसे न्यू मीडिया कहा गया। इसमें वेबसाइट, ईमेल,ई–समाचार पत्र,ई मैगजीन,

ब्लाग, वेब–पोर्टल इत्यादि आते है। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट के उपभोक्ताओं की संख्या बहुत कम है। ऐसे में आदिवासी विकास में न्यू मीडिया की भूमिका बहुत ही कम या नगण्य है।

सामुदायिक मीडिया– प्रत्येक समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति व अपनी विशेषताएं होती है। साथ ही उनकी अपनी समस्याएं एवंसंभावनाएं होती है। अलग–अलग समुदाय के विकास के लिए उपयोग में लाई जाने वाली मीडिया को सामुदायिक मीडिया कहते है। इसमें सामुदायिक समाचार–पत्र, सामुदायिक रेडियो, सामुदायिक पत्रिकाएं, सामुदायिक टीवी आदि शामिल है। आदिवासी क्षेत्रों के विकास में और जन–जागरूकता फैलाने में सामुदायिक मीडिया बहुत कारगर है। इसमें समुदाय की जरूरतों, आवश्यकताओं और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्हीं की भाषा में विविध कार्यक्रम तैयार किए जाते है व उनका प्रसारण किया जाता है। सामुदायिक रेडियो व सामुदायिक टी.बी. इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों के लिए बनाई जाने वाली योजना, नीतियों व कार्यक्रम को सामुदायिक मीडिया के माध्यम से आसानी से लोगों तक पहुंचाया जा सकता है।

सोशल मीडिया–सोशल मीडिया को मुख्य मीडिया के अंतर्गत नहीं रखा गया है। लेकिन कभी–कभी यह मुख्य मीडिया से अधिक प्रभावशाली होता है। सोशल मीडिया ने समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को भी समाज की मुख्यधारा से जुड़ने और खुलकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया है। इसमें सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स का इस्तेमाल किया जाता है। फेसबुक, ट्विटर, लिंकडइन, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, गूगल प्लस जैसी वेबसाइट्स इसके वाहक है। इसके माध्यम से किसी राष्ट्रीय महत्व के विषय को आसानी से लोगों तक पहुंचाना संभव है और लोगों की एक राय बनाना और सहमति कायम करना आसान है। इससे जुड़ने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत के तकरीबन 350 मिलियन सोशल मीडिया यूजर है। और अनुमान के मुताबिक वर्ष 2023 तक यह संख्या लगभग 447 मिलियन पहुँच जाएगी।वर्ष 2019 के जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय उपयोगकर्ता औसतन 2.4 घंटे सोशल मीडिया पर बिताते है। आदिवासी क्षेत्र में चूंकि इंटरनेट का व्यापक प्रचार–प्रसार नहीं हो पाया है इसलिए आदिवासी विकास व उनके समस्याओं के निराकरण में सोशल मीडिया की भूमिका बहुत कम या नगण्य है। हालांकि धीरे–धीरे इंटरनेट की पहुँच के कारण आदिवासी क्षेत्र के लोग भी सोशल मीडिया पर उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं तथा अपनी बातों को सबके समक्ष रख रहे हैं।

जनजातीय समस्याओं के निराकरण में मीडिया की भूमिका– विकास कार्यों में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। मीडिया लोगों तक पहुंचने तथा उनके विकास के लिए काफी प्रभावशाली माध्यम माना जाता है। इलेक्ट्रॉनिक, प्रिंट, परंपरागत और न्यू मीडिया द्वारा लोगों को जागरूकता, सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, प्रेरणा व सतर्कता आदि प्रदान किया जाता है। मीडिया द्वारा ही विकास योजनाओं और कार्यक्रमों का व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार किया जाता है। साथ ही लोगों की प्रतिक्रियाओं को भी सरकार तक पहुंचाया जाताहै। आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण और उनके विकास में मीडिया की भूमिका का परीक्षण करने पर पता चला कि आदिवासियों के प्रगति व विकास में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है लेकिन अफसोस कि आदिवासी मुद्दों को मीडिया उतनी गम्भीरता से नहीं लेता या फिर घटनाओं का सही से कवरेज नहीं करता।

सवाल यहाँ कई हैं किन्तु सबसे यक्ष प्रश्न यह है कि मीडिया में आदिवासी समाज या ग्रामीण इलाकों की समस्याओं को कितनी जगह मिल पाती है। आदिवासी मुद्दों पर तभी ध्यान दिया जाता है जब विस्थापन, भूमि–अधिग्रहण या फिर आदिवासी संघर्ष की बातें सामने आती है। सुधीश पचौरी ने अपनी पुस्तक भूमंडलीय समय एवं मीडिया में अपने एक लेख **'अहा ग्राम जीवन तू कहाँ'** में इस बात का जिक्र किया है कि मीडिया मेंबाजारवाद का भी बहुत व्यापक असर हुआ है। लोगों को सूचना, शिक्षा, और

मनोरंजन प्रदान करने के अलावाउन्हें जागरूक करने, प्रेरित व प्रोत्साहित करने, जनसमस्याओं को उठाने और उसके निराकरण में मीडिया की अग्रणी व महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह सत्य है कि आज के समय में हम मीडिया की भूमिका व इसके प्रभाव को नकार नहीं सकते इसलिए यहां यह तय करने की आवश्यकता है कि आदिवासी समाज के विकास में मीडिया की भूमिका क्या होनी चाहिए। क्योंकि मीडिया का प्रभाव हर जगह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूप में पड़ता ही है।

अध्ययन का महत्व–सरकार द्वारा विभिन्न सामाजिक समूहों के उत्थान के लिए विकास की परियोजनाओं और कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है। आदिवासी समाज के विकास के लिए विशेष कार्यक्रमों/योजनाओं और बड़े पैमाने पर बजट का प्रावधान होता है। प्रस्तुत अध्ययन में आदिवासी के समस्याओं और उन समस्याओं और मुद्दों पर सरकार का पक्ष और नजरिया तथा मीडिया की भूमिका को परिलक्षित किया गया है।

निष्कर्ष– जनजातीय लोगों की कई समस्याएं है जिनमें अशिक्षा, बेरोजगारी, अंधविश्वास, स्वास्थ्य, आवागमन के साधन, सड़क, बिजली, भूमि अधिग्रहण, जल, जंगल, जमीन, मृत्यु दर, कुपोषण, गरीबी, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, कृषि उपज में कमी, संस्थागत शक्तियों का हस्तांतरण, वामपंथी अतिवाद, सामाजिक समस्या जैसे टोनही प्रथा, बाल विवाह इत्यादि शामिल है। इन सभी मुद्दों व समस्याओं पर मीडिया अपने स्तर पर कार्य कर रहा है। समय–समय पर आदिवासी मुद्दों पर खबरें प्रकाशित व प्रसारित की जाती है। सरकार आदिवासी समुदाय के समस्याओं व मुद्दों के निराकरण के लिए योजनाएं व कार्यक्रम तो बनाती है लेकिन इन योजनाओं व कार्यक्रमों का समुचित क्रियान्वयन नहीं हो पाता है।

आवश्यकता इस बात की है कि मानसिक स्थिति के साथ–साथ आर्थिक व सामाजिक दशा के संबंध में भरपूर जानकारी प्राप्त किए बिना विकास के कदम को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। इस दायित्व को प्रायः मीडिया के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है। स्थानीय और वैश्विक जितने भी लोग मीडिया जैसे स्तम्भ से जुड़े है वे जनजातीय क्षेत्रों में जाएं और वहां के सभी पक्षों का अध्ययन व विश्लेषण करके समाज व सरकार को बताए कि वहां के लोगों की मूलभूत आवश्यकताएं क्या है। और उनका विकास उनकी विशिष्टता को संजोए रखते हुए कैसे किया जा सकता है। सरकार द्वारा भी इस दिशा में उचित कदम उठाकर आदिवासी मुद्दों पर गंभीरतासे कार्य किए जाने की आवश्यकता है।

सुझाव–बात चाहे जल, जंगल, जमीन और पर्यावरण की सुरक्षा की हो, या फिर मामला पूंजीपतियों एवं प्रभावशाली लोगों द्वारा महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की कवायद से जुड़ा हो, मीडिया दोनों स्थितियों में 'ओपिनियन मेकिंग' यानि जनमत निर्माण का कार्य करता है। लेकिन जब मीडिया भी उन्हीं लोगों के हाथों में हो, जो संसाधनों की होड़ में जुटे हैं तो मीडिया की निष्पक्षता और वंचितों के अधिकार हाशिये पर धकेल दिए जाते है। बड़े मीडिया घरानों पर दोष मढ़ने से काम नहीं चलेगा कि वे जनसरोकारों से जुड़ी पत्रकारिता से परहेज करते है। बल्कि ग्राम अथवा ब्लॉक स्तर पर छोटे–छोटे सामुदायिक 'क्लस्टर' बनाकर जनसहभागिता पर आधारित पत्रकारिता का मॉडल खड़ा करने की जरूरत है। क्योंकि वैकल्पिक मीडिया की ईमानदार व प्रतिबद्ध चुनौती ही बाजार में टिके रहने के लिए कार्पोरेट मीडिया को भी जनमुद्दों पर आधारित रिपोर्टिंग के लिए अपनी रणनीतियों में बदलाव के लिए प्रेरित कर सकती है। जिसका स्पष्ट प्रभाव आज धीरे–धीरे दिखने लगा है।

मीडिया को जनजातीय मुद्दों पर मुहिम चलाना चाहिए। जनजातीय मुद्दों को विभिन्न संचार माध्यमों द्वारा उठाना चाहिए औरसमय–समय पर उनका फॉलोअप करना चाहिए। ऐसा माहौल बनाना चाहिए कि सरकार उनके लिए कार्य करे और उनकी समस्याएं सुने। मीडिया को खुद पहल करके जनजातीय मुद्दों को कवर करना चाहिए, जैसा कि दो दशक पहले तक होता था। आज पत्रकारों में बदलाव के लिए या तो

जज्बे की कमी है या फिर वे विवश हैं। जनजातीय मुद्दों को मीडिया में लाने के लिए सामाजिक संस्थाओं और एन.जी.ओ. को भी आगे आना होगा। को–आपरेटिव मीडिया के छोटे–छोटे मॉडल भी कारगर हो सकते हैं। इस काम में गैर–सरकारी संगठनों और पत्रकारिता व जनसंचार से जुड़े अकादमिक संस्थानों की भूमिका महत्वपूर्ण साबित होगी। अकादमिक संस्थान इसके लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में मदद कर सकते हैं।

शोधकर्ताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, गैर सरकारी संगठनो और संवेदनशील पत्रकार भी इस काम में अपना योगदान दे सकते है। ताकि लोगों को उनके मूल निवास स्थान से न उजाड़ा जाए, उनके सामूहिक व स्वायत्त जीवन को सम्मान दिया जाए और उनके क्षेत्र के नियोजन में उनकी भलाई को ही सबसे ऊपर रखा जाए। लेकिन यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि निर्णय प्रक्रिया में समुदाय की भागीदारी ना हो। हालांकि पंचायतीराज व्यवस्था और स्थानीय निकायों के निर्णय प्रक्रिया में जनभागीदारी को विशेष महत्व दिया गया है। लेकिन इन अधिकारों के बारे में लोगों को बहुत अधिक जागरूकता नहीं होने से समस्या हो रही है। मीडिया लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक कर सकता है, जिससे संसाधनों की लूट को रोकने में मदद मिल सकती है साथ ही मूल निवासियों को अपने नैसर्गिक आवास से बेदखल भी नहीं होना पड़ेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- दुबे, श्यामचरण (1992), 'विकास का समाजशास्त्र', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- पचौरी, सुधीश (1998), 'मीडिया और साहित्य', राजसूर्य प्रा. लि., दिल्ली
- फरियाद, एम (2018), 'सोशल मीडिया के विविध आयाम', स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
- बबल, अनामीशरण (2009), 'मीडिया विवाद–संवाद', श्री नटराज प्र., दिल्ली
- भीम सिंह, वी. कृष्ण (2014), 'आदिवासी विमर्श', स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
- भारत की जनगणना, 2001;http//Jharkhand.nic.in
- मिश्र, डॉ० स्मिता (2002), भारतीय मीडिया, अंतरंग पहचान, भारत पुस्तक भंडार प्र., दिल्ली
- योजना (मई, 2013), प्रकशन विभाग, नई दिल्ली
- रफत, जे (2018), 'सोशल मीडिया एवं इसका ग्रामीण युवाओं पर प्रभाव', रिव्यू ऑफ रिसर्च
- शर्मा, डॉ० बिमलाचरण, विक्रम, नीति (2006), 'झारखंड की जनजातियाँ', क्राउन पब्लिकेशन, रांची
- शर्मा, राजीव लोचन (1967), 'जनजातीय जीवन और संस्कृति', सहचरी प्रकाशन, कानपुर
- सिंह, अरविन्द कुमार (2017), 'वेब पत्रकारिता', आदि बुक्स, नई दिल्ली
- हसनैन, नदीम (2005, सातवाँ संस्करण), 'जनजातीय भारत', जवाहर पब्लिशर्स, दिल्ली
- श्रीवास्तव, एवं कुमार (2017), 'सोशल मीडिया और युवा विकास', मीडिया मीमांसा
- Chaudhuri, B, (1982). 'Tribal Development in India Problems and Prospects'. Inter-India Publication.Delhi
- Couldry, Nick. (2013). 'Media] Society World Social Theory and Digital Media Practice', Polity Press Cambridge. UK.
- Pavarala, Vinod. (2003). 'Building solidarities: A case of community radio in Jharkhand', Economic and Political Weekly, Retrieved from http:// wwJstor.org/stable/4413632
- Rath, Govind C. (Ed- 2006). 'Tribal Development in India: Contemporaray Debate' Sage. New Delhi

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

हिंसा और अक्रामकता को कम करने में जनमानस की भागीदारी–एक अध्ययन

डॉ0 सरिता पाठक
व्यावहारिक मनोविज्ञान
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

सामान्य अर्थ में जिस किसी भी बात से दूसरों को पीड़ा पहुँचे वह हिंसा है। किसी प्राणी पर शासन करना, दास बनाना, किसी भी प्रकार की पीड़ा देना, सताना या अशांत करना हिंसा है। हिन्दू धर्म के अनुसार, प्रिय वचन नहीं बोलना, अप्रिय या कड़वे वचन का प्रयोग करना, दूसरे को हिंसा करने की अनुमति देना या प्रोत्साहित करना, दूसरों को डराना, धमकाना भी हिंसा ही है। हिंसा एक वैश्विक घटना है जिसके परिणामस्वरूप हर साल 1.6 मिलियन से अधिक लोगों की मौत होती है जो दुनियाभर में मौत के प्रमुख कारणों में से एक बनाता है। हिंसा एक अविश्वसनीय रूप से महंगा मुद्दा भी दिखाया गया है और अकेले 2015 में विश्व अर्थव्यवस्था पर हिंसा का कुल 13.6 ट्रिलियन होने का अनुमान लगाया गया था, यह आंकड़ा विश्व जी0डी0पी0 के 15.3 प्रतिशत के बराबर है। आज कोई भी देश हिंसा से अछूता नहीं है, इसके परिणामरूवरूप होने वाली अधिकांश मौतें निम्न से मध्यम आय वाले देशों में होती है जिसमें से कई आन्तरिक संघर्षों से त्रस्त हैं। हिंसा के दो रूप हो सकते हैं :–

1. स्थूल हिंसा से तात्पर्य ऐसी सभी बातों से है, जो प्रत्यक्ष रूप से दूसरों की पीड़ा का कारण बनती है। गाली–गलौज से लेकर मारपीट, हत्या, बलात्कार आदि की घटनाएं स्थूल हिंसा हैं।
2. सूक्ष्म हिंसा दूसरों पर अपने विचार, मान्यताएं थोपना, किसी का अनुचित फायदा उठाना आदि सूक्ष्म हिंसा है। इस तरह की चेष्टा दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता जताने का ही प्रयास है।

हिंसा के प्रकार :

(1) नस्लीय हिंसा
(2) लैंगिक हिंसा
(3) धार्मिक हिंसा
(4) घरेलू हिंसा

आक्रामकता हमारे दैनिक जीवन का एक हिस्सा है, लेकिन मनोवैज्ञानिक आक्रामकता को सिर्फ एक अर्थ से बाँधना मुश्किल है। आक्रामकता विविध रूप ले सकती है और हो सकता है यह दोनों शारीरिक रूप से, मौखिक रूप से या गैर मौखिक रूप से व्यक्त की जा सकती है। आक्रामकता लैटिन शब्द ऐग्रैरैसियो (हमले) से आता है। शास्त्रियों द्वारा आक्रामकता का अध्ययन इसलिये किया जाता है क्योंकि इसका सम्बन्ध जानवरों, पारस्परिक मेल तथा प्राकृतिक पर्यावरण में विकास सम्बन्धित है।

आक्रामकता की परिभाषा :

चैप्लिन के अनुसार, आक्रामकता का तात्पर्य दूसरों के प्रति प्रहार करना या क्षति पहुँचाना था।

ब्रेकोइज के अनुसार, आक्रामक व्यवहार उस व्यवहार को कहा जाता है जो दूसरों को सिर्फ हानि या क्षति ही नहीं पहुँचाता है बल्कि हानि या क्षति पहुँचाने का उद्देश्य भी रखता है।

वेरोन एवं वन के अनुसार, आक्रामकता एक ऐसा व्यवहार होता है जिसका लक्ष्य दूसरों को क्षति पहुँचाना या घायल करना होता है तथा जिससे बचने के लिए वह दूसरा व्यक्ति प्रेरित होता है।

मेयर्स के अनुसार, आक्रामकता एक ऐसा शारीरिक या शाब्दिक व्यवहार होता है जिनका उद्देश्य दूसरों को चोट पहुँचाना होता है।

आक्रामकता को कम करना या नियंत्रित करना
(REDUCING OR CONTROLLING AGGRESSION)

क्योंकि आक्रामकता एवं हिंसा विनाशकारी व्यवहार है इसीलिए ऐसे व्यवहारों को कम करना या उन्हें नियंत्रित करना आवश्यक है। इसके लिए कुछ उपाय प्रयुक्त किये जा सकते हैं–

1. विरेचन (Catharsis) :

आक्रामकता भावना को नियंत्रित करने या उसको कम करने की दृष्टि से विरेचन एक उपयोगी उपाय है। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक पर्ल्स 1973 के अनुसार, आक्रामक ऊर्जा को निरमुक्त होने या व्यक्त होने का अवसर मिल जाए तो इससे आक्रामकता या क्रोध का प्रभाव कम हो जाता है। इसे आक्रामकता न्यूनीकरण या हाइड्रोलिक मॉडल कहा जाता है। मनोचिकित्सकों का ऐसा ही विचार है। इनमें फ्रायड लारेंज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ऐसा देखा जाता है कि क्रोध से ग्रस्त व्यक्ति को यदि अपना क्रोध प्रदर्शित करने के लिए कोई और वस्तु या व्यक्ति मिल जाता है तो उसका क्रोध धीरे–धीरे कम हो जाता है। जैसे–गुस्से में पागल हुआ व्यक्ति बिस्तर पर हाथ पीटता है, बड़बड़ाता है या कुछ चीजें तोड़फोड़ कर अपना गुस्सा व्यक्त करता है। इससे आक्रामक ऊर्जा को बाहर निकलने का रास्ता मिल जाता है। इस तरह के व्यवहारों को विरेचन कहते हैं, इसीलिए इसे हाइड्रोलिक मॉडल भी कहा जाता है। क्योंकि विरेचन का थोड़ा अवसर मिल जाने से आक्रामक ऊर्जा अधिक से अधिक निरमुक्त हो जाती है। व्यक्ति धीरे–धीरे आक्रामकता या क्रोध के प्रभाव से मुक्ति पा लेता है। इसी प्रकार बच्चे मैदान में खेलते हैं तो खेलों के माध्यम से उनकी संवेगात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती रहती है एवं उनमें क्रोध का प्रभाव कम हो जाता है।

2. सामाजिक अधिगम (Social Learning) :

आक्रामकता एवं हिंसा को सामाजिक अधिगम के विभिन्न उपागमों का प्रयोग करके कम करने या नियंत्रित करने का प्रयास किया जा सकता है। जैसे–कुंठा या निराशा से प्रायः आक्रामकता का प्रदर्शन होता है। यदि व्यक्ति को अनावश्यक प्रत्याशा से बचने के लिए प्रशिक्षित किया जाए तो वह कुंठा से बच सकता है। साथ ही साथ वह यह भी सोच लेगा कि असफलता भी जीवन का एक पक्ष है। अतः उससे निराश होकर आगे का जीवन उलझन पूर्ण बनाना उचित नहीं है। ऐसी सोच विकसित करने पर व्यक्ति आक्रामकता से बचेगा इसी प्रकार लोगों के प्रतिकारी व्यवहार को भी नियंत्रित करने के लिए प्रेरित करना लाभकारी होगा। अध्ययनों में पाया गया है कि बच्चों के आक्रामक व्यवहार की अनदेखी की जाए और सहयोगी व्यवहार को पुरस्कृत किया जाए तो इससे भी आक्रामकता को नियंत्रित किया जा सकता है।

आजकल आक्रामक व्यवहार में वृद्धि करने में जनसंचार माध्यमों विशेषता टेलीविजन की भूमिका काफी बढ़ गई है। अतः दर्शकों विशेषकर बच्चों को यह समझाना उपयोगी होगा कि टेलीविजन के पर्दे पर दिखाई देने वाले मारपीट एवं अन्य हिंसक व्यवहार का जीवन की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि बच्चों में यह समझ उत्पन्न हो जाए तो वे स्वयं ही आक्रामकता नापसंद करना तथा वांछित व्यवहार को अपनाना प्रारम्भ कर देंगे। टेलीविजन पर हिंसक घटनाओं को प्रतिबंधित करने एवं अगेन स्तर पर पाबंदी लगाने से भी हिंसा तथा अपराधों में कभी आ जाती है।

3. परानुभूति (Empathy) :

आक्रामकता को कम या नियंत्रित करने में परानुभूति भाव काफी उपयोगी है। यदि लोगों में दूसरों के दुःख दर्द या परेशानियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाए तो लोग दूसरों को कष्ट या पीड़ा पहुंचाने से बचने का प्रयास करेंगे। बच्चों में परानुभूति की भावना पैदा करने से उनमें आक्रामकता घट जाती है।

4. दण्ड (Punishment) :

आक्रामक एवं हिंसक व्यवहारों को कम करने या नियंत्रित करने के लिए दण्डात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है। वैसे तो सामान्य दशाओं में शारीरिक दण्ड देने से व्यक्ति में प्रतिकार व्यवहार उत्पन्न हो सकता है। जो बच्चे प्रायः अधिक दंडित किए जाते हैं उनमें आगे चलकर आक्रामक व्यवहार अधिक प्रदर्शित होता है। परन्तु सामाजिक नियंत्रण हेतु तथा अराजकता रोकने के लिए सामाजिक विधान तथा नियम एवं कानून के अन्तर्गत दण्ड की अवस्था आवश्यक भी है। हिंसा एवं आक्रामकता को रोकने से दमित करने में वैधानिक दण्ड की व्यवस्था अपरिहार्य है वैसे दण्ड का प्रभाव अस्थाई होता है। अतः यदि इसका कोई विकल्प प्रयोग किया जाए जैसे व्यवहार परिमार्जन तो अच्छा होगा।

5. प्रतिकार की सम्भावना (Probability of Retaliation) :

यदि आक्रामक या हिंसक व्यवहार करने वाले को यह आशंका होती हे कि दूसरा पक्ष भी आक्रामक था एवं हिंसा पर उतर सकता है, तो आक्रामकता का प्रदर्शन कम हो जाता है या थम जाता है। अनेक अध्ययनों से इसकी पुष्टि भी हुई है। हिंसा के बदले हिंसा की सम्भावना अधिक होने पर व्यक्ति के हिंसक व्यवहार में और भी कमी आ जाती है। परन्तु यह सुरक्षित उपाय नहीं है। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि हिंसा प्रायः हिंसा को जन्म देती है। संक्षेप में आक्रामकता एवं हिंसा को कम करने या नियंत्रित करने का प्रयास किया जाना चाहिए या अवश्य तथा उपयोगी है। इसमें सफलता भी मिलेगी परन्तु विकृषणात्मक कारकों जैसे दण्ड के स्थान पर प्रेरक या प्रबलक कारकों या उपागमों के उपयोग पर अधिक बल देना चाहिए सभ्य समाज के लिए आक्रमक तब हिंसा एक भयंकर रोग है इसका निदान तथा उपचार अपेक्षित ही नहीं आवश्यक है।


Physical
Social
Types of Bullying
Verbal
Cyber

हिंसा रोकथाम
(VOILENCE PREVENTION)

हिंसा को रोकने के लिए शारीरिक दण्ड का खतरा और परिवर्तन एक आजमाया और परखा हुआ तरीका रहा है, यह अधिकांश देशों की मुख्य समस्या है :–

1. **जन जागरूकता अभियान (Public Awareness Compaign) :** संयुक्त राज्य के हिंसा निवारण महीने का आयोजन करते हैं। जहाँ महापौर उद्घोषणा द्वारा एक प्रस्ताव द्वारा निजी सामुदायिक और साधनी क्षेत्रों को ऐसी गतिविधियों में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो जागरूकता बढ़ाते हैं कि हिंसा काल के माध्यम से स्वीकार नहीं है।

2. **पारस्पारिक हिंसा (Interpersonal Voilence) :** पारस्परिक हिंसा को रोकने के लिए और नीतियों की प्रभावशीलता पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा वैज्ञानिक साहित्य की समीक्षा ने सात रणनीतियों की पहचान की जो प्रभावशीलता के लिए या तो मजबूत या तो उभरते सबूतों द्वारा समर्थित है। यह रणनीतियाँ परिस्थितिक मॉडल के सभी चार स्तरों पर जोखिम कारकों को लक्षित करती है।

(क) बाल देखभाल करने वाले सम्बन्ध (Child Care Relationship) : बाल दुर्व्यवहार को रोकने और बचपन की आक्रामकता को कम करने के लिए इस तरह के सबसे प्रभावी कार्यक्रमों में नर्स फैमिली पार्टनरशिप होम–विज़िटिंग प्रोग्राम खण्ड–88, और ट्रिपल पी (पेरेंटिंग प्रोग्राम) हैं। खण्ड–89, इस बात के उभरते सबूत भी हैं कि ये कार्यक्रम किशोरावस्था और प्रारंभिक वयस्कता में दृढ़ विश्वास और हिंसक कृत्यों को कम करते हैं, और संभवतः बाद के जीवन में अंतरंग साथी हिंसा और स्व–निर्देशित हिंसा को कम करने में मदद करते हैं।

(ख) युवाओं में जीवन कौशल (Skills in Youth) : सामाजिक विकास कार्यक्रमों में हासिल किये गये जीवन कौशल हिंसा में भागीदारी को कम कर सकते हैं और सामाजिक कौशल में सुधार कर सकते हैं, शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ावा दे सकते हैं और नौकरी की संभावनाओं में सुधार कर सकते हैं। जीवन कौशल सामाजिक, भावनात्मक और व्यवहारिक दक्षताओं को संदर्भित करता है जो बच्चों और किशोरों को रोजमर्रा की जिंदगी की चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने में मदद करता है।

(ग) लैंगिक समानता (Gender Equality) : लैंगिक समानता को बढ़ावा देकर महिलाओं के खिलाफ हिंसा को रोकने के उद्देश्य से सामुदायिक शिक्षकों का समर्थन करने के लिए अध्ययन शुरू हो रहे हैं।

(घ) सांस्कृतिक मानदण्ड (Cultural Norms) : संस्कृति या समाज समूह के भीतर हिंसा को प्रोत्साहित कर सकते हैं। हस्तक्षेप जो हिंसा के समर्थक सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंडों को चुनौती देते हैं, हिंसा के कृत्य को रोक सकते हैं और व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं, लेकिन उनकी प्रभावशीलता के लिए स्वास्थ्य आधार वर्तमान में कमजोर है।

(ङ) समर्थन कार्यक्रम (Supporting Program) : पारस्परिक हिंसा के पीड़ितों की पहचान करने और प्रभावी देखभाल और सहायता प्रदान करने के लिए हस्तक्षेप स्वास्थ्य की रक्षा करने और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हिंसा के चक्र को तोड़ने के लिए महत्वपूर्ण हैं। जिन उदाहरणों के लिए प्रभावशीलता के प्रमाण उभर रहे हैं उनमें शामिल हैं अंतरंग साथी हिंसा के शिकार लोगों की पहचान करने के लिए जाँच उपकरण और उन्हें उचित सेवाओं के लिए संदर्भित करना।

(च) सामूहिक हिंसा (Group Violence) : सामूहिक हिंसा को रोकने के लिए हस्तक्षेप की प्रभावशीलता के बारे में वैज्ञानिक प्रमाणों की कमी है। हालाँकि, नीतियां जो गरीबों में कमी की सुविधा प्रदान करती हैं, जो निर्णय लेने को अधिक जवाबदेह बनाती हैं, जो समूहों के बीच सम्बन्धों को कम करती हैं, साथ ही ऐसी नीतियों की सिफारिश की गई है जो जैविक, रासायनिक, परमाणु और अन्य हथियारों तक पहुंच को कम करती हैं। हिंसक संघर्षों की प्रतिक्रियाओं की योजना बनाते समय अनुशंसित दृष्टिकोण में प्रारंभिक चरण में यह आकलन करना शामिल है कि कौन सबसे कमजोर है और उनकी ज़रूरतें क्या हैं?

(छ) आपराधिक न्याय (Criminal Justice) : कानून के मुख्य कार्यों में से एक हिंसा को नियंत्रित करना है। समाजशास्त्रीय मैक्स वेबर ने कहा कि राज्य एक विशिष्ट क्षेत्र की सीमा के भीतर बल के वैध उपयोग के एकाधिकार का दावा करता है। कानून प्रवर्तन समाज में हिंसा को नियंत्रित करने का मुख्य साधन है।

सरकारी पुलिस और सेना सहित व्यक्तियों और राजनीतिक अधिकारियों को नियंत्रित करने वाली कानूनी प्रणालियों के माध्यम से हिंसा के उपयोग को नियंत्रित करती है। नागरिक समाज यथास्थिति बनाए रखने और कानूनों को लागू करने के लिए कुछ मात्रा में हिंसा को अधिकृत करते हैं, जिसका प्रयोग पुलिस शक्ति के माध्यम से किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. बैरन आरए। मानव आक्रामकता : न्यूयॉर्क : प्लेनम, 1977 (गूगल स्कॉलर)।
2. असामान्य आक्रामकता और हिंसक व्यवहार के हॉलर जे न्यूरोबायोलॉजिकल आधार। बर्लिनः स्प्रिंगर, 2014 (गूगल स्कॉलर)।
3. टेलर एसपी, एपस्टीन एस। आक्रामकता हमलावर के लिंग और पीड़ित के लिंग की बातचीत के एक समारोह के रूप में। व्यक्तित्व का जर्नल। 1967, 35 (3):474–86 (पबएमड) (गूगल स्कॉलर)।
4. जियानकोला पीआर, तोता डीजे। टेलर आक्रामकता प्रतिमान की वैधता के लिए और साक्ष्य। आक्रामक व्यवहार। 2008, 34:214–29.10.1002/ab.20235 [PubMed के]
5. जियानकोला पीआर, हेल्टन ईएल, ओसबोर्न एबी, टेरी एमके, फस एएम, वेस्टरफील्ड जेए। पुरूषों और महिलाओं में आक्रामक व्यवहार पर शराब और उत्तेजना के प्रभाव। जर्नल ऑफ स्टडीज ऑन अल्कोहल। 2002, 63 (1) : 64–73 (पबएमड) (गूगल स्कॉलर)।
6. बुशमैन बीजे। आक्रामकता पर हिंसक मीया के प्रभाव में विशेषता आक्रामकता की मॉडरेटिंग भूमिका। व्यक्तित्व और सामाजिक मनोविज्ञान का जर्नल। 1995, 69 (5): 950–60 (पबएमड) (गूगल स्कॉलर)।
7. फिंकेल ईजे।13 मॉडल : प्रायोगिक सामाजिक मनोविज्ञान में मेटाथ्योरी, सिद्धान्त और साक्ष्य अग्रिम। 49 ओल्सन जेएम और जन्ना एमपी (एड्स) संस्करण में। सैन डिएगो : अकादमिक प्रेस, 2014 (गूगल स्कॉलर)।
8. चर्मैक एसटी, बर्मन एम, टेलर एसपी। पुरूषों में भावनाओं और आक्रामकता पर उत्तेजना के प्रभाव। आक्रामक व्यवहार। 1997, 23 (1):1–10 (गूगल स्कॉलर)।
9. डीवॉल सीएन, ट्वेंज जेएम, गिटर एसए, बॉमिस (मुक्त लेखक्रॉसरेफ गूगल स्कॉलर)।
10. क्रिचफील्ड केएल, लेवी केएन, क्लार्किन जेएफ। सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार में आवेशगीलता, आक्रामकता और आवेगी–आक्रामकता के बीच सम्बन्ध : आत्म–रिपोर्ट उपायों का अनुभवजन्य विश्लेषण। जर्नल ऑफ पर्सनैलिटी डिसऑर्डर। 2004, 18(6):555।

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

मानव जीवन में आक्रामकता और हिंसा–एक अध्ययन

डॉ0 प्रतिभा त्रिपाठी
व्यावहारिक मनोविज्ञान (असिस्टेन्ट प्रोफेसर)
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

आक्रामकता और हिंसा ऐसे शब्द हैं जिनका अक्सर परस्पर विनिमय किया जाता है; हालाँकि, दोनों अलग हैं। हिंसा को किसी अन्य व्यक्ति को घायल करने या संपत्ति को नष्ट करने के इरादे से शारीरिक बल के उपयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जबकि आक्रामकता को आम तौर पर गुस्सा या हिंसक भावनाओं या व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जाता है। एक व्यक्ति जो आक्रामक है जरूरी नहीं कि वह हिंसा के साथ कार्य करे।

आक्रामकता और हिंसा समान नहीं हैं। जबकि एक व्यक्ति जो हिंसा का कार्य करता है वह आक्रामकता के साथ कार्य कर सकता है, एक आक्रामक स्वभाव वाला व्यक्ति आवश्यक रूप से हिंसक कार्यों में संलग्न नहीं होगा। हालांकि आक्रामकता का परिणाम शारीरिक या मौखिक हमला हो सकता है, कभी–कभी हमला रक्षात्मक या आवेगी हो सकता है और इसमें हानिकारक मंशा नहीं होती है। अक्सर आक्रामकता की एक भौतिक अभिव्यक्ति के रूप में मानी जाने वाली हिंसा प्रकृति में शिकारी, आवेगी, प्रतिक्रियाशील या रक्षात्मक हो सकती है। हिंसा स्थितिजन्य या पर्यावरणीय कारकों से विकसित हो सकती है और इसका परिणाम मानसिक स्थिति या व्यक्तिगत या सांस्कृतिक मान्यताओं से हो सकता है।

क्रोध एक ऐसी भावना है जो आमतौर पर अनुकूली और उपयुक्त होती क्योंकि यह लोगों को कुछ स्थितियों और परिस्थितियों में कार्य करने के लिए प्रेरित या सक्रिय करती है, जैसे किसी खतरे को सम्बोधित करना या किसी महत्वपूर्ण चुनौती पर काबू पाना। आपदा के संदर्भ में, यह ईंधन हो सकता है जो लोगों को शारीरिक और भावनात्मक रूप से अनुकूलित करने में सक्षम होने से परे कठिनाईयों के माध्यम से ले जाता है (केलेट, 2019)। हालांकि कुछ लोगों के लिए क्रोध एक व्यापक अनुभव बन सकता है, जो उनके स्वास्थ्य और भलाई को गम्भीरता से प्रभावित कर सकता है और कभी–कभी, जब आक्रामकता व्यावहार के साथ जोड़ा जाता है यहाँ तक कि उनकी या दूसरों की सुरक्षा भी। क्रोध को समस्याग्रस्त माना जाता है जब यह आवृतित, तीव्रता या अवधि के स्तर के साथ होता है जो महत्वपूर्ण संकट का कारण बनता है, सक्रिय रूप से व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों और उनके कामकाज में हस्तक्षेप करता है, और दूसरों के प्रति आक्रामकता व्यवहार से जुड़ा होता है।

आक्रामकता को कई तरह से चित्रित किया जा सकता है (जैसे कि आवेगी/नियोजित या प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष), विभिन्न रूप (शारीरिक, मौखिक और सम्बन्धपरक) ले सकता है और विभिन्न प्रकार के नुकसान (शारीरिक या मनोवैज्ञानिक) का कारण बन सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, हिंसा आक्रामकता का चरम रूप है। आक्रामकता में हमेशा हिंसा शामिल नहीं होती है, लेकिन हिंसा में हमेशा आक्रामकता शामिल होती है। आक्रामकता और हिंसा शायद ही कभी रचनात्मक होती है और केवल कभी–कभी क्रोध से उत्पन्न होती है। हांलाकि हिंसा को आम तौर पर अत्यधिक शारीरिक आक्रामकता के रूप में वर्णित किया जाता है, हाल के वर्षों में आक्रामकता के गैर–भौतिक रूपों को भी हिंसा माना जाता है, जब परिणाम गम्भीर होते हैं (एलन एण्ड एंडरसन, 2017)। उदाहरण के लिए अंतरंग साथी हिंसा (आईपीवी) में अक्सर भावनात्मक हिंसा और मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार शामिल होता है, जिसका उद्देश्य परिवार के सदस्य पर शक्ति और नियन्त्रण हासिल करना होता है और जो उनके भावनात्मक या सामाजिक कल्याण

पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। प्रमुख तंत्रों में से एक जिसके माध्यम से अंतरंग साथी हिंसा संचालित कर सकता है वह गैर–भौतिक है, जैसे खतरे और अन्य नियन्त्रित व्यवहार। कम या ज्यादा हद तक क्रोध इस व्यवहार का प्रेरक हो सकता है।

आक्राकमता की प्रकृति और प्रकार (Nature and Type of Aggression) :–

अन्य पुरूषों के शरीर के विरूद्ध शारीरिक हिंसा के अतिरिक्त गाली–गलौज और मौखिक आक्रमण आदि भी हो सकते हैं जिन्हें सभी आक्रमण कह सकते हैं। इसके अलावा दूसरे की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना या नष्ट करना दूसरे व्यक्ति के खिलाफ आक्रामक होने का एक अत्यधिक प्रभावी तरीका हो सकता है। यहाँ तक कि एक सामाजिक ठग के रूप में सूक्ष्म और नियन्त्रित कुछ भी पीड़ित को नुकसान पहुँचाने का एक शक्तिशाली स्रोत हो सकता है, एक ऐसा नुकसान जो इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। आकस्मिक नुकसान आक्रामक नहीं है क्योंकि इसका इरादा नहीं है। नुकसान जो सहायक क्रियाओं का एक आकस्मिक उपोत्पाद है वह भी आक्रामक नहीं है, क्योंकि नुकसान करने वाले का मानना है कि लक्ष्य कार्यवाही से बचने के लिए प्रेरित नहीं है (उदाहरण के लिए दन्त प्रक्रिया के दौरान अनुभव किया गया दर्द)। इसी तरह यौन स्वपीड़ावाद में दिया जाने वाला दर्द आक्रामक नहीं होता है क्योंकि पीड़ित इससे बचने के लिए प्रेरित नहीं होता है। वास्तव में दर्द एक उच्च लक्ष्य (बाउमिस्टर 1989) की सेवा में सक्रिय रूप से अनुरोध किया जाता है।

प्रारम्भिक बचपन के दौरान आक्रामक व्यवहार को सामान्य विकासात्मक प्रक्रिया का एक हिस्सा माना जाता है (ग्रेडेनस, प्रैट, ग्रेडेनस और हॉफमैन, 1992) किसी व्यक्ति के जीवन काल के दौरान आक्रामकता के कार्य बदलते हैं। जब छोटे बच्चों में मौखिक कौशल की कमी होती है तो आक्रामकता मुख्य रूप से शारीरिक होती है। जब मौखिक कौशल विकसित होते हैं तो उन्हें शान्तिपूर्ण संचार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन आक्रामक उद्देश्यों के लिए भी (फेरिस एण्ड ग्रिसो, 1996)। क्रोध का प्रकोप आमतौर पर 18 से 24 महीने की उम्र में चरम पर होता है और धीरे–धीरे पाँच साल की उम्र तक कम हो जाता है। ट्रैंबल एट आल (1999) ने पाया कि अधिकांश बच्चों ने अपने 2 वर्ष के अन्त तक शारीरिक आक्रामकता की शुरूआत का अनुभव किया है। शुरूआती आक्रामक व्यवहार में रोना, चीखना, गुस्से का नखरे करना, काटना, लात मारना, फेंकना और वस्तुओं को तोड़ना शामिला है।

शुरूआती बचपन में आक्रामक व्यवहार माता–पिता के अधिकार और माता–पिता की ओर से अपने बच्चे के प्रति अवास्तविक अपेक्षाओं के जवाब में हो सकता है। बाद में जैसे–जैसे सामाजिक सम्पर्क बढ़ता है, आक्रामकता साथियों के प्रति निर्देशित हो सकती है (ग्रेडेनस एट अल 1992) आगे चलकर चिढ़ाना, धमकाना, लड़ाई–झगडा, चिड़चिड़ापन, जानवरों के प्रति क्रूरता और आग लगाने जैसे व्यवहार होते हैं। प्रारम्भिक किशोरावस्था के दौरान, सामूहिक लड़ाई और हथियारों के उपयोग सहित अधिक गम्भीर हिंसा विकसित होती है। आक्रामकता की प्रकृति क्योंकि अलग–अलग उत्तेजनाएं अलग–अलग प्रकार की शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं के साथ मिलकर आक्रामकता के अलग–अलग रूप बनाती है।

नैदानिक वर्गीकरण (Clinical Classification) :–

फेशबैक (1970) के काम से अत्यधिक प्रभावित नैदानिक साहित्य अनुसंधान ने अक्सर आक्रामकता के दो रूपों को संदर्भित किया है पहला रूप ''भावात्मक'', ''रक्षात्मक'', ''आवेगपूर्ण'' या ''गर्म खून वाला'' आक्रामकता। इस प्रकार की आक्रामकता को दूसरों द्वारा शुरू की गई शारीरिक या मौखिक आक्रामकता की हिंसक प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जो अपेक्षाकृत अनियन्त्रित और भावनात्मक रूप से आवेशित होता है। इसके विपरीत, आक्रामकता के दूसरे रूप को ''शिकारी'', ''वाद्य'', ''सक्रिय'' या ''ठण्डे

खून वाले'' आक्रामकता के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की आक्रामकता को नियन्त्रित, उद्देश्यपूर्ण आक्रामकता के रूप में वर्णित किया जाता है जिसमें भावनाओं की कमी होती है जिसका उपयोग वांछित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

वाद्य बनाम शत्रुतापूर्ण आक्रमण (Instrumental and Hostile Aggression) :–

फेशबैक (1970) ने मूल रूप से इस टाइपोलॉजी को विकसित किया था। यह प्रभावशाली मॉडल आक्रामकता को वाद्य और शत्रुतापूर्ण कार्यों में अलग करता है। इंस्ट्रुमेंटल आक्रामकता पीड़ित की परेशानी से असम्बन्धित हमलावर पर कुछ सकारात्मक इनाम या लाभ (प्रभाव) पैदा करती है। शत्रुतापूर्ण आक्रामकता का उद्देश्य पीड़ित पर चोट या दर्द (नकारात्मक प्रभाव) उत्पन्न करता है। इस मामले में, हमलावर को बहुत कम या कोई फायदा नहीं होता है। इस मॉडल का व्यापक रूप से अलग–अलग परिणामों वाले बच्चों और वयस्कों के सामुदायिक नमूनों में अध्ययन किया गया है।

सक्रिय और प्रतिक्रियाशील आक्रामकता (Proactive and Reactive Aggression) :–

आक्रामकता के हाल के कई अध्ययन प्रतिक्रियाशील और सक्रिय आक्रामकता के बीच अन्तर करते हैं। इनमें से पहला शब्द आक्रामक व्यवहार को संदर्भित करता है जो उत्तेजना के जवाब में अधिनियमित होता है, जैसे हमला या अपमान, और यह आत्मरक्षात्मक और क्रोधित कार्यों दोनों में प्रकट होता है। बाद वाला शब्द उस आक्रामकता को संदर्भित करता है जो बिना स्पष्ट उकसावे के शुरू की जाती है, जैसे कि हम डराने–धमकाने वाले व्यवहार में देखते हैं। ऐसा व्यवहार क्रोध, शत्रुता या स्वयं की रक्षा करने की आवश्यकता से उत्पन्न नहीं होता है, बल्कि अन्य उद्देश्यों से होता है जो शक्ति का दावा करने, सन्दर्भ समूहों और अन्य ऐसे लक्ष्यों के अनुमोदन को सुनिश्चित करने से सम्बन्धित होता है। प्रतिक्रियात्मक और सक्रिय आक्रामकता पहले के सिद्धान्तकारों के समान है, जिन्हें भावात्मक और सहायक आक्रामकता कहा जाता है।

सकारात्मक बनाम नकारात्मक आक्रामकता (Positive and Negative Aggression) :–

सामान्यतया, आक्रामकता को एक नकारात्मक कार्य माना जाता है जो न केवल दूसरों से अस्वीकृति प्राप्त करता है, बल्कि इसके परिणामों में विनाशकारी और हानिकारक के रूप में भी मूल्यांकन किया जाता है। हालांकि, ब्लूस्टीन (1996) का तर्क है कि शब्द ''आक्रामक'' व्यवहार अस्पष्ट है, जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों व्यवहारों को दर्शाता है। एलिस (1976) ने सकारात्मक आक्रामकता को स्वस्थ, उत्पादक व्यवहार माना, यदि यह उत्तरजीविता, सुरक्षा, खुशी, सामाजिक स्वीकृति, संरक्षण और अंतरंग सम्बन्धों के बुनियादी मूल्यों को बढ़ावचा देती है। सकारात्मक आक्रामकता के संदर्भ में, आक्रामकता की एक निश्चित मात्रा को पूरे बचपन और किशोरावस्था में आवश्यक और अनुकूल माना जाता है क्योंकि यह स्वायत्तता और पहचान बनाने में मदद करती है।

आक्रामकता और हिंसा–वैचारिक मुद्दे और सैद्धान्तिक दृष्टिकोण (Aggression and Voilence-Conceptual Issues and Theoretical Explanations) :–

किसी भी व्यवहार के रूप में किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने का इरादा है जो नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता (बैरन एण्ड रिसर्डसन, 1994)। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण विशेषताएं शामिल है :–

1. आक्रामकता एक व्यवहार है–आक्रामकता एक आंतरिक प्रतिक्रिया नहीं है, जैसे क्रोध की भावनाएं या आक्रामक विचार (हालांकि ऐसी आंतरिक प्रतिक्रियाएं वास्तविक आक्रामकता की सम्भावना को बढ़ा सकती है।

2. आक्रामकता आकस्मिक के बजाय जान–बूझकर होती है। उदाहरण के लिए एक दंत चिकित्सक जान–बूझकर रोगी को नोवोकेन (जो दर्द होता है) का शॉट दे सकता है लेकिन लक्ष्य रोगी को नुकसान पहुँचाने के बजाय मदद करना है।
3. पीड़ित नुकसान से बचना चाहता है–इस प्रकार, आत्महत्या और सैडोमासोचस्टिक सेक्स प्ले को आक्रामकता नहीं कहा जाएगा क्योंकि पीड़ित सक्रिय रूप से नुकसान पहुँचाना चाहता है।

हिंसा शब्द के उपयोग में शोधकर्ता और आम लोग भी भिन्न हैं। एक मौसम विज्ञानी एक तूफ़ान को हिंसक कह सकता है अगर इसमें तेज हवाएं, बारिश, गरज, बिजली या ओले हों। शोधकर्ता हिंसा को अत्यधिक शारीरिक नुकसान (जैसे–चोट, मृत्यु) का कारण बनने वाली आक्रामकता के रूप में परिभाषित करते हैं। इस प्रकार सभी हिंसक कार्य आक्रामक होते हैं, लेकिन सभी आक्रामक कार्य हिंसक नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी दूसरे व्यक्ति पर चिल्लाना और अपशब्द कहना आक्रामक है, लेकिन हिंसक नहीं।

निराशा और अन्य अप्रिय घटनाएँ :–

आक्रामकता के शुरुआती सिद्धांतों में से एक ने प्रस्तावित किया कि आक्रामकता हताशा के कारण होती है, जिसे लक्ष्य–निर्देशित व्यवहार को अवरुद्ध करने के रूप में परिभाषित किया गया था (डोलार्ड एट अल।, 1939)। उदाहरण के लिए, यदि आप टिकट खरीदने के लिए लंबी लाइन में खड़े हैं, तो जब कोई आपके सामने भीड़ लगाता है तो निराशा होती है। इस सिद्धांत को बाद में यह कहने के लिए विस्तारित किया गया कि सभी अप्रिय घटनाएँ, केवल निराशाएँ ही नहीं, आक्रामकता का कारण बनती हैं (बर्कोविट्ज़, 1989)। निराशा, उत्तेजना, सामाजिक अस्वीकृति, गर्म तापमान, तेज शोर, खराब हवा (जैसे, प्रदूषण, दुर्गंध, पुराना धुआं), और भीड़ जैसी अप्रिय घटनाएं सभी आक्रामकता का कारण बन सकती हैं। अप्रिय घटनाएँ स्वचालित रूप से एक लड़ाई–उड़ान प्रतिक्रिया को ट्रिगर करती हैं।

आक्रामकता के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण :–

मनोवैज्ञानिकों के पास आक्रामकता के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं जो यह समझाने का प्रयास करते हैं कि हम आक्रामक क्यों हो जाते हैं और क्या उस व्यवहार को बदला जा सकता है। इस विषय पर अधिक सिद्धान्त प्रस्तावित किये गये हैं लेकिन ये तीनों अब तक समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं और यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है कि आक्रामकता कहाँ से उत्पन्न होती है। इस सिद्धान्तों में शामिल है–

(1) आक्रामकता का वृत्ति सिद्धान्त।
(2) निराशा–आक्रामकता सिद्धान्त।
(3) सामाजिक अधिगम सिद्धान्त।

1. **आक्रामकता का वृत्ति सिद्धान्त (थानाटोस सिद्धान्त)** (Instinct Theory of Aggression) :– आक्रामकता का पहला सिद्धान्त सिगमंड फ्रायड के दिनों में वापस जाता है। व्यवहार पर फ्रायड के सिद्धान्त समय के साथ बदलते गए। सबसे पहले उनका मानना था कि सभी व्यवहार ईरोस, जीवन वृत्ति से उपजी हैं। ये ऐसी प्रवृत्तियाँ थीं जो हमें जीवित रखती थीं और पुनरूत्पादन करना चाहती थीं। लेकिन 1920 में उन्होंने लिखा कि जीवन वृत्ति उन सभी आग्रहों या व्यवहारों की व्याख्या नहीं कर सकती है जो मनुष्य प्रदर्शित करते हैं। आक्रामकता हमेशा जिन्दा रहने और दूसरों को जिन्दा रखने की इच्छा में फिट नहीं बैठती। इसलिए बियॉन्ड द प्लेजर प्रिंसिपल में फ्रायड ने थानाटोस के बारे में लिखा। यह वह नाम था जो उसने मृत्यु वृत्ति को दिया था। मृत्यु वृत्ति ने यह समझाने में मदद की कि मनुष्य आक्रामक क्यों जो हो जाते हैं, वे हानिकारक व्यवहार में क्यों संलग्न होते हैं, या वे पिछले आघात को फिर से क्यों बनाना चाहते हैं।

2. **निराशा–आक्रामकता सिद्धान्त** (Frustration-Aggression Theory) :– यहाँ तक कि अगर आप पिछली बार याद नहीं कर सकते हैं कि आप किसी के साथ आक्रामक थे, तो मैं गारन्टी दे सकता हूँ कि आप उस समय को याद कर सकते हैं जिसमें आप किसी से निराश थे। निराशा एक सामान्य मानवीय भावना है जो तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति या कोई चीज हमें लक्ष्य तक पहुँचने से रोक रही होती है। यह लक्ष्य किसी निबन्ध को पूरा करने जितना सरल या जीवन के सबसे गहन प्रश्नों के उत्तर देने जितना जटिल हो सकता है। निराशा–आक्रामकता सिद्धान्त केवल यह बताता है कि आक्रामकता हताशा से उत्पन्न होती है। निराशा के आक्रामकता में बदलने की सम्भावना है, लेकिन अगर किसी व्यक्ति के पास आत्म–जागरूकता या आत्म–नियंत्रण का उच्च स्तर है, तो यह जरूरी नहीं है।

3. **सामाजिक अधिगम सिद्धान्त** (Social Learning Theory) :– अन्तिम आक्रामकता सिद्धान्त अब तक के सबसे प्रसिद्ध प्रयोगों में से एक है। सोशल लर्निंग थ्योरी 1960 के दशक में अल्बर्ट बंडुरा द्वारा प्रस्तावित की गई थी। बंडुरा अपने बोबो डॉल प्रयोग के लिए सबसे ज्यादा जाना जाता है, जिसने यह समझाने का प्रयास किया कि बच्चे कम उम्र से ही आक्रामकता कैसे सीखते हैं। उन्होंने प्रस्तावित किया कि आक्रामकता एक सीखा हुआ व्यवहार है। बच्चे केवल इसलिए आक्रमण करते हैं क्योंकि वे जो कुछ उन्होंने देखा है उसका अनुकरण कर रहे हैं। यहाँ बताया गया है कि प्रयोग कैसे घट गया। बच्चों को एक वयस्क, कुछ खिलौनों और एक बड़ी बोबो गुड़िया के साथ एक कमरे में रखा गया (एक बोबो डॉल उन इन्फ्लेटेबल मसखरों में से एक है जो आपके हिट करने पर वापस उछलती है) आधे बच्चे वयस्कों के साथ कमरे में बैठे थे क्योंकि वे धीरे–धीरे खिलौनों के साथ खेलते थे, थोड़ी आक्रामकता दिखाते थे। अन्य आधे वयस्क के साथ कमरे में बैठे थे क्योंकि वयस्क ने आक्रामक रूप से बोबो गुड़िया को मारा या लात मारी। इनमें से कुछ वयस्कों ने अश्लील भाषा का इस्तेमाल किया या यहाँ तक कि बोबो डॉल के सिर पर हथौड़े से मारा। फिर बच्चों को वयस्कों से अलग कर दिया गया और अधिक रोमांचक खिलौनों के साथ अकेले कमरे में रखा गया। कुछ मिनटों के बाद बच्चों को परेशान करने के लिए खिलौनों को हटा दिया गया। फिर सभी बच्चों को एक तीसरे कमरे में ले जाया गया, जहाँ एक और बोबो डॉल खड़ी थी। जिन बच्चों ने आक्रामक वयस्कों को देखा था वे स्वयं आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करने की अधिक संभावना रखते थे। बच्चे केवल नकल कर रहे थे और मॉडलिंग कर रहे थे जब वे बोबो गुड़िया के प्रति लात मारते थे, या अन्यथा आक्रमक थे। यह इस प्रयोग से है कि बंडुरा ने प्रस्तावित किया कि आक्रामकता ने केवल सकारात्मक या नकारात्मक सुदृढ़ीकरण के माध्यम से सीखी जाती है बल्कि अप्रत्यक्ष अवलोकन सीखने के माध्यम से भी सीखी जाती है।

हिंसा के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण (Theories of Voilence) :–

वर्तमान अध्ययन ने घरेलू हिंसा और घृणा अपराधों के संदर्भ में पहचान और हित–समूह सिद्धान्तों की जांच की। पहचान और भूमिकाएं जिसके साथ लोग खुद को परिभाषित करते हैं खासकर यदि भूमिकाएं प्रकृति में हिंसक है, घरेलू हिंसा के ऊंचे स्तर तक पहुँच सकती है। हित–समूह सिद्धान्त का तर्क है कि विभिन्न मानदण्डों और मूल्यों वाले समूहों को एक दूसरे के खिलाफ रखने से हिंसा विशेष रूप से घृणा अपराधों में दिखाई देने वाली, उच्च स्तर तक पहुँच जाएगी।

1. **प्रतीकात्मक** (Symbolic Interaction Theory) :– बातचीत एक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य है जिसकी जड़ें गतिविधि, प्रक्रियाओं और द्वैतवाद को भंग करने पर जोर देने के साथ व्यवहारिकता में है। इस अर्थ में प्रतीकात्मक बातचीत यह विचार है कि लोग पर्यावरण के साथ होने वाल बातचीत के आधार

पर महत्व पाये हैं। 1979 में हेनरी ताजफेल और जॉन टर्नर द्वारा तैयार किए गए पहचान सिद्धान्त का तर्क है कि लोग जो अर्थ देते हैं वह उन भूमिकाओं से विकसित होता है जिन्हें वे पूरा करते हैं। इस सिद्धान्त का तर्क है कि लोग अपनी दुनिया को एक समूह के भीतर और एक बाहरी समूह में विभाजित करते हैं और बाहरी समूह के खिलाफ भेदभाव कर सकते हैं इस प्रकार अपनी आत्म छवि को बढ़ा सकते हैं (मैकलोड, 2008)।

2. **पहचान सिद्धान्तों और हित–समूह सिद्धान्तों** (Identity and Interest Group Theories) में बहुत समानता है। एक समानता यह तथ्य हे कि इन ग्रुप्स और आउट ग्रुप्स का उपयोग करने वाले अन्य के रूप में देखे जाने वालों के बीच अन्तर और भेदभाव दोनों है। एक और समानता यह विचार है कि व्यक्तिगत विचारधाराओं की तुलना में समूह के मूल्यों और मानदण्डों का अधिक महत्व है। पहचान सिद्धान्त इस विचार को प्रस्तुत करता है कि एक समूह में खुद को लेबल करना इन समूहों पर बहुत महत्व रखता है और परिणामस्वरूप जिस तरह से एक व्यक्ति खुद को देखता है उसे आकार देता है। हित समूह सिद्धान्त में समूह के मूल्य और मानदण्ड अन्य समूहों के साथ संघर्ष में अन्तिम निर्धारक के रूप में कार्य करते हैं भले ही कोई व्यक्ति हमेशा उन आदर्शों में विश्वास न करता हो।

पहचान सिद्धान्त कई जगहों पर सामने आता है, चाहे वह छात्र हो जो लगातार पुस्तकालय में रहने की आवश्यकता महसूस करता है क्योंकि एक अच्छा छात्र यही करता है या एक पुलिस अधिकारी जो हिंसक हो जाता है जब वे हिंसक गतिविधियों के कारण काम पर नहीं होते हैं उनकी नौकरी उनके गृह जीवन के लिए सामान्य है। पुलिस और सुधारक अधिकारी पहचान सिद्धान्त के कुछ सबसे मजबूत उदाहरण हैं।

आक्रामकता और हिंसा के निर्धारक (Determinant of Aggression and Voilence) :–

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा आक्रमक था तथा हिंसा प्रमुख निर्धारक चार बताए गए हैं।

(1) सामाजिक कारण (Social Causes)
(2) सांस्कृतिक कारण (Cultural Causes)
(3) वैयक्तिक कारण (Personal Causes)
(4) परिस्थितिजन्य कारण (Situational Causes)

1. **सामाजिक कारण** (Social Causes) :–

सामाजिक कार्यों में उन सभी कारकों को रखा जाता है जो अन्य व्यक्तियों के कुछ कहने या करने के कारण अर्थात् दूसरों के लाभ किए गए अंतक्रियाओं से आक्रामकता को उत्पन्न करता है ऐसे कारकों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :–

(अ) उत्तेजन का स्तर (Level of Arousal) :– जब व्यक्ति में किसी घटना से सांवेगिक उच्चतर सीमा तक पहुँच जाता है, तो उसमें आक्रामकता तो उत्पन्न होता है साथ ही साथ बाद के असम्बन्धित परिस्थितियों में भी सांवेगिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करके व्यक्ति को आक्रामक बना देता है। इसे जिलमैन (Zillman, 1988, 1994) ने उत्तेजन अंतरण सिद्धान्त (Excitation-Transfer Theory) की संज्ञा दिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार विशेष परिस्थिति में बढ़ी हुई उत्तेजन का स्तर चाहे इसका स्रोत जो भी हो, कुंठा, छेड़छाड़ आदि होने पर व्यक्ति में आक्रामकता के स्तर को बढ़ा देता है।

(ब) प्रत्यक्ष छेड़छाड़ (Direct Provocation) :– नवीनतम शोधों से यह पता चला है कि अन्य व्यक्तियों द्वारा किया गया दैहिक शाब्दिक छेड़छाड़ से आक्रामक व्यक्ति में तीव्रता से उत्पन्न होता है। ओहबुची एवं कंबरा (Ohbuchi and Kambara) ने अपने अध्ययन में पाया है कि जब किसी अन्य

व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति की आलोचना की जाती है व्यंगपूर्ण टिप्पणियाँ या दैहिक रूप से हमला किया जाता है और इन सबों को व्यक्ति द्वारा अनुचित माना जाता है तो ऐसी अवस्था में व्यक्ति ऐसी आलोचना करने वाले व्यक्ति के प्रति खुलकर तीव्र मात्रा में आक्रामकता दिखलाता है।

(स) कुंठा (Frustration) :– कुंठा आक्रामकता प्राक्कल्पना जिसकी चर्चा आक्रामकता के प्रमुख सिद्धान्त में की जा चुकी है, के अनुसार कुंठा आक्रामकता का एक सामान्य कारण है। यह प्रकल्पना जिसे डोल्लार्ड एवं उनके सहयोगियों (Dollard et.at., 1939) ने प्रतिपादित किया था कि मौलिक प्रारूप में दो बातें कही गई थी।

(i) कुंठा हमेशा किसी ने किसी रूप में आक्रामकता उत्पन्न करता है।

(ii) आक्रामकता हमेशा कुंठा से उत्पन्न होता है।

(द) प्रतियोगिता (Competition) :– Deutsch (1993) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि जब परिस्थितियाँ इस ढंग की होती है कि वहाँ व्यक्तियों में प्रतियोगिता अधिक होती है तो ऐसी हालत में आक्रामकता तर्क–वितर्क तथा क्रोध का एक सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है परन्तु जब परिस्थितियाँ ऐसी होती है जिसमें सहयोग एवं समर्थन अधिक होता है तो उसमें ऐसी सिलसिला नहीं के बराबर होता है।

2. सांस्कृतिक कारण (Cultural Causes) :–

कुछ संस्कृति में ऐसा विश्वास मानव तथा प्रत्याशा होता है कि अमुख परिस्थिति में आक्रामकता उपयुक्त व्यवहार करना जरूरी है। कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जब व्यक्ति की प्रतिष्ठा का कोई अपमान करता है तो वहाँ आक्रामक व्यवहार एक उचित व्यवहार माना जाता है इसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिष्ठा की संस्कृति की संज्ञा दी गई।

उदाहरण इराक की संस्कृति में देखने को मिलती है इस संस्कृति में कुछ मेडिकल डॉक्टर ऐसे हैं जिनका मुख्य कार्य यह तय करना है कि लड़की सही अर्थ में कुंवारी है या नहीं। अगर कोई लड़की की शादी नहीं हुई है और वह कुंवारी भी नहीं रह गई तो उसका परिवार उसे प्राण दण्डित कर सकता है ताकि उसके परिवार की प्रतिष्ठा या सम्मान बचा रहे। अन्य देशों में जैसे अमेरिका, भारत आदि में कोई ऐसी बात तो नहीं है परन्तु यदि किसी पति को यह पता चल जाता है कि उसकी पत्नी का किसी अन्य पुरूष के साथ प्रेम सम्बन्ध चल रहा तो इससे उसमें इतना अधिक संवेग उत्पन्न हो जाता है कि वह या तो पत्नी को या फिर उसके दोस्त को जान से मार डालता है।

3. वैयक्तिक कारण (Personal Causes) :–

वैयक्तिक कारण से तात्पर्य वैसे कारणों से होता है जो व्यक्ति के शीलगुण, चित्तवृत्ति आदि से सम्बन्धित होते हैं और आक्रामक व्यवहार को उत्पन्न करते हैं। ऐसे वैयक्तिक कारणों में निम्नांकित प्रमुख हैं :–

(अ) टाइप ए व्यवहार पैटर्न (Type a Behaviour Pattern) :– मनोवैज्ञानिकों के टाईप ए व्यवहार तथा टाइप बी व्यवहार पैटर्न का अध्ययन आक्रामकता से जोड़कर किया है। जैसा कि हम जानते हैं, टाइप ए व्यवहार पैटर्न एक ऐसा व्यवहार पैटर्न है जिसमें व्यक्ति अधिक प्रतियोगिता का भाव दिखलाता है, समय की आवश्यकता अधिक होती है तथा इनमें विद्वेष का मान भी तीव्र होता है। जिन व्यक्तियों में ऐसे गुण नहीं होते हैं उसे टाइप बी व्यवहार पैटर्न कहा जाता है।

(ब) विद्वेषी गुणारोपण पूर्वाग्रह (Hostile Attribution Bias) :– डोज और उनके सहयोगियों (Dodge et.at., 1986) द्वारा किए गए अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि जब व्यक्ति में विद्वेष गुणारोपण पूर्वाग्रह होता है तो इससे उसमें आक्रामकता उत्पन्न होती है। विद्वेष गुणारोपण पूर्वाग्रह से तात्पर्य व्यक्ति

की ऐसी प्रवृत्ति से होती है जिसके कारण वह दूसरों के व्यवहार में विद्वेष इरादा या अभिप्रेरणा उस परिस्थिति में निश्चित रूप से देखता है जब व्यवहार में अस्पष्टता होती है। जिन व्यक्तियों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है वह शायद ही कभी दूसरों को शक का लाभ देते हैं और सीधे–सीधे यह मान लेते हैं कि उनके द्वारा जान–बूझकर ऐसा व्यवहार किया गया है। अतः उसका समुचित जवाब (आक्रामक व्यवहार) देना उचित है।

(स) संवेदन जिज्ञासा (Sensation Seeking) :– कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें हमेशा कुछ नई–नई तरह की अनुभूतियों को प्राप्त करने में आनन्द आता है ऐसे व्यक्ति विशेष कर उन अनुभूतियों को प्राप्त करने में अधिक जिज्ञासा रखते हैं जो उत्तेजक स्वरूप के होते हैं तथा जिनमें कुछ जोखिम भी सम्मिलित होता है ऐसे व्यक्ति को समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा तुरन्त संवेदन जिज्ञासु तथा इस प्रक्रिया को संवेदन जिज्ञासा की संज्ञा दिया है।

(द) यौन विभिन्नता (Sex Differences) :– आक्रामकता पर व्यक्ति के लिंग का भी प्रभाव पड़ता है सामान्यता पुरूषों द्वारा महिलाओं की तुलना में अधिक आक्रामक व्यवहार दिखाया जाता है। जब परिस्थिति ऐसी होती है जिससे स्त्री तथा पुरूष में उत्तेजना उत्पन्न नहीं होता हे तो ऐसी परिस्थिति में पुरूष, स्त्री की तुलना में अधिक आक्रामक व्यवहार करती हे परन्तु यदि परिस्थिति ऐसी है जिससे स्त्री तथा पुरूष दोनों में ही काफी अधिक उत्तेजना उत्पन्न होती है तो इससे आक्रामकता के ख्याल से स्त्री तथा पुरूष में अन्तर समाप्त हो जाता है।

4. परिस्थितिजन्य कारण (Situational Causes) :–

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि आक्रामकता की उत्पत्ति कुछ ऐसे कारणों से भी होती है जिनका सम्बन्ध परिस्थिति या पर्यावरण जिसमें व्यक्ति रहता है से होता है ऐसे कारणों को परिस्थितिजन्य कारण कहा जाता है इन कारणों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण है :–

(अ) तापक्रम (Temperature) :– कई अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब वातावरण का तापक्रम ऊँचा होता है तो इससे आक्रामकता में वृद्धि होती है परन्तु ऐसा लगातार होता नहीं चला जाता है। एक बिन्दु से अधिक तापमान बढ़ने पर भी व्यक्ति की आक्रामकता में कमी आ जाती है Baron and Lawton के अध्ययनों के परिणाम में यह स्पष्ट रूप से पाया गया था कि जब सहभागियों को एक सुखद तापक्रम जैसे 70^0F से 72^0F से अनावृत्त किया गया तथा कुछ को इससे काफी अधिक एवं गर्म परिस्थिति जैसे 90^0F से 98^0F से अनावृत्त करने के बाद उन्हें दूसरे व्यक्तियों के प्रति आक्रामकता दिखाने का मौका दिया गया। परिणाम में पाया गया कि उच्च तापक्रम से अनावृत्त होने के बाद व्यक्ति की आक्रामकता में वृद्धि होने के बजाय कमी आ गई। इस तरह के परिणाम की व्याख्या करते हुए यह बतलाया गया कि चूँकि उच्च तापक्रम व्यक्ति को इतना बेचैन कर देता है कि वह हमेशा इससे छुटकारा पाने के लिए बेचैनी को कम करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अतः ऐसी परिस्थिति से यह बिल्कुल ही स्वाभाविक है कि उसके आक्रामकता में कमी हो।

(ब) मदिरा एवं औषधि (Alcohol and Drug) :– कई अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि पर्याप्त मात्रा में जब व्यक्ति मदिरापान कर लेता है तो वह अधिक मात्रा में आक्रामकता दिखलाता ळै तथा किसी भी छेड़छाड़ के प्रति बहुत जल्द आक्रामक व्यवहार कर बैठता है। मदिरा का ऐसा प्रवाह की व्याख्या करते हुए यह कहा गया कि मदिरापान व्यक्ति को इतना अधिक संवेदनशील बना देता है कि व्यक्ति आक्रामकता पूर्ण व्यवहार करने को बाध्य होता है।

(स) वातावरण में उपस्थित संकेत (Cues Available in Environment) :–

समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट किया है कि वातावरण में उपस्थित प्रवक्ता के संकेत आक्रामकता को उत्पन्न करने में तथा उसे तीव्र बनाने में काफी मदद करते हैं इन लोगो ने ऐसे संकेतों में हथियार की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण संकेत बताया है जिससे अकरम अकता में वृद्धि होती है इससे हथियार प्रभाव की संज्ञा दी गई है। हथियार जैसे बन्दूक, रिवाल्वर, तलवार, बम आदि की उपस्थिति में अन्य वस्तुओं की उपस्थिति की अपेक्षाकृत काफी बढ़ जाती है।

(द) आक्रामकता के संकेत के रूप में व्यक्ति (Individual in from of Cue Aggression) :– समाज मनोवैज्ञानिकों के सामने कुछ ऐसे सबूत हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिर्फ हथियार ही आक्रामकता के संकेत रूप से प्रभावकारी नहीं होते बल्कि ऐसे व्यक्ति की आक्रामकता के लिए संकेत के रूप में प्रभावकारी होते हैं जो किसी न किसी ढंग से आक्रामकता से सम्बन्धित होते हैं। Berkowitz et.al 1967 का मत है कि व्यक्ति का नाम, चेहरा, व्यवसाय एवं उनके अन्य वस्तुएं यदि किसी प्रकार से आक्रमक था से सम्बन्धित होते हैं तो ऐसी परिस्थिति में यह सभी आक्रामकता के संकेतों के रूप में आक्रामकता व्यवहार करने की प्रेरणा हमें देता है।

(य) कोलाहल (Noise) :– उच्चस्तरीय कोलाहल से व्यक्ति में आक्रामकता में वृद्धि हो जाती है बशर्ते कि ऐसे व्यक्ति को कोलाहल में रहने से पहले किसी तरह से क्रोधित कर दिया गया हो या उसे उत्तेजित कर दिया गया। कहने का तात्पर्य है कि कोलाहल व्यक्ति में तभी आक्रामकता उत्पन्न करता है जब व्यक्ति पहले से उत्तेजित हो। निष्कर्ष रूप, यह कहा जा सकता है कि आक्रामकता कई तरह के कारकों के द्वारा प्रभावित होता है। व्यक्ति द्वारा किए गए आक्रामक व्यवहार को समझने के लिए इन सभी कारणों पर ध्यान देना अनिवार्य है।

हिंसा की गतिशीलता (Dynamic of Voilence) :– हिंसा एक वैश्विक घटना है जिसके परिणामस्वरूप हर साल 1.6 मिलियन से अधिक लोगों की मौत होती है, जो इसे दुनिया भर में मौत के प्रमुख कारणों में से एक बनाता है। हिंसा एक अविश्वसनीय रूप से महंगा मुद्दा भी दिखाया गया है और अकेले 2015 में विश्व अर्थव्यवस्था पर हिंसा का कुल प्रभाव $13.6 ट्रिलियन होने का अनुमान लगाया गया था, यह आंकड़ा विश्व जीडीपी के 13.3% के बराबर है। जबकि कोई भी देश हिंसा से अछूता नहीं है, इसके परिणामस्वरूप होने वाली अधिकांश मौतें निम्न से मध्यम आय वाले देशों में होती है, जिनमें से कई आन्तरिक संघर्षों से त्रस्त हैं। हालांकि यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि हिंसक मौतों को केवल युद्ध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है और ऐसी मौतों में से 80% से अधिक सशस्त्र संघर्षों के बाहर होती है।

हिंसा की डब्ल्यूएचओ परिभाषा :– भौतिक बल या शक्ति का जान–बूझकर उपयोग, खुद के खिलाफ किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ या किसी समूह या समुदाय के खिलाफ धमकी या वास्तविक, जिसके परिणामस्वरूप चोट, मृत्यु, मनोवैज्ञानिक नुकसान, कुप्रबन्धन या अभाव का परिणाम होता है या होने की सम्भावना अधिक होती है। हिंसा के कृत्यों की प्रकृति को अधिक बारीकी से देखने पर, इन तीन श्रेणियों को आगे चार, अधिक विशिष्ट, हिंसा के प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) शारीरिक हिंसा (2) यौन हिंसा
(3) मनोवैज्ञानिक हिंसा (4) उपेक्षा करना

(1) शारीरिक हिंसा जान–बूझकर शारीरिक बल का उपयोग है, जिसका उपयोग हानि, चोट, अक्षमता या मृत्यु का कारण बनने की क्षमता के साथ किया जाता है। इसमें शामिल है, लेकिन यह इन तक ही सीमित नहीं है–खरोंचना, धक्का देना, पकड़ना, काटना, गला घोंटना, हिलाना, थप्पड़ मारना, मुक्का मारना,

मारना, जलाना, हथियार का उपयोग करना और किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ संयम या अपने शरीर का उपयोग करना। इस प्रकार की हिंसा से न केवल शारीरिक नुकसान होता है बल्कि इसके गम्भीर नकारात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई बच्चा अक्सर घर पर शारीरिक हिंसा का शिकार होता है तो वह मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित हो सकता है और इस तरह के आघात का शिकार हो सकता है।

(2) **यौन हिंसा** में एक पीड़ित के खिलाफ यौन कृत्य किया जाना या प्रयास करना शामिल है जिसने स्वतंत्र रूप से सहमति नहीं दी है, या जो सहमति या इनकार करने में असमर्थ है, इसमें शामिल है। लेकिन यह इन तक ही सीमित नहीं है जबरन शराब/नशीली दवाओं की सुविधा या अवांछित प्रवेश, यौन स्पर्श या यौन प्रकृति के गैर–सम्पर्क कार्य। एक अपराधी किसी पीड़ित को किसी तीसरे पक्ष के साथ यौन कृत्यों में शामिल होने के लिए मजबूर करना भी यौन हिंसा के रूप में योग्य है। इस प्रकार की हिंसा से शारीरिक नुकसान भी हो सकता है और ज्यादातर मामलों में इसके गम्भीर नकारात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी होते हैं।

(3) **मनोवैज्ञानिक हिंसा** (भावनात्मक या मानसिक शोषण के रूप में भी संदर्भित) में मौखिक और गैर–मौखिक संचार शामिल है जिसका उपयोग किसी अन्य व्यक्ति को मानसिक या भावनात्मक रूप से नुकसान पहुँचाने या किसी अन्य व्यक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करने के इरादे से किया जाता है। मनोवैज्ञानिक हिंसा का प्रभाव उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है जितना कि हिंसा के अन्य, अधिक शारीरिक रूपों का, क्योंकि अपराधी शिकार को व्यवहार के अधीन करता है जिसके परिणामस्वरूप कुछ प्रकार के मनोवैज्ञानिक आघात हो सकते हैं, जैसे कि चिन्ता, अवसाद या अभिघातजन्य तनाव विकार।

(4) **उपेक्षा करना** किसी व्यक्ति पर किसी ऐसे व्यक्ति की देखभाल करने की जिम्मेदारी होती है जो उसकी या खुद की देखभाल करने में असमर्थ है, लेकिन ऐसा करने में विफल रहता है, इसलिए उन्हें पर्याप्त देखभाल से वंचित करता है। उपेक्षा में पर्याप्त पर्यवेक्षण, पोषण या चिकित्सा देखभाल प्रदान करने में विफलता या अन्य जरूरतों को पूरा करने में विफलता शामिल हो सकती है जिसके लिए पीड़ित स्वयं को प्रदान नहीं कर सकता है। उपेक्षा से कई दीर्घकालिक दुष्प्रभाव हो सकते हैं जैसे–शारीरिक चोटें, कम आत्मसम्मान, ध्यान विकार, हिंसक व्यवहार, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बीमारी और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

आक्रामकता और हिंसा को कम करने की रणनीतियाँ (Strategies for Reducing Aggression and Voilence) :–

- माता–पिता और शिक्षकों को विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए कि वे किसी भी रूप में आक्रामकता को प्रोत्साहित या पुरस्कृत न करें।
- अनुशासन लाने के लिए सजा के प्रयोग को भी बदलने की जरूरत है।
- आक्रामक मॉडलों के व्यवहार को देखने और उसकी नकल करने के अवसरों में भारी कमी की जानी चाहिए।
- आक्रामकता को वीर व्यवहार के रूप में चित्रित करने से बचें।
- गरीबी और सामाजिक अन्याय निराशा का कारण है जो आक्रामकता की ओर ले जाता है।
- गरीबी और सामाजिक प्रभावों को कम करने से हताशा के स्तर को कम करने में मदद मिलती है और इस तरह कम से कम कुछ हद तक आक्रामक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगता है।
- सामुदायिक स्तर पर शान्ति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करना।
- अहिंसा की अवधारणा का प्रचार।

REFERENCE:

Akhur. S (1995) Some reflections on the nature of hatred and its emergence in the treatment process – Discussion of Kernberg's chapter "Hatred as a core affect of aggression" In: S. Akhtar, S. Kramer & H. Parris TALI, The birth of hatred. Developmental, clinical, and technical aspects of intense aggression (pp. 83 – 103). New Jercy: Jason Aronson Inc.

Aquilina, C. (1991). Violence by psychiatric in-patients. Medicine, Science, and the Law, 31, 306-3 12. Bakensans-Krasenburg, M. J., & van Ijzendoorn, M. H. (1993). A psychometric study of the Adult Attachment Interview: Reliability and discriminant validity. Developmental Psychology, 29, 870-87C.

Bandura A. (1973). Aggression: A social learning analysis. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall. Bandura. (1983). Psychological mechanisms of aggression. In: R. G. Geen & E. I. Dinnerstein (Eds).

Aggression: Theoretical and empirical reviews. (Vol. 1) Theoretical and methodological issues (pp. 1-40).1 York: Academic Press.

Bandura, A (1986). Social foundations of thought and action: A social cognitive theory. Englewood Cliffs, NJ Prentice Hall.

Bandura, A. Ross, D., & Ross, S. A. (1963). Vicarious reinforcement and imitative learning. Journal of Abnormal and Social Psychology, 67, 601-607.

Berkowitz, L. (1993). Aggression - Its causes, consequences, and control. New York: McGraw-Hill. Berzins, L. G., & Trestman, R. L. (2004). The development and implementation of Dialectical Behaviour Therapy in forensic settings. International Journal of Forensic Mental Health, 3, 93-103.

Bjorkly, S. (1996). Report Form for Aggressive Episodes: Preliminary report. Perceptual and Motor Skills, 83, 1139-1152.

Bjorkly, S. (1999). A ten-year prospective study of aggression in a special secure unit for dangerous patients. Scandinavian Journal of Psychology, 40, 57-65.

Bjorkly, S. (2001). Aggresjonens psykologi—psykologiske perspektiv pa aggresjon (Theories of aggression—psychological perspectives on aggression). Oslo, Nonvay: Universitetsforlaget.

Blair, T. (1991). Assaultive behaviour: Does provocation begin in the front office? Journal qf Psychosocial Nursing and Mental Health Services, 29, 21-26.

Bornstein, R. F. (2001). Clinical utility of the Rorschach inkblot method: Reframing the debate. Journal of Personality Assessment, 77, 39-47. Bowlby, J. (1989). A secure base: Parent-child attachment and healthy human development. New York:

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

झारखण्ड के लोहरा जनजाति और विकास योजनाऐं

वीणा कुमारी
पीएच0 डी0 शोध छात्रा,
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची

विश्व में भारत ही एक ऐशा विविधता वाला देश है जहाँ विविध प्रकार के समाज एवं समुदाय के लोग निवास करते है। इन विविध समुदायों में से हि एक समुदाय है जनजाति समुदाय भारत में लगभग 10 करोड़ जनसंख्या जनजाति का है। सबसे अधिक जनजातिय जनसंख्या मध्यप्रदेश में और दूसरा राज्य उड़िया तथा जनसंख्या की दृष्टि से तीसरे स्थान पर महाराष्ट्र है। जहाँ जनजातिय जनसंख्या अधिक पाया जाता है। परन्तु पुरे भारत में इनकी जनसंख्या बंटी हुई है और यही कारण है कि अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग जनजातियाँ पाई जाती है।

भारतीय संविधान के 5वीं0 अनुसूचित के अंतर्गत अनुच्छेद 244 (1) में 10 राज्यों को अनुसूचित क्षेत्रों के रूप में घोषित किया गया है। पाँचवी अनुसूचित के क्षेत्र रखने वाले राज्य वर्तमान में 10 राज्यों अर्थात आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, झारखण्ड राजस्थान और तेलंगना पाँचवी अनुसूचित के तहत जनजातीय बहुलता के आधार पर जनजातीय क्षेत्र का दर्जा, प्राप्त है। इन दस राज्यों में से एक हमारा राज्य है। झारखण्ड जो जनजातीय बहुल्य क्षेत्र है।

2011 की जनगणना के अनुसार झारखण्ड में कुल 32 अनुसूचित जनजातियों के रूप में सूचीबद्ध है। तथा 8 जनजातियों को आदिम जनजातियों की मान्यता प्राप्त है। परन्तु अब सरकार इन्हें आदिम जनजाति शब्द से संबोधित नहीं करती बल्कि इन्हें विशेष रूप से कमजोर जनजातियों की संज्ञा दि गई है। झारखण्ड में सबसे बड़ी जनजाति संथाल, जनजाति है तथा दुसरे स्थान पर उराँव जनजाति एवं तीसरे स्थान पर मुण्डा जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है। झारखण्ड में सबसे अधिक जनजातीय जनसंख्या वाला जिला राँची तथा न्यूनतम जनजाति जनसंख्या वाला जिला कोडरमा है। जबकि प्रतिशत के आधार पर देखा जाय तो खूँटी जिला आता है। झारखण्ड की जनजातीय समुदाय प्रजाति दृष्टिकोण से प्रोटो ऑस्ट्रालायड प्रजाति के अंतर्गत शामिल है तथा भाषा के आधार पर झारखण्ड की जनजातियों को दो समूहों में बाँटा गया हैः–

1. आस्ट्रो–एशियाटिक तथा
2. द्रविड़ भाषा परिवार में आते है।

लोहरा जनजातिः

2011 की जनगणना के अनुसार झारखण्ड में जनजातियों की कुल जनसंख्या 86,45,42 है तथा प्रतिशत में 26.2 प्रतिशत है। झारखण्ड की 32 जनजातियों में से एक लोहरा जनजाति भी बाकी जनजातियों की तरह अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध है। झारखण्ड में लोहरा जनजाति की जनसंख्या लगभग 1,85000 है। ये बात स्पष्ट है कि लोहरा एक जनजाति है। जो अपने और अपने साथ रहने वाले लोगों की आवश्यकता पूरी करते है। इसी पेशा की समानता की कारण लोहरा जाति के लोग भी अपने को लोहरा होने का दावा करते है। राँची जिला के गजेटीयर में स्पष्ट लिखा है कि लोहरा दक्षिण पश्चिम छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश से आये है, परन्तु उन्हें कनौजिया लोहरा कोल लोहरा या नागपुरिया लोहरा तथा छिर लोहरा कहते है। नागपुरिया लोहरा पुनः दो भाग में विभाजिग है एक सदलोहरा और दूसार लोहरा सतलोहरा लोगों पनुः दो भाग में विभाजित है। एक सतकमार और दूसरा लोहरा। सतकमार लोगों ने अपने जाति व्यवसाय

को छोड़कर अन्य व्यवसाय और सतकमार और लोहरा में शादी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में मात्र व्यवासायिक समानता जैसे लोहारगिरी के कारण लोहार और लोहरा को समान मानना, पुनः शोघ का विषय है। लोहरा खाने–पीने में बहुत कम निषेध मानते है। लोहरा, मुण्डा, उराँव जाति के लोगों द्वारा पकाए हुए भोजन को खाते है और माँस मछली भी खाते है।

जनजातीय विकास योजनायें संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत विशेष केंद्रीय सहायता तथा अनुदान दी गयी है। जनजातीय उप–योजना के माध्यम से राज्यों संध राज्य क्षेत्रों को जनजातीय विकास हेतु किए गए प्रयासों को पूरा करने के लिए विशेष केंद्रीय सहायता प्रदान की गई। इस सहायता का मूल प्रयोजन पारिवारिक आय सृजन की निम्न योजनाओं जैसे कृषि, बागवाानी, लधु सिंचाई, मृदा संरक्षण, पशुपालन, वन, शिक्षा, सहकारिता, मत्स्य पालन, गाँव, लधु उद्योगों तथा न्यूनतमआवश्यकता संबंधी कार्यक्रमों से है। जनजातीय विकास हेतु परियोजनाओं की लागत को पूरा करने तथा अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन स्तर को राज्य संधो राज्य क्षेत्रों के बराबर लाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के पहले प्रावधान के अंतर्गत राज्यों संध राज्य क्षेत्रों को भी अनुदान दिया जाता है। जनजातीय विद्यार्थियों को गुणवत्तापूरक शिक्षा प्रदान करने के लिए आवासीय विद्यालय स्थापित करने हेतु निधियों के कुछ हिस्से का प्रयोग किया जाता है।

झारखण्ड की जनजातियाँ एवं लोहरा जनजातिः

लोहरा जनजाति के जीवन पर भी धर्म का बड़ा प्रभाव है। धर्म अस्पष्ट को व्यक्त करता है। अविश्वसनीय को महत्व देता है और मुनष्य में भाईचारा पैदा करता है। प्रायः देखा जाता है कि जनजातियों के बीच एक आदमी के दिल में दूसरे आदमी के प्रति भग समा जाता है। साथ ही प्रकृति में होने वाली अद्भूत चीजों को देखकर उनके मन में भी समा जाता है। धर्म का स्वरूप रीति–रिवाज में ही प्रकट होता है। भिन्न–भिन्न लोग धर्म की व्याख्या अपने अपने ढंग से करते है। कोई आत्मा में विश्वास करता है कोई प्रकृतिवाद ही कहना ठीक होगा। जनजातियों के जीवन में धर्म के साथ ही जादू–टोने के भी बढ़ा महत्व है। यह धर्म से कुछ इस तरह मिला हुआ है कि दोनों में अंतर करना कठिन है। जादू दो प्रकार का होता है, एक हानि पंहुचाने के लिए किया जाए। इस तरह हम पाते है की अन्य जनजातियों की तरह लोहरा जनजाति भी प्रकृति जादू–टोना और टेबू आदि में विश्वास रखते है। इनके शादी के समय पाहन ही शादी कराते है और नाचगान में डमकच झूमर बजाते है। करमा, जीतिया और सरहुल त्यौहार के रूप में मनाते है। करमा में करम वृक्ष जीतिया में पीपल वृक्ष और सरहुल में सखुआ में पत्ते और लाल मुर्गे की बलि देते है। पहले लोहरा लोग मुर्दा को अपने जमीन में गाड़ते थे परन्तु अब मसना में गाड़ते है। लोहरा जनजाति भी जनि शिकार करते है। लोहरा जनजाति की अपनी खास भाषा नहीं है। परन्तु इनकी संपर्क भाषा नागपुरी, सदानि तथा उनका पेशा मुख्यतः लोहे के औजार और हथियार बनाना तथा मरम्मत करना, उनकी अपनी कोई बस्ती नहीं होती है वह उराँव मुण्डा एवं गैर जनजाति के साथ मिलजुल कर रहते है और अपने कार्य कुशलता से मदद पहुँचाकर रोजी कमाते है। काठ का नाद बनाते है, इनकी महिलाऐं प्रसूति के समयदाई का काम भी करती है। यही कारण है कि उपेक्षाकृत अन्य जनजातियों से इनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति बहुत निम्न है।

लोहरा जनजाति और अन्य जनजातियों से समीपताः

लोहरा जनजाति पेशा के संबंध में अन्य जनजातियों से अधिक कुशल है और व्यवसायिक धंधो में विशेष रूप रूचि रखते है। परन्तु एक बात और है जो इनको अन्य जनजातियों से अलग करती है। इनका न अपना गाँव है और न कोई पंचायत। इनके घर जहाँ–तहाँ मिलते है और विवाह के बाद अपने माता–पिता से अलग हो जाते है और अपना घर के अंदर कई रसोई घर हो जाते है। इनका घर खर–बांस,

छप्पर, घास आदि का बनता है, जो जंगल के बीच आसानी से उपलब्ध होता है। इनके घर में कोई खिड़की नहीं होती है। दिन के समय दरवाजे से रोशनी आती है। दरवाजे में लोहे के कब्जे लगे रहते है और जब बाहर जाते है तो ताला बंद कर जाते है। पुरूष लोग धोती–कुर्ता पहनते है। महिलाएं साड़ी का व्यवहार करती है। गाँव में ब्लाउज नहीं पहनती है, इनका गाँव मिश्रित होता है जिसमें मुण्डा, उराँव और गैर जनजाति लोग रहते है लोहरागिरी इनका मुख्य व्यवसाय है और ये हसुवा, टांगी, तीर–धनुष बनाते है। ये सामग्री पड़ोस के लोग क्रय करते है अथवा बाजार हाट मेंजाकर बेचते है, प्रो0 सच्चीदान्नद के अनुसार हर खेत के लिए एक लोहरा को एक कत चार पैला दोन अगहन में तीन पैला गूंदली, अगस्त मे और तीन पैला गोड़ा धान खेत में मिलता है। लोहरा जनजाति का खेत भी है, परंतु उनकी रूचि खेती में नही है। अपने मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त बचें समय में शिकार करते है। दुसरे जनजातियों एवं गैर जनजातियों के साथ रहने के इनको विकास का अच्छा अवसर मिल जाता है। इन लोगों में भी गोत्र प्रथा है जैसे सांड, सौन, मगहिया, कछुआ और धान तिर्की। शादी विवाह एक गोत्र में ही होता है। साधारणतः एक से अधिक विवाह नहीं होती है। परन्तु बाँझ एवं बदचलनी के कारण दूसरा विवाह करते है। अतः कोई भी लोहरा अपने गोत्र में विवाह नहीं कर सकता है।

जनजातीय अनुंसधान संस्थानः

आंध्र प्रदेश, असम, झारखण्ड, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा,राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, मणिपुर तथा त्रिपुरा में चौदह जनजातीय अनुसंधान संस्थान (टी0आर0आई0) स्थापित किए गए है। ये संस्थान राज्य सरकारों को योजनासंबंधी जानकारियां जैसे– अनुसंधान एंव मूल्यांकन अध्ययन, आंकड़ो का संग्रह, प्रथागत कानून का संहिताकरण तथा प्रशिक्षण, संगोष्ठियां तथा कार्यशालओं को आयोजन में संलग्न है। इनमें से कुछ संस्थानों का संग्रहालय भी है जिसमें जनजातिय कलाकृतियों का प्रदर्शन किया जाता है।

अनुसूचित जनजाति की लड़कियों–लड़को हेतु छात्रावासः

लड़कियों की शिक्षा हेतु उनको बेहतर आवसीय सुविधा प्रदान करनेके उद्देश्य से छात्रावास योजना तीसरी पंचवर्षीययोजना में शुरू की गई थी। इस योजना के तहत निर्माण कार्य हेतु राज्यों को लागत का 50 प्रतिशत तथा संध राज्य क्षेत्रों को 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है। 1999–2000 के दौरान राज्योंसंध राज्य क्षेत्रों को 29 तथा 2000–2001 के दौरान 11 लड़कियों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियां निर्मुक्त की गई थी। लड़कियों हेतु छात्रावास योजना के अनुसार ही लड़को के लिए छात्रावास योजना 1989–90 में शुरू की गई थी। वर्ष 2000–2001 के दौरान 15 लड़कों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियां निर्मुक्त की गई थी।

जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रः

इन परियोजना का उद्देश्य विभिन्न पारंपरिक–आधुनिक व्यवसाय में उनके शैक्षितक योग्यता के अनुसार वर्तमान आर्थिक रूझानों तथा बाजार क्षमता के आधार पर जनजातियों के कौशल का उन्नयन करना है जिससे वे लाभकारी रोजगार हासिकल कर सकेंगे या स्व–रोजगार कर सकेंगे। यह योजना 100 प्रतिशत अनुदान उपलब्ध कराती है तथा इस राज्य सरकारों, संध राज्य क्षेत्रों एवं गैर–सरकारी संगठनों के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है। इस योजना में वित्तीय मानदण्ड तय है। कोई निर्माण लागत प्रदान नहीं की जाती।

कम साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा का सुदृढ़ीकरणः

यह मंत्रालय की जेंडर आधारित योजना है। इस योजना का उद्देश्य पहचाने गएजिलों एवं ब्लॉको में जनजातियों लड़कियों को 100 प्रतिशत नामांकन की सुविधा के माध्यम से विशेषतः नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तथा आदिवासी जनजातीय समूह की आबादी वाले क्षेत्रों में सामान्य महिला जनसंख्या और जनजातीय महिलाओं के बीच शिक्षा के स्तर के अंतर को समाप्तकरना तथा शिक्षा के अपेक्षित के परिवेश के सृजन द्वारा प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा छोड़ने की दर को कम करना है। यह योजना इस तथ्य को स्वीकार करती है कि जनजातीय लड़कियों की साक्षरता दर में सुधार आवश्यक है जो उन्हें प्रभावी ढंग से सामाजिक–आर्थिक विकास में भाग लेने हेतु सक्षम बनाएगी। इस योजना में 12 राज्यों और 1 संध राज्य क्षेत्र 54 पहचाने गए जिले शमिल है जहाँ अनुसूचित जनजाति की आबादी 25 प्रतिशत या उससे अधिक है तथा 2001 जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता दर 35 प्रतिशत से या इसके भाग कम है। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त 54 जिलों के अलावा, अन्य जिलों में मौजूद जनजातीय ब्लॉक या खंड, जहाँ कि जनजातीय आबादी 25 प्रतिशत या उससे अधिक हो तथा जनजातीय महिलाओं की साक्षरता दर 2001 जनगणना के अनुसार 35 प्रतिशत या इसके भाग से कम हो को भी शामिल है। यह योजना पी0टी0जी0 क्षेत्रों को भी कवर करती है तथा नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्रों को भी प्राथमिकता देती है। यह योजना राज्यों–संध राज्य क्षेत्रों के गैर–सरकारी संगठनों तथा स्वायत्त समितियों द्वारा कार्यन्वित की जाती है। इस योजना में सर्व शिक्षा अभियान या शिक्षा विभाग की अन्य योजनाओं के अंतर्गत चल रहे विद्यालयों के साथ जुड़े छात्रावासों के संचालन तथा रखरखाव की परिकल्पना की गई है। जहाँ ऐसे विद्यालय की सुविधाएं उपलब्ध नहीं है ऐसी स्थिति में इस योजना में आवासीय तथा विद्यालय शिक्षा सुविधा के साथ एक पूर्ण शैक्षिक परिसर स्थापित करने का भी प्रावधान है। अनुसूचित जनजाति की लड़कियों को बढ़ावा देने हेतु इस योजना में शिक्षण, प्रेरणा एवं आवधिक पुरस्कार देने का भी प्रावधान है। यह योजना निर्माण लागत प्रदान नहीं करती है। इसमें तय वित्तीय मानदण्डों का प्रावधाान है। योजना में 100 प्रतिशत नामांकन सुनिश्चित करने शिक्षा छोड़ने की दर को कम करने, रोगनिरोध एवं स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था करने तथा गैर–सरकारी संगठनों के कार्य निष्पादन की निगरानी आदि जैसे विभिन्न कार्यो हेतु जिला शिक्षा सहायक एजेंसी (डी0ई0एस0ए0) जो गैर–सरकारी संगठन या गैर–सरकारी संगठनों का संघ है की स्थापना की भी परिकल्पना की गई है।

भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ लि0 (ट्राइफेड):

जनजातीय समुदायों को उनके लघु वनोपज और लघु वन उत्पाद के लिए विपणन सहायता और लाभकारी मूल्य प्रदान करने और उन्हें शोषक निजी व्यापारियों एवं बिचौलियों सेबचाने के मुख्य उद्देश्य लिए भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ लि0 (ट्राइफेड) की स्थाना 1987 में भारत सरकार द्वारा की गई। बहुराज्य सहकारी समिति अधिनियम 1984 के अंतर्गत कार्यरत यह एक राष्ट्रीय स्तर की सर्वोच्च सहकारी संस्था है। इसकी प्राधिकृत शेयर पूंजी 100 करोड़ रूपये है और प्रदत्त पूंजी 99.98 करोड़ रूपये

है। जिसमें भारत सरकार का योगदान 99.75 करोड़ रूपये और बाकी 0.23 करोड़ रूपये का योगदान अन्य शेयरधारकों का है।

अनुसूचित जनजातियों के लिए कोचिंग संस्थानः

वंचित और सुविधाहीन परिवारों से आने वाले अनुसूचित जनजाति के छात्रों सामाजिक और आर्थिक रूप से लाभप्रद पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवरों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में मुश्किल होती है। अनूसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए एक से अधिक स्तरों पर खेल के मैदानों को बढ़ावा देने और उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं मे सफल होने क बेहतर मौके देने के लिए जनजातीय कार्य मंत्रालय वंचित अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए गुणवत्ता प्रशिक्षण संस्थानों योजनाओं का समर्थन करता है ताकि वे सफलतापूर्वक नौकरियों व्यवसायिक पाठयक्रमों के लिए प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं में प्रवेश के सक्षम बन सके। इस योजना के तहत अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए विभिन्न परीक्षाओंजैसे– सिविल सेवाएं–राज्य सिविल सेवाएं– यू0पी0एस0सी द्वारा ली जाने वाली अन्य परिक्षाएं जैसे सी0डी0एस, एन0डी0एन आदिव्यवसायिक पाठयक्रम जैस चिकित्सा, इंजीनियरिंग, व्यवसाय प्रशासन– बैंकिन कर्मचारी चयन आयोग रेलवे भर्ती बोर्ड, बीमा कंपनियों आदि के लिए मुफ्त कोचिंग दी जाती है। वर्ष 2007–08 के दौरान योजना के वित्तीय मानदण्डों के संशोधित किया गया है। यह योजना कोचिंग अवधि के लिए प्रत्येक अनुसूचित जनजाति के छात्र को 1000रू0 का मासिक वजीफा और बाहारी प्रत्येक अनुसूचित जनजाति छात्र को 2000 रू0 का भोजनव्यवसथ अस्थायी आवास शुल्क कवर करती है।

अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को सहायता अनुदानः

इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्वैच्छिक संगठनों (वी0ओ0) गैर–सरकारी संगठनों (एन0 जी0 ओ0) के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी, कृषि उद्यान उत्पादकता, सामाजिक सुरक्षा आदि सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की पहुंच बढ़ाने और कम सेवा वाले आदिवासी क्षेत्रों में इन सेवाओं के अंतर को समाप्त करने, सामाजिक–आर्थिक उत्थान और अनुसूचित जनजातियों (अजजा) के समग्र विकास के लिए परिवेश प्रदान करना है। कोई अन्य नया सामाजिक–आर्थिक विकास या अनुसूचित जनजातियों की आजीविका सृजन पर प्रत्यक्ष प्रभाव को भी स्वैच्छिक प्रयास माना जा सकता है। इस योजना के तहत मंत्रालय 90 प्रतिशत अनुदान प्रदान करता है और 10 प्रतिशत लागत गैर–सरकारी संगठनों को स्वयं के संसाधनों से वहन करना होती है, ऐसे अनुसूचित क्षेत्रों को छोड़कर जहां 100 प्रतिशत लागत सरकार वहन करती हो। यह योजना आवासीय विद्यालयों, गैर–आवासीय विद्यालयों 10 या उससे अधिक बिस्तरों वाले अस्पतालों, मोबाइल औषधालयों, कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र आदि जो इस योजना के तहत कवर होते है। यह योजना कोई भी निर्माण लागत प्रदान नहीं करती है।

लोहरा जनजाति पर विकास योजनाओं का प्रभावः

आजादी के बाद से ही इनके विकास के प्रति सरकार की चिंता बनी हुई है।पहली पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के कल्याण के लिए 43 विशेष बहुउद्देशीय परियोजनाएं बनी थी, जिसे दूसरी योजना में भी जारी रखा गया। तीसरी योजना में एक अलग कार्यनिति बनाई गई क्योंकि पहली दोनों योजनाएं सफल नहीं हो सकीं। पांचवी पंचवर्षीय योजना में जनजातीय क्षेत्रों के सर्वागीण विकास के लिए जनजातीय उप योजना शुरू की गई। साथ ही भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों मे जनजातियों के कल्याण व उनके शोषण को रोकने के भी व्यापक प्रबंध किए गए है। अभी जनजातीय कार्य मांत्रलय द्वारा आदिवासी समुदाय के समग्र विकास और कल्याण के लिए बहुत सारी योजनांए, कार्यक्रम, मिशन चलाए जा रहे है। इनमें जनजाति अनुसंधान तथा मीडिया के क्षेत्र में जनजातीय अनुसंधान संस्थान को सहायता अनुदान योजना शामिल है। इसी तरह इस क्षेत्र में उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना की योजना भी चलाई गई है। जनजातियों को

आजीविका के लिए जनजातीय उत्पादों के विकास तथा विपणन के लिए संस्थागत समर्थन की योजना है। लघु वन उत्पाद के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य योजना क्रियान्वित की गई है। जनजातियों के समग्र विकास के लिए भी मंत्रालय स्तर पर विभिन्न गैर–सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता दी जाती है। इसमें जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिकप्रशिक्षण केन्द्र और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए अन्य सहायता के कार्यक्रम शामिल है। कमजोर जनजातीय समूहों के विकास के लिए और कम साक्षरता वाले जिलों में आदिवासी लड़कियों में शिक्षा के लिए भी केन्द्र सरकार द्वारा योजनाएं संचालित है। इन सबके अलावा एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, जनजातीय उप–योजना क्षेत्रों मे आश्रम एवं कस्तूरबा बालिका विद्यालय की स्थापना अनुसूचित जनजातीय के लड़को और लड़कियों के लिए छात्रावासों की केन्द्र सरकार प्रायोजित योजना आदि भी संचालित की जा रही है। जनजातीय समुदाय में शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए भी कई तरह की छात्रवृतियां प्रदान की जा रही है। इन सबसे जनजातियों के विकास को गति मिली है। मगर इन सबके बावजूद, तमाम सरकारी प्रयासों व योजनाओं के बावजूद लोहरा जनजाति में व्यापक असुरक्षा की भावना के साथ जी रही है। समाजगत समस्याएं भी इसके लिए जिम्मेदार है। उन्हें अपनी पारंपरिक आजीविका के स्रोतो से बेदखल होन का भी डर है साथ ही अपनी जमीन और परिवेश से उजाड़े जाने का खतरा भी बना रहता है आज वनों की संख्या में व्यापक ह्रास होता जा रहा है। इससे जगल में रहने वाली लोहरा जनजाति के पुनर्वास की समस्याएं बढ़ती जा रही है। खनन कंपनियों के द्वारा उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। इससे उन्हें अपने परिवेश वा प्राकृतिक सानिध्य से वंचित होना पड़ रहा है। कुल मिला कर संविधान द्वारा प्राप्त गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार से ये लोहरा जनजाति वंचित है। वर्त्तमान के मानवी हस्तक्षेप से प्राकृतिक असंतुलन पैदा हुआ है वहीं लोहरा जनजाति के अस्तित्व का भी सवाल खड़ा हुआ है। आज वे विरोध प्रदर्शन के जरियें अपने हक की लड़ाई लड़ रहे है। जबकि सरकारी प्रयासों के सही क्रियान्वयन के अभाव की वजह से उनकी समस्याएं और बढ़ी है। लोहरा जनजाति के पुनर्वास और उनके समुचित संरक्षण की जिम्मेदारी सरकार के ऊपर है। एक लोक कल्याणकारी राष्ट्र होने के कारण इसकी यह जिम्मेदारी बनती है कि प्राचीन सभ्यता के विलुप्त होने के पूर्व उसकी रक्षा के लिए प्रयास करे। लोहरा जनजाति की गरीबी को मिटाने के लिए एक समाजवादी राष्ट्र को समुचित कदम उठाने होंगे। केन्द्रीय सहायता का एक बहुत बड़ा हिस्सा बिचौलिए लील जाते है। इससे लोहरा जनजाति के बीच व्यापक असंतोष व विद्रोह की भावना जन्म लेती है। राजनीतिक इच्छाशक्ति में कमी व वितरण प्रणाली की अनियमितता को दूर कर जनजातियों की खोई सांस्कृतिक विरासत हासिल कर सकते हैं। इसके लिए भू माफिया, अवैध खनन उद्योग पर कठोर नियंत्रण लगाया जाना बेहद जरूरी है। हम शिक्षित लोहरा जनजाति के युवाओं के बीच करियर काउंसलिंग के तहत राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, सिविल सेवा जैसी महत्वपूर्ण सेवाओं की जानकारी देकर इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित कर सकते है। इससे एक तरफ उनका सामाजिक स्तर ऊपर उठेगा तो दूसरी ओर उन विघटनकारी समस्याओं से भी छुटकारा मिलेगा जो उन्हें विद्रोही बनने पर मजबूर करता है।

निष्कर्ष

अधिसूचित लोहरा जनजाति झारखण्ड की एक महत्वपूर्ण जनजाति है। दूसरे जनजातियों एवं गैर जनजातियों के साथ रहने से इनके सामाजिक, शैक्षणिक स्थिति में निश्चित सुधार हुआ है। कहावत है की खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। यही कराण है कि अन्य जनजातियों एंव गैर जनजातियों के समीप रहने से इनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब मरने के बाद मसना में क्रिया–कर्म करते है और मरे जानवर मांस आदि भी नहीं खाते है। विकसित जातियों की भांति शिक्षा में विशेष रूची रखते है और अचीखासी जनसंख्या में उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त किये है और अच्छे–अच्छे पदों पर कार्यरत है। समुदायिक

विकास कार्यक्रमों से लोहरा जनजाति में कुछ प्रगति तो हुई लेकिन आशातीत सफलता नहीं मिली इसका कारण है, अधिकारियों द्वारा जनसम्पर्क का अभाव तथा सरकारी साधनों की कमी। लोहरा जनजाति में ग्राम्य विकास कार्यक्रमों में उतना उत्साह देखने को नहीं मिलता है बल्कि यह आज भी पिछडेपन का शिकार है। समाज में निरक्षरता कुपोषणएवं स्त्रियों की दयनीय दशा आदि समस्यायें आज भी विद्यमान है।

इन सब तथ्यों से इनका भविष्य उज्जवल सिद्ध होता है। व्यवसाय कुशलता केकारण आर्थिक स्थिति भी अच्छी है और दूसरे जातियों के व्यवहार्थ लोहरागिरी से औजार आदि बनाकर मदद करते है, जिससे उनकी बीच इनकी मान्यता अधिक है और शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा से विस्तृम जानकारी प्रयत्न करके अपने व्यवसाय में नए डिजाइन एवं आकर के वस्तुयें बनायेंगे। जिसे अधिक मजदूरी प्राप्त होगी। शिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर प्राप्त होगें। कल्याण विभाग द्वारा कल्याणकारी योजनांए इनको लाभान्वित करेंगी। आई0 आर0 डी0 पी0 एन0 आर0 आई, आदि कार्यक्रमों से अधिक लाभान्वित होने के लिए गाँव के प्रमुख मुख्य से संपर्क करने से वर्त्तमान कल्याणकारी योजना का जानकारी प्राप्त करेंगे।

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

स्मार्ट सिटी एक अध्ययन

अमित मालवीय,
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

भारत में स्मार्ट सिटी मिशन की शुरुआत 25 जून 2015 से शुरू किया गया है। स्मार्ट सिटी मिशन समूची शहरी परिस्थितिकी प्रणाली को संपूर्ण और एकीकृत आयोजनों के सिद्धांतों पर विकसित करने के विचार से प्रारम्भ किया गया है जिसमें स्थाई और समावेशी विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया है और इसके पीछे समूचे क्षेत्र का आदर्श विकास करने पर ध्यान दिया जायेगा। यह मिशन केंद्र प्रायोजित कार्यक्रम के रूप में संचालित किया जा रहा है। 2022 तक इस मिशन के अंतर्गत कुल 100 शहरों को चुना जा चुका है। स्मार्ट सिटी मिशन के अन्तर्गत ऐसे शहरों का विकास किया जाना है, जो मूलभूत ढांचा उपलब्ध कराते हो और अपने नागरिकों को उत्कृष्ट एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करते हो, उनका वातावरण स्वच्छ और स्थिर हो तथा इसके लिए स्मार्ट सॉल्यूशंस अपनाए जाते हो एवं स्थाई और समावेशी विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाता हो ताकि वह अन्य महत्वाकांक्षी शहरों के लिए एक मिसाल बन सके।

मुख्य शब्द – स्मार्ट सिटी, नगर, उद्देश्य, विकास, योंजनाएँ।

स्मार्ट सिटी का निर्माण, सरकार की एक महत्वपूर्ण योजना है स्मार्ट सिटी योजना की मूल अवधारणा, न केवल बेहतर नागरिक सुविधाओं एवं बेहतर बुनियादी ढांचे के साथ नगरों का निर्माण करना है बल्कि नगरों को समावेशी और सहयोग पूर्ण बनाने में भी मदत करना है जिसका उद्देश्य वहाँ के निवासियों के जीवन में बदलाव लाना है। 2011 कि जनगणना के अनुसार भारत की नगरीय जनसंख्या देश की कुल आबादी का 31 प्रतिशत थी और 2030 तक इससे बढ़कर 40 प्रतिशत और 2050 तक 50 प्रतिशत यानी 80 करोड़ को पार कर जाने का अनुमान है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार नगरीय भारत देश के सकल घरेलू उत्पाद में 63 प्रतिशत का योगदान करता हौ 2030 में इसके 75 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। घनी आबादी और भौतिक संपत्तियों की वजह से जलवायु परिवर्तन आपदाओं और संघर्षों के प्रति नगरों की संवेदनशीलता कई गुना बढ़ जाती है स्मार्ट सिटी परिकल्पना के साथ नगर नियोजन में एक बड़ा बदलाव स्मार्ट सिटी समेत विभिन्न परियोजनाओं पर अमल करने पर अपना ध्यान आकर्षित करता है पिछले एक दशक में जेएनएनयूआरएम के जरीये हजारों करोड़ों रुपए खर्च किए जाने के बावजूद नगरों की स्थिति बद से बदतर होती चली गई। इस धन राशि को ऐसी परियोजनाओं में लगाया जा रहा था जो नगरों के व्यापक विकास पर केंद्रित ही नहीं थी उदाहरण के लिए, सार्वजनिक स्वास्थ्य पर तो खर्च किया जा रहा था, लेकिन कचरा प्रबंध पर कुछ नहीं किया जा रहा था सच्चाई तो यह है कि भारत में एक भी आधुनिक (स्मार्ट सिटी) महानगर नहीं है और यही बात पिछले नजरीये की विफलता को दर्शाता है दरसल अब नगरी भारत के विकास को लेकर बिल्कुल नए नजरीये की जरूरत है हमारे नगरों की कुछ खासियते हैं इनके संचालन की जिम्मेदारी एजेंसी और संस्थाओं की है इसके अलावा ऐसी योजनाओं में सर्वजनिक धन खर्च किया जाता है जिन्हें कोई नहीं जानता या जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। प्रशासनिक अधिकार का दुरुपयोग हो रहा है और नगरीय शासन के सभी हिस्सों में निहित स्वार्थों और भ्रष्टाचार का जाल फैलता चला जा रहा है जमीन जैसी सार्वजनिक संपत्ति का दुरुपयोग हो रहा है और हजारों करोड़ों रुपये की भूमि राजनेताओं के चहेतों को दे दी जाती है अराजकता और इसके समाधानो की

जरूरतो ने निहित स्वार्थों और नेक नियत दोनों के लिए जगह बना दी है एक सच्चा आकलन भारत के नगरीकरण की बदसूरत सच्चाई के कारणों का खुलासा करता है पहला भारत एशिया में एकमात्र ऐसी बड़ी आर्थिक ताकत है जिसके पास एक भी आधुनिक (स्मार्ट सिटी) नगर नहीं है वह भी तब जबकि भारत के पास पैसों की कमी नहीं है नगरों के विकास के लिए सरकार को सुदृढ़ वृत्तीय और राजस्व के साथ–साथ योजना में सर्वाधिक और निजी निवेश के ढांचे को भी शामिल करना होगा अधिकतर नगरों की वित्तीय स्थिति लगातार राजस्व नुकसान के कारण बिगड़ी हुई है इस वजह से सेवाओं और आधारभूत संरचना कें निवेश में रुकावट बनी हुई है भारत में नगरी शासन में गिरावट देखने को मिल रही है इस वक्त खुले भ्रष्टाचार और हितों के टकराव के कारण नगर पालिकाओं का शासन घटिया दर्जे का है हमारे नगरों में काम करने वाली कोई संस्था ही नहीं है और जो काम चलाऊ संस्थाये हैं भी, उनमें से अधिकांश पर राजनीतिक और निहित स्वार्थों ने कब्जा किया हुआ है आम जनमानुष का शासन और विकास में नाम मात्र की भागीदारी है नगर पालिका या नगर निगम के पार्षद अपने भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों के लिए बदनाम है यह विडंम्बना ही है कि नगरीय चुनाव में कम मतों से चुने जाने के बावजूद यह हमारे दैनिक जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है विकल्प के अभाव में नगरी निकाय कि यथास्थिति राजनीति मे वर्षों से बनी हुई है लेकिन अच्छी बात यह है कि शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक बदलाव के अलावा इस स्मार्ट सिटी को और किन चीजों की जरूरत है नगरों के संभावित विकास को पूरा करने के लिए योजना बनाना सबसे महत्वपूर्ण अंग है यह योजना आधारभूत संरचना और सार्वजनिक सेवाओं की दृष्टि से जरूरी है योजना ही वह माध्यम है जो जनता तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों के विचारों और प्रशासकों के कामों को जोड़ें रख सकती है वैज्ञानिक योजनाओं की कमी एक किस्म का शून्य पैदा करती है जिसमें निरंकुश प्रशासनिक निर्णय और भ्रष्टाचार होने लगते हैं नगरों और नगरीय शासक के लिए विदाई संरचना की अहम भूमिका होती है 74 वे संविधान संशोधन में नगर इकाइयों को सत्ता के विकेंद्रीकरण और उत्तरदायित्व के अधिकार दिए गए हैं लेकिन कुछ ही राज्यों ने इन अपेक्षाओं को पूरी तरह लागू किया जेएनएनयूआरएम की कई शर्ते हैं फिर भी काम न होने के बावजूद उन्हें फंड दे दिये गए हैं भारत को ऐसी महानगरीय योजना आयोग एमपीसी की जरूरत है जो नगरी स्थानीय निकायों यूएलबी की सहमति से वैधानिक विकास योजना तैयार करें एवं उन पर विचार करें और उन्हें अनुमति दें जिससे नगरीय संस्थाओं और प्रशासनिक क्षमता का पुनःनिर्माण हो सके विभिन्न योजनाओं और प्रशासनिक कार्यों के प्रबंध में कुशलता के साथ–साथ प्रशासनिक सार्वजनिक संस्थाओं की क्षमताओं में लगातार बढ़ोत्तरी की जरूरत होती है आधुनिक बढ़ते नगरों में कुशल प्रशासकों की जरूरत है जो नगर के प्रबंध के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी रुप से संपन्न और समर्पित हो शासन में सुधार और भ्रष्टाचार का खात्मा अनिवार्य सरतो पर खासतौर से तब जब हमारे नगरों का भविष्य पूंजी के निजी सूत्रों से बड़े हुए निवेश और इसके सार्वजनिक धन के बेहतर प्रबंध पर निर्भर हो यह अधिक जरूरी है क्योंकि 14 वें वित्त आयोग के बाद यूलबी लगभग 248000 करोड़ रुपए की भारी–भरकम राशि केन्द्र से सीधे तौर पर पायेगे नगरों की समस्याओ को दूर करने के लिए एवं नगर को स्मार्ट रुप देने के लिए यह धन राशि उत्प्रेरक हो सकता है स्मार्ट सिटी योजना से सकारात्मक बदलाव लाने की पूर्ण कोशिष की जा रही है।

स्मार्ट सिटी मिशन का उद्देश्य स्थानीय क्षेत्र के विकास को साकार कर और तकनीकी का उपयोग कर, विशेषकर ऐसी तकनीकी जिसके अच्छे परिणाम मिले आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है। क्षेत्र आधारित विकास से मलिन बस्तियों को बेहतर नियोजित नगरों में रूपांतरित करने सहित मौजूदा क्षेत्रों का कार्यतरण (पुनः संयोजन और पुनः विकास) होना नगरी क्षेत्रों की बढती आबादी को समायोजित करने के लिए नगरों के इर्द–गिर्द नए क्षेत्र (हरित–क्षेत्र)

विकसित किए जाएंगे स्मार्ट समाधानो के प्रयोग से नगर अवसंरचना और सेवाओं में सुधार करने हेतु तकनीकी, सूचना और आंकड़ों का उपयोग कर सकेंगे इस तरह से व्यापक विकास से जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा, रोजगार, सृजित होगा और सभी विशेषकर गरीब एवं उपेक्षित लोगों की आय में बढ़ोतरी होगी जिससे नगर समावेशी बन सकेगे।

स्मार्ट सिटी की सुविधाएं –

1. क्षेत्र आधारित घटनाक्रमों में मिश्रित भू–उपयोग को बढ़ावा देना अनियोजित क्षेत्रों के लिए नियोजन जिसमें भू–उपयोग को अधिक कुशल बनाने के लिए बहुत सी गतिविधियां और एक दूसरे के सन्निकट भू–उपयोग निहित हों ।
2. हाउसिंग और समावेशिता –आवास के अवसरों का सभी के लिए विस्तार करना।
3. पैदल चलने योग्य स्थान का निर्माण– भीड़ भाड़ वायु प्रदूषण और संसाधनों की कमी को दूर करना, स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना, अतिक्रमण को दूर करना और सुरक्षा सुनिश्चित करना सड़क नेटवर्क को केवल वाहनों एवं सार्वजनिक परिवहन के लिए ही नहीं बल्कि साइकिल चालकों के लिए भी बनाना अथवा सुसज्जित किया जाना।
4. नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोतरी करने, शहरी क्षेत्रों में तापमान के प्रभाव में कमी लाने और आम तौर पर परिस्थितिकी संतुलन को बढ़ावा देने के लिए खुले स्थानों– पार्क, खेल के मैदान, मनोरंजन के स्थानों का संरक्षण और विकास करना ।
5. परिवहन के विभिन्न विकल्पों को बढ़ावा देना तथा सार्वजनिक परिवहन और अंतिम गंतव्य स्थल पर परिवहन कनेक्टिविटी का विस्तार करना।
6. सेवाओं की कीमतों में कमी लाने और नगर निगम के कार्यायलयों में जाएं बिना सेवाएं प्रदान करने के लिए जवाबदेही और पारदर्शिता लाने के लिए ऑनलाइन सेवाओं पर अधिकाधिक आश्रित प्रशासन को नागरिक मैत्री और किफायती बनाना विशेषकर मोबाइल उपयोग को लोगों को सुनने और सुझाव लेने एवं कार्य स्थलों को साइबर की मदत से कार्यक्रमों व कार्यकलापों की ऑनलाइन निगरानी के लिए ई–समूह का गठन करना।
7. अपने मुख्य आर्थिक कार्यकलापों जैसे– स्थानीय भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा कला और शिल्प, संस्कृति, खेल के सामान, फर्नीचर, होजरी, कपड़े डेयरी आदि पर आधारित शहर को पहचान प्रदान करना।
8. अवसंरचना और सेवाओं को बेहतर बनाने के लिए क्षेत्र आधारित विकास में उनके लिए स्मार्ट समाधान का उपयोग करना।

कुछ ग्लोबल स्मार्ट शहर –

भारत सहित दुनिया के कई देशों में एक से एक बेहतरीन शहर बनाने की कवायद जोर शोर से चल रही है विदेशों में भी इन्हें भविष्य के शहर कहा जा रहा है और इंफ्रास्ट्रक्चर कि किसी खास विशेषता के आधार पर उस शहर का प्रचार– प्रसार भी किया जा रहा है दुनिया में नए शहरों के लिए जो शर्तें या मानक तय किए गए हैं वे इस प्रकार हैं

1. इंफ्रास्ट्रक्चर के मामले में ये शहर कितने आधुनिक है यानी क्या ऐसे शहरों में ऑप्टिकल फाइबर का नेटवर्क बिछाया गया है या नहीं सड़क और रेल परिवहन में सौर बिजली का इस्तेमाल, कचरा निष्पादन की सुरक्षित व स्वचालित व्यवस्था और दूर संचार के आधुनिक तौर–तरीके, ऐसी खूबियों से लैस शहर को ही स्मार्ट माना जाता है ।

2. भविष्य के लिए बनाए जा रहे शहरों में यह बात काफी मायने रखेगी कि वहा पर्यावरण के साथ क्या तालमेल बिठाया गया है यानी वहां ऊर्जा (बिजली) के स्रोत क्या है और पानी के सुरक्षित आवागमन की क्या व्यवस्था है ।
3. क्या वायरर्लेस सेंसर और नेटवर्को से पूरे शहर को जोड़ा गया है ताकि दिव्यांग लोग भी पूरी सहजता से शहर की सभी सुविधाओं का उपयोग कर सकें ।
4. समाज के हर तबके की जरूरत के हिसाब से हाईटेक रहन–सहन मनोरंजन, स्वास्थ्य व शिक्षा आदि का समग्र प्रबंध किया गया है।
5. पुलिस, प्रशासन तथा अन्य व्यवस्थाओं का नागरिको के साथ तत्कालिक जुड़ाव का क्या इंतजाम किया गया है ताकि जरूरत पड़ने पर हर तरह की समस्या का समाधान लोगों को मिल सके।

दक्षिण कोरिया में संगदो इंटरनेशनल बिजनेस डिस्ट्रिक्ट नामक जो शहर बसाया जा रहा है उसमें स्कूल, अस्पताल, आवासीय अपार्टमेंट, ऑफिस बिल्डिंग और सांस्कृतिक सुविधाओं वाले सेंटरों को भी पूरी दुनिया के टक्कर का बनाया जा रहा है यह शहर दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल से 65 किलोमीटर दूर है और करीब 1500 एकड़ में बसाया जा रहा है। इसकी एक खूबी यह है कि इसमें न्यूयॉर्क के सेंट्रल पार्क और वेनिस के जलमार्गो की हूबहू नकल भी तैयार की जा रही है एलो सी के तट पर करीब 35 अरब डॉलर की लागत से इस शहर को बसाने का काम वर्ष 2005 में शुरू हुआ था इस शहर की सबसे खास बात यह है कि यहां सार्वजनिक इस्तेमाल की हर चीज में इलेक्ट्रॉनिक सेंसर लगे हुए हैं जैसे संचालित सीढ़िया एक्सीलेटर यह एक्सीलेटर एक बार चालू कर देने पर हमेशा चलते नहीं रहते बल्कि यह तभी चलते हैं जब उन पर कोई खढा होता है इसी तरह इस शहर के सभी घरों में टेलीप्रेजेंट सिस्टम लगाया जा रहा है जो घर के सदस्यों के आवागमन की सूचना दर्ज करता है और अजनबीयों कि पहचान करके उससे सम्बन्धित तंत्र को इसकी सूचना देता है घर को गर्म रखने के लिए हिटिग प्रणाली, घरों के ताले, आदि सभी पर ई–नेटवर्क के जरिए नियंत्रण रखा जा सकता है इस शहर के स्कूल, अस्पताल और सरकारी दफ्तर भी ऐसे ई–नेटवर्क पर मौजूद रहेंगे। चुकी पूरा शहर एक पुख्ता सूचना प्रणाली से जुड़ा है यही वजह है कि इसे प्रतीकात्मक रूप में बक्से में बंद शहर की संज्ञा दी गई है माना जा रहा है कि जल्द ही इस शहर में करीब 65000 लोग रहने लगेंगे, साथ ही नजदीकी शहरों से यहां तीन लाख लोग काम करने के लिए रोजाना आया करेंगे।

ऐसा ही एक अन्य बेजोड़ शहर संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) में मास्दार नाम से बनाया जा रहा है अरबी भाषा के मास्दार का मतलब– स्त्रोत होता है अबू धाबी के रेगिस्तान के बीचो–बीच बसाये जा रहे शहर में निजी कारों की बजाय बिजली से चलने वाली बिना ड्राइवर की गाड़ियां होंगी इस्तेमाल लायक पूरी बिजली, शहर में ही सौर ऊर्जा या पवन ऊर्जा के जरिए पैदा की जाएंगी यहां तक कि घरों और सार्वजनिक स्थानों पर एयर–कंडीशनर भी सूरज की गर्मी से चलेंगे मोबाइल फोन भी किसी सोलर डिजिटल ट्री के नीचे खड़े होकर चार्ज किया जा सकेंगा किसी भी किस्म का प्रदूषण फैले बिना कोई शहर बस सकता है मास्दार के जरीये यही साबित करने की कोशिश हो रही है हालांकि ऐसा शहर बसाने की लागत कई अरब डॉलर है इसलिए इस तरह का दूसरा शहर बसाना काफी मुश्किल है वैसे तो ऐसे कई अन्य दर्जनों शहर है जो साइंस टेक्नोलॉजी की मदद से बेहद आश्चर्यजनक रुप स्वरुप के साथ दुनिया में बसाये जा रहे है।

साइबेरिया की उम्का सिटी अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को में अल्टिमा नाम से एक टावर, अमेरिका के ही दविनस प्रोजेक्ट, मेक्सिको में अर्थ स्क्रांपर शहर, जिसे जमीन के भीतर बसाये जाने की योजना है साथ ही बसे बसाये शहरों को स्मार्ट बनाने की योजना पर भी कई देशों में काम चल

रहा है बल्कि कुछ शहर तो स्मार्ट सिटी की कसौटी पर खरे पाए गए हैं। जैसे ऑस्ट्रिया के शहर पिएना को इन्वेंशन, ग्रीन सिटी, जीवन की गुणवत्ता और डिजिटल गवर्नर के आधार पर स्मार्ट माना गया है इसी तरह उत्तरी अमेरिका के नगर टोरंटो को स्मार्ट सिटी होने का दर्जा दिया गया है टोरंटो में रोजाना घर दफ्तरों से निकलने वाले कचरे को एक जगह जमा कर उससे प्राकृतिक गैस बनाने का काम किया जाता है फ्रांस की राजधानी पेरिस में ग्रीन सिटी, डिजिटल गवर्नर्स जैसे कसौटी पर खरी पाई गई है अमेरिका की वाणिज्यिक राजधानी न्यूयॉर्क की स्मार्टनेस सिर्फ इंफ्रास्ट्रक्चर में बेहतर होना नहीं है बल्कि यहां कंप्यूटर तकनीक पर आधारित सेवाओं की क्वॉलिटी दुनिया में सबसे उम्दा पाई गई है हालांकि इस मामले में न्यूयॉर्क को एक चुनौती ब्रिटिश राजधानी लंदन से मिल रही है दावा किया जाता है कि यूरोप में सबसे बड़ा मुफ्त वाईफाई जोन अगर कहीं है तो वह लंदन में है। लंदन को प्रशासन, ट्रांसपोर्ट, बिजनेस, शिक्षा और उपभोक्ताओं को दी जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता के संदर्भ में भी स्मार्ट शहर माना गया है भविष्य के शहरों के लिए एक उदाहरण जापान की राजधानी टोक्यो से मिलता है टोक्यो ने इन्वेंशन, डिजिटल गवर्नेंस जैसी कसौटी पर दूसरे शहरों को काफी पीछे छोड़ा है इसके अलावा सौर ऊर्जा के इस्तेमाल और हर मामले में ऊर्जा की बचत करने वाली तकनीक के इस्तेमाल को बढ़ावा देकर यह बेहतरीन शहर साबित हो रहा है जर्मनी के शहर बर्लिन को इन्वेंशन, हरीतिमा और जीवन की गुणवत्ता के पैमानों पर काफी स्मार्ट आका जा चुका है इसी तरह की स्मार्टनेस कोपेनहेग शहर में दिखती है। जहां की 40 फीसदी आबादी परिवहन के साधन के रूप में साइकिलो का इस्तेमाल करती है।

निष्कर्ष एवं सुझाव –

स्मार्ट सिटी योजना सामान्य शहरों से हर मायने में अलग होगा यहां कारोबार में तेजी,पानी, बिजली शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, सुरक्षा, यातायात समेत तमाम सुविधाएं बेहतर रुप में उपलब्ध होगी जिससे यहां रहने वाले हर नागरिक को इसका लाभ उचित तरीके से मिलेगा इसके साथ ही ये स्मार्ट सिटी आधुनिक तकनीक से भी लैस होगा यहां 5 लाख इंटरनेट की उचित सुविधा, वाइफाई की सुविधा का लाभ हर नागरीक आसानी से ले सकेगा। इसके साथ ही सुरक्षा के मायनों में भी स्मार्ट सिटी कैमरों की निगरानी में रहेगा जिससे शहर की हर गतिविधि पर नजर रखी जा सकेगी जिससे किसी भी तरह की अपराधिक घटनाओं को बल न मिल सके और लोग सुरक्षित रहें यही नहीं स्मार्ट सिटी की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान दिया जायेगा जिसके चलते लोगों को रोगमुक्त जीवन जीने में मदत मिल सकेगी स्मार्ट शहरों में ट्रैफिक जैसी समस्या से भी निजात दिलाने के पुख्ता इंतजाम किए जायेगे जिससे लोगों को यातायात संबंधी किसी तरह की परेशानी ना हो और घंटों जाम में नहीं खड़ा रहना पड़े जिससे उनके समय की बर्बादी को कम किया जायेगा अगर लोगों को अपने ही शहर में सारी सुविधाएं मिलेंगी तो लोग दूसरे शहर की तरफ रूख नहीं करेंगे और हर शहर का पर्याप्त मात्रा में विकास हो पायेगा । भारत की आबादी लगातार बढ़ती जा रही है जिससे लोगों को सामान्य शहरों में रोजगार के उचित अवसर नहीं मिलने से वे आधुनिक शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं ऐसे शहरों की तरफ जहां नौकरी अथवा रोजगार पाने के अच्छे अवसर मिल सके और निवेश कर अपनी जीवन शैली में सुधार ला सकें इसी को देखते हुए मोदी सरकार ने स्मार्ट सिटी योजना की शुरुआत की है मोदी सरकार की स्मार्ट सिटी योजना के तहत हर राज्य से कुछ शहर चुने गये हैं जिनमें प्राकृतिक वातावरण का निर्माण किया जाएगा और रोजगार के अवसर सृजित किए जाएंगे इसके साथ ही बढ़ती आबादी को देखते हुए शहर के आस पास नए क्षेत्र को भी विकसित किया जायेगा जिससे भारत में ज्यादा स्मार्ट सिटी होगे भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में सामिल होने पर मद्दत मिलेगी एवं देश के आर्थिक विकास में भी मद्दत मिलेगी ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. बघेल, डॉ0 डी0 एस, 2007, नगरीय समाजशास्त्र, मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, शिवम पब्लिकेशन, भोपाल, मध्य प्रदेश, पृष्ठ संख्या 197– 198
2. तिलारा, कुँवर सिंह, नगरीय समाजशास्त्र, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, पृष्ठ संख्या 151, 197
3. तिवारी, आरवसीव अधिवास भूगोल 1997 प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 326 329 334
4. तिवारी, श्रीमती शारदा, 2007, नगरीय समाजशास्त्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 167
5. विंग,न्यू मीडिया भारत 2018, प्रकाश विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ संख्या 326-328
6. कौशिक, एस0डी0, 2011, मानव भूगोल के सरल सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 351– 352
7. पाटिल, अशोक डी0, 2013, ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, मध्य– प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ संख्या 41– 42
8. शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश, 2005, ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 165
9. जैन, शशि के0, 2012, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 147– 148
10. राव, बी0 पी0 तथा शर्मा नन्देश्वर, 2008, नगरीय भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 199– 200

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

पर्यावरणीय मुद्दे एवं समस्याएं

चंचल कुमारी
शोध छात्रा
राजनीति विज्ञान विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुरए विश्विधालय

सारसंक्षेप

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राज्य व्यवस्था राजनीतिक रूप से खंडित है जिसमें परस्पर विरोधी दलों को प्रबंधित करने और संभालने के लिए एकाधिकार का अभाव है। राज्य व्यवस्था के घरेलू क्षेत्र में सत्ता के आदेश का पालन करने के लिए अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में जो विभिन्न संप्रभु राज्यों से बना है कोई भी कमान का हकदार नहीं है। यथार्थवादी दावा करते हैं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अनिवार्य रूप से अराजकता की स्थिति में स्वतंत्र राजनेताओं के बीच सत्ता के लिए संघर्ष है। दूसरी ओर नवयथार्थवादी यह दावा करने की कोशिश करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति युद्ध की एक निरंतर स्थिति नहीं है बल्कि यह एक निरंतर सुरक्षा प्रतियोगिता है जिसकी पृष्ठभूमि में हमेशा संघर्ष की संभावना होती है। उदारवादियों का तर्क है कि संघर्ष और उनकी रोकथाम न केवल शक्ति के संतुलन से निर्धारित होती है बल्कि राज्यों की घरेलू संरचनाओं उनके मूल्यों पहचानों और संस्कृतियों द्वारा निर्धारित होती है संघर्ष के समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय चुनौतियां और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं स्वाभाविक रूप से राज्य नैतिक या कानूनी प्रतिबंधों पर ध्यान दिए बिना अपने स्वयं के लक्ष्यों का पीछा करते हैं इसलिए हमेशा एक जोखिम होता है कि संघर्ष हो सकता है। इसलिए संघर्ष एक प्राकृतिक घटना है और इसे एक अलग घटना के रूप में नहीं माना जाना चाहिए जिसे व्यापक सहयोग के बिना सुलझाया या प्रबंधित किया जा सकता है। यह समाज की चल रही विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है।

प्रस्तावना

दुनिया भर में सतत विकास लक्ष्यों के नए प्रतिमान हासिल करने के संघर्ष को दिखाने के लिए यहां एक बहुत ही विनम्र प्रयास दिया गया है। वास्तव में वैश्विक पर्यावरण राजनीति में पिछले कुछ दशकों में जबरदस्त परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों की अभिव्यक्ति संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में विभिन्न सम्मेलनों या शिखर सम्मेलनों के माध्यम से परिलक्षित हुई है। हालांकि इन शिखर सम्मेलनों ने सहयोग गठबंधन निर्माण और आम सहमति निर्माण में एक नए सिरे से संघश् के माध्यम से स्थिरता की दिशा में नीति निर्माण में पारंपरिक संस्थागत संरचनाओं की भूमिका को फिर से परिभाषित करने का लगभग सफलतापूर्वक प्रयास किया है। सदियों पुराने उत्तर.दक्षिण आर्थिक विभाजन से उत्पन्न कुछ गंभीर कमियों के बावजूद यह स्पष्ट है कि पिछले ;रियो 20 शिखर सम्मेलन ने स्थायी विकास लक्ष्यों की धारणा के आसपास आम सहमति बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। हालाँकि भाषा को 1992 में श्सतत विकासश् से 2012 में हरित अर्थव्यवस्थाश् में स्थानांतरित कर दिया गया है। फिर भी यह अनुमान लगाना जल्दबाजी होगी कि हम इस आम सहमति निर्माण के माध्यम से वास्तव में क्या हासिल करने जा रहे हैं लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसने एक नई पहचान बनाई है।

विकसित और विकासशील देशों के बावजूद विभिन्न राष्ट्र राज्यों के बीच निरंतर सौदेबाजी के परिणाम स्वरूप गठबंधन को मजबूत करने का युग माना जाता है इन गठबंधनों का गठन और समेकन एक विशेष शासन के भीतर राज्यों और गैर राज्य के राजनेताओं के बावजूद विभिन्न हितधारकों के बीच अंतर्संबंधों पर काफी हद तक निर्भर करता है। संघर्ष सहयोग और गठबंधन निर्माण की दिशा में प्रगति

पिछले कुछ दशकों के दौरान दुनिया के कई और परस्पर संबंधित संकटों की एक श्रृंखला का सामना कर रही है जैसे कि वैश्विक आर्थिक मंदी अस्थिर तेल की कीमतें बढ़ते खाद्य संकट पारिस्थितिकी तंत्र में गिरावट तेजी जलवायु संबंधी बढ़ती संख्या अत्यधिक मौसम संबंधी आपदाएं आदि और लगभग ये सभी संकट पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के लगातार खराब होने के कारण होते रहे हैं। इसके अलावा बड़े पैमाने पर जनसंख्या वृद्धि खपत के स्तर में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण राज्यों के भीतर और राज्यों के बीच कुछ प्रकार की असमानता उभरी या विकसित हुई है जिसने इस विरोधाभासी स्थिति में और अधिक ईंधन डाला है। ऐसा इसलिए है क्योंकि राज्यों के समुदाय को सामूहिकता के एक नए चरण में जाने के लिए अधिक जिम्मेदारी उठानी पड़ती है ताकि विश्व में अधिक सतत विकास उत्पन्न हो सके। इस वैश्वीकृत दुनिया में विषमता की बढ़ती डिग्री ने किसी भी सामूहिक पर्यावरणीय निर्णय को लेना मुश्किल बना दिया है और इसलिए पर्यावरणीय शासन समाधानों के लिए नई आवश्यकताओं की मांग की गई है। वास्तव में अधिकांश वैश्विक पर्यावरण नीतियां पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए सहयोग के लिए बहुपक्षीय समझौतों पर बातचीत करने के प्रयासों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। ये समझौते विभिन्न प्रभावशीलता के वैश्विक पर्यावरणीय शासनों का गठन करते हैं जो वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं के संबंध में राज्यों के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।

पिछले पांच दशकों में अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शासनों का निर्माण पहले ही तेज हो गया है। स्टॉकहोम 1972 से रियो डी जनेरियो 2012 वाया रियो ;1992 जोहान्सबर्ग ;2002 और फिर रियो 2012 तक प्रत्येक सम्मेलन ने सहकारी स्थितियों को उत्पन्न करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वैश्विक पर्यावरण परिदृश्य में संघर्ष हर सम्मेलन की अंतिम नियति नहीं लगता हैय वास्तव में इन सम्मेलनों में भी राज्यों के बीच सहयोगात्मक पहल देखी गई है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन जैसे कि संयुक्त राष्ट्र संगठन सहकारी प्रयासों के संतुलन को बनाए रखने में लगातार महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जहां सामान्य हित विकसित हुए हैं। 1972 में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन उस समय आयोजित किया गया था जब पर्यावरण केवल गंभीर चिंता का विषय नहीं था। पृथ्वी का पर्यावरण संघर्ष और सहयोग का एक प्रमुख केंद्र बिंदु बन गया था जिसके परिणामस्वरूप दुनिया भर में पर्यावरण में गिरावट उन्नत वैज्ञानिक ज्ञान और आविष्कार मानवता के सामने आने वाली पारिस्थितिक चुनौतियों के बारे में लोकप्रिय जागरूकता बढ़ी। हालाँकि शुरुआत से ही वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों की दुविधा ने विकसित उत्तर और विकासशील दक्षिण के बीच संघर्ष को प्रतिबिंबित किया क्योंकि प्रदूषण के पीछे वास्तविक कारणों प्रभावों के बारे में संभावित बहस की एक विस्तृत सावधानीपूर्वक विचार करने से संकेत मिल सकता है।

वैश्वीकरण के स्पष्ट परिणामों के कारण संघर्षों के जोखिम बहुत बढ़ गए हैं। उदार अर्थव्यवस्था का योगदान इस मिथक के आधार पर स्पष्ट रूप से प्रभावी हो गया है कि वैश्विक बाजार एकीकरण से सभी के हाथों में अधिक माल का कब्जा होगा क्योंकि हर कोई अधिक माल का उपभोग करेगा दरिद्रता धीरे.धीरे दूर होगी। वैश्वीकरण इस प्रकार अधिक आधुनिक प्रौद्योगिकी आधारित उत्पादन की ओर प्रवृत्त होता है जिसकी उच्च बाहरी पर्यावरणीय लागत आमतौर पर उन व्यापार समझौतों द्वारा नहीं मानी जाती है जो उन्हें आगे बढ़ाते हैं और इस प्रकार पर्यावरणीय विनाश को रोकने के लिए लोगों की लोकतांत्रिक शक्ति को प्रभावी ढंग से खत्म कर देते है।

सतत विकास पर सहमति

सतत विकास पर सहमति पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रियो 20 प्रक्रिया ने सभी को इस बात पर पुनर्विचार करने के लिए एक साथ लाया है कि उन्हें अगले बीस वर्षों में सामना करने वाली महत्वपूर्ण पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान कैसे करना चाहिए। इसने दुनिया के लिए सतत विकास लक्ष्यों

का एक नया सेट स्थापित करने का निर्णय लिया है और यह 2015 के बाद नए सहस्राब्दी विकास लक्ष्य परिदृश्य का हिस्सा होगा। इस शिखर सम्मेलन ने वैश्विक समुदाय पर एक नया ध्यान दिया कि क्या संबोधित किया जाना चाहिए और इनमें से कई लक्ष्यों का काफी प्रभाव पड़ा है। भविष्य की ओर देखते हुए रियो 20 ने 2015 के बाद प्रयास की अगली अवधि में इस केंद्रित दृष्टिकोण के लाभों को बनाए रखने की सामान्य इच्छा दिखाई। ये प्रयास सतत विकास को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखते हुए क्या किया जाना चाहिए। हर देश में उनकी अर्थव्यवस्थाओं को स्थायी रूप से संचालित करने में सक्षम बनाने के लिए होगा।

हरित अर्थव्यवस्था का निर्माण

एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व यह है कि रियो 20 शिखर वार्ता में श्हरित अर्थव्यवस्थाश् प्रमुख शब्दों का बोलबाला था जिस पर पहली बार विशेष ध्यान दिया गया था। इस विषय ने अधिकांश समय और ऊर्जा को अवशोषित कर लिया था क्योंकि प्रारंभिक बैठकों में श्हरित अर्थव्यवस्थाश् की अवधारणा और भूमिका के बारे में व्यापक असहमति थी क्योंकि हरित अर्थव्यवस्था की अवधारणा के आसपास एक अवधारणात्मक अंतर विकसित हो गया था। भारत इस शिखर सम्मेलन में अग्रणी भूमिका निभाने वालों में से एक ने इस अवधारणा को इस तरह परिभाषित करने की कोशिश कीय हरित अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसे प्राकृतिक संसाधनों झील के पानी और पारिस्थितिक तंत्र को कमोडिटाइज़ करना चाहिए। हमें स्वदेशी लोगों वन विकासकर्ताओं और जनजातियों की जरूरतों और अधिकारों को ध्यान में रखना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण का पालन करके यह लोकतांत्रिक बनाया जा सके। दूसरी ओर विकसित देशों विशेष रूप से यूरोपीय संघ ने जल वन कृषि और महासागर जैसे मुद्दों के लिए विशिष्ट लक्ष्यों लक्ष्यों और समय सीमा के साथ हरित अर्थव्यवस्था के लिए एक क्रिया.उन्मुख और मानक संबंधी दृष्टिकोण रखने की वकालत की थी। इसे कई विकासशील देशों द्वारा दी गई अवधारणा के साथ बहुत दूर जाने के रूप में देखा गया।

जैव विविधता व्यवस्था

जैव विविधता जीनस प्रजातियों और पारिस्थितिक तंत्र की वैश्विक संरचना है। मनुष्य के अस्तित्व के लिए यह पृथ्वी पर एक महत्वपूर्ण शर्त है क्योंकि यह मूल्यवान पारिस्थितिक तंत्र सेवाएं प्रदान करता है। मुख्य रूप से उत्तरी संरक्षणवादी एनजीओ विशेष रूप से आईयूसीएन ;प्रकृति के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघद्ध और डब्ल्यूडब्ल्यूएफ ;विश्व वन्यजीव कोषद्ध द्वारा आवाज उठाई गई प्रजातियों के नुकसान और पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे वैज्ञानिकों नीति निर्माताओं और आम लोगों में चिंता बढ़ गई है। 1980 के दशक के दौरान संरक्षण और विकास के बीच संबंधों से संबंधित मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संरक्षणवादियों के बीच चर्चा होने लगी। यह ज्यादातर अकादमिक संस्थानों आईयूसीएन डब्ल्यूडब्ल्यूएफ आयोगों अंतर्राष्ट्रीय बैठकों में ध्यान देने योग्य रहा है जिन्हें वैश्विक जैव विविधता शासन के सिद्धांतों मानदंडों नियमों और संज्ञानात्मक तत्वों को आकार देने विचारों अवधारणाओं को मजबूत करने के लिए गंभीर स्थानों के रूप में माना जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण रूप से यह विकास और मानव आवश्यकताओं को शामिल करने के लिए संरक्षण के विचार में एक आदर्श बदलाव को दर्शाता है। क्योंकि पहली बार इस वार्ता प्रक्रिया ने सामाजिक.आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम को संरक्षण के मुद्दों में एकीकृत करने का प्रयास किया और संरक्षण एवं विकास के बीच एक कड़ी स्थापित करने का प्रयास किया। विस्तारित सहयोग को मान्यता देने की दृष्टि से एक अंतर्राष्ट्रीय शासन को डिजाइन करने के लिए बहुत सारे समन्वित प्रयास किए गए हैं जब यूएनईपी ने 1987 में जैव विविधता के संरक्षण और सतत उपयोग पर अंतर्राष्ट्रीय कानूनी साधन स्थापित करने की संभावना की जांच करने की पहल की थी। न्छम्च्

की गवर्निंग काउंसिल ने शायद यह वैश्विक स्तर पर व्यापक रूप से विचार किए जाने वाले जीनों प्रजातियों और पारिस्थितिक तंत्र की विविधता के लिए पहला कदम था। इस कदम के पीछे का विचार मौजूदा अंतरराष्ट्रीय संरक्षणवादी सम्मेलनों ;ब्ज्ै बॉनय रामसर विश्व विरासत और अन्यद्ध को एक दस्तावेज़ में जोड़ना और अंतराल को भरने के लिए नए नियम बनाना था। इस प्रकार प्रस्ताव केवल क्षेत्रों में गतिविधियों को युक्तिसंगत बनाने के लिए एक व्यापक सम्मेलन था।

संयुक्त राज्य अमेरिका व्यापक सम्मेलन के निर्माण के लिए कॉल करने वाला पहला देश था। एक साल बाद इस मुद्दे पर चर्चा करने के लिए यूएनईपी द्वारा श्जैविक विविधता पर विशेषज्ञों के तदर्थ कार्यकारी समूहश् की शुरुआत की गई। यह नवंबर 1988 और जुलाई 1990 के बीच तीन बार मिला और परिणामस्वरूप न्छम्च् ने कानूनी और तकनीकी विशेषज्ञों का एक कार्य समूह स्थापित किया जिसे बाद में श्जैविक विविधता पर एक सम्मेलन के लिए अंतर्राष्ट्रीय वार्ता समितिश् में बदल दिया गया। 1991 से जुलाई 1991 से मई 1992 तक नौ महीने की संक्षिप्त अवधि के बाद यह रियो सम्मेलन के एजेंडे में शामिल किए जाने के स्पष्ट परिणाम के रूप में सतत विकास के बारे में एक वैश्विक समझौता बन गया। बातचीत जल्द ही प्रौद्योगिकियों विशेष रूप से जैव प्रौद्योगिकी तक पहुंच के लिए जैविक संसाधनों के आदान.प्रदान पर देशों के बीच एक समझौते पर केंद्रित हो गई। इस मुद्दे का अत्यधिक राजनीतिकरण हो गया था जब प्रजातियों की सबसे बड़ी विविधता वाले देशों मुख्य रूप से विकासशील देशों ने अपने क्षेत्रों के भीतर आनुवंशिक संसाधनों पर संप्रभु अधिकारों के साथ.साथ जैव प्रौद्योगिकी के आकार में ऐसे संसाधनों के उपयोग से होने वाले लाभों तक समान पहुंच पर जोर दिया था। दूसरी ओर विकसित देश इन मांगों को स्वीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि वे जैव.विविधता को मानव जाति की एक साझी विरासत मानते थे और जैव.प्रौद्योगिकी उद्योग की चिंता थी जिसमें सरकार का न्यूनतम या कोई हस्तक्षेप नहीं था। इस प्रकार सबसे अपेक्षित रूप से वैश्विक जैव विविधता शासन गठन की प्रक्रिया तनाव और संघर्षों से शुरू होती है क्योंकि विभिन्न राज्यों में जैव विविधता पर अलग.अलग शेयर और हित हैं। संघर्षों के मुख्य मुद्दे संरक्षण रणनीतियों के नहीं थे बल्कि ज्यादातर आनुवंशिक संसाधनों और जैव प्रौद्योगिकी के स्वामित्व और बौद्धिक संपदा अधिकारों के सवालों से प्रेरित थे। दरार तब दक्षिणी जीन.समृद्ध और उत्तरी बायोटेक.समृद्ध देशों के बीच थी। फिर से बातचीत ज्यादातर वित्तीय तंत्र और प्रौद्योगिकी विनियमन को साझा करने के संघर्ष से परेशान थी। दाता देशों और अधिकांश लैटिन अमेरिकी देशों ने जीईएफ ;वैश्विक पर्यावरण सुविधाद्ध से दी जाने वाली वित्तीय सहायता का समर्थन किया क्योंकि यह दाता देशों द्वारा बनाया गया था और मुख्य रूप से विश्व बैंक द्वारा प्रबंधित किया गया था लेकिन भारत मलेशिया जैसे विकासशील देशों ने अलग से आवाज उठाई। जैव विविधता निधि जिसे केवल दाता देशों द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।

जैव विविधता शासन ने सफलतापूर्वक यह सुनिश्चित किया है कि विकासशील देश पहुंच और लाभ साझा करने के लिए एक स्पष्ट और पारदर्शी ढांचा स्थापित करके अपने क्षेत्र से उत्पन्न आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग के लाभों का उचित और न्यायसंगत हिस्सा प्राप्त करें। इस संदर्भ में यह नागोया प्रोटोकॉल5 तक पहुंच और लाभ साझा करने के बारे में उल्लेख करने योग्य है जिसे सोलह वर्षों तक चली लंबी वार्ता के बाद नागोया जापान में सीओपी10 ;27.29 अक्टूबर 2010द्ध के दौरान अपनाया गया था। यह प्रोटोकॉल महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने आनुवंशिक संसाधनों के प्रदाताओं और उपयोगकर्ताओं दोनों के लिए अधिक कानूनी निश्चितता और पारदर्शिता के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया है। आनुवंशिक संसाधन प्रदान करने वाले पक्ष ;देशद्ध के घरेलू कानून या विनियामक आवश्यकताओं के अनुपालन का समर्थन करने के लिए विशिष्ट दायित्व और पारस्परिक रूप से सहमत शर्तों ;एमएटीद्ध में परिलक्षित संविदात्मक दायित्व नागोया प्रोटोकॉल का एक महत्वपूर्ण नवाचार है। आनुवंशिक संसाधनों और संबद्ध पारंपरिक ज्ञान के

उपयोग को बढ़ावा देकर और उनके उपयोग से होने वाले लाभों के उचित और समान बंटवारे के अवसरों को मजबूत करके यह माना जाता है कि नागोया प्रोटोकॉल ने जैव विविधता के संरक्षण इसके घटकों का स्थायी रूप से उपयोग करने और योगदान को और बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन तैयार किया है। सतत विकास और मानव कल्याण के लिए जैव विविधता इस प्रकार नागोया प्रोटोकॉल को देशों को कानूनी दायित्वों में प्रवेश करने और घरेलू स्तर पर एबीएस ;लाभ साझा करने तक पहुंचद्ध उपायों को विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण साधन के रूप में पेश किया है।

हालाँकि जैव विविधता के नुकसान को केवल केंद्रीकृत प्रोटोकॉल या राष्ट्रीयकृत पहल या खंडित समुदायों द्वारा की गई पहलों को लागू करके कम नहीं किया जा सकता है। जैव विविधता के नुकसान के कारण बहुत जटिल हैं जो अक्सर आवास पर बहुपक्षीय हमलों से उत्पन्न होते हैं। इसलिए सभी को मिलकर काम करना चाहिए। जैव विविधता के कई पहलुओं पर नजर रखने की जरूरत है। इनमें अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय जैव विविधता विनियमों के बीच संबंध स्थापित करके सुसंगत करों को लागू करके अंशदायी निधि सुनिश्चित करके या शासन की प्रभावशीलता में सुधार के लिए वित्त पोषण तंत्र को मजबूत करके विश्व की जैव विविधता को बनाए रखने के लिए एक समग्र तंत्र शामिल है। हालाँकि इस जारी प्रक्रिया के लिए इस मुद्दे के क्षेत्र में विस्तारित अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एक आवश्यक शर्त है। एक संतुलित रणनीति हासिल करने की आवश्यकता है ताकि यह एक समान अवसर पैदा कर सके जिस पर समृद्ध जैव विविधता का संरक्षण और सुनिश्चित किया जा सके।

जलवायु परिवर्तन व्यवस्था

जलवायु परिवर्तन पिछले कुछ दशकों से पूरे अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने सबसे प्रमुख और तत्काल वैश्विक पर्यावरणीय संकट प्रतीत होता है। 1950 के दशक के बाद से वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग शुरू किए और यह दिखाने की कोशिश की कि कार्बन डाइऑक्साइड की वायुमंडलीय सांद्रता की अत्यधिक दर मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन के जलने और वनों की कटाई के कारण मानवीय गतिविधियों के कारण तेजी से बढ़ रही थी। उन्होंने यह भी दिखाया कि वातावरण में ऐसी अन्य ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता खतरनाक रूप से बढ़ रही थी। 1980 के दशक से इस मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जबरदस्त महत्व मिला था जब इस समस्या की प्रकृति और संभावित गंभीरता के बारे में एक व्यापक वैज्ञानिक सहमति विकसित की गई थी। आखिरकार सभी राष्ट्रों द्वारा यह महसूस किया गया कि दुनिया भर में जलवायु प्रेरित खतरों को कम करने के लिए व्यापक अंतरराष्ट्रीय सहयोग और समन्वय विकसित करना आवश्यक है जो कि राष्ट्रव्यापी सहमति के आधार पर एक प्रभावी शासन निर्माण के माध्यम से संभव है।

प्रारंभ में जलवायु परिवर्तन का मुद्दा राजनीतिक मुद्दे के रूप में नहीं उभरा। 1990 के दशक तक यह मुद्दा मूल रूप से पर्यावरण वैज्ञानिकों के इर्द.गिर्द घूम रहा था जो लगातार कार्यशालाओं सेमिनारों आदि के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के विभिन्न प्रकार के मुद्दों के बारे में वैज्ञानिक डेटा ज्ञान प्रदान करने में लगे हुए थे। इस प्रकार वे इन मुद्दों को एक काल्पनिक सिद्धांत से वास्तविक दुनिया की घटना में बदलने की कोशिश कर रहे थे। यह इस तरह के निर्णायक बिंदु पर पहुंच गया था कि अंततः इसे जून 1988 में टोरंटो सम्मेलन में लाया गया था जो पर्यावरणीय आपदाओं की एक श्रृंखला के साथ मेल खाता था जिनमें महत्वपूर्ण उत्तर अमेरिकी गर्मी की लहर और सूखा था। इस सम्मेलन में वर्ष 2005 तक ब्व्2 के वैश्विक उत्सर्जन को 20 प्रतिशत तक कम करने का आह्वान किया गया था वातावरण की रक्षा के लिए वैश्विक रूपरेखा सम्मेलन का विकास और जीवाश्म ईंधन पर कर द्वारा आंशिक रूप से वित्तपोषित एक विश्व वायुमंडल कोष की स्थापना के बाद में यह मुद्दा 1989 के हेग और नूरविज्क सम्मेलनों और 1990 के दूसरे

विश्व सम्मेलनों में भी उठाया और चर्चा की गई इस बात पर भी सहमति हुई कि विकसित देशों को उत्सर्जन लक्ष्यों के साथ.साथ राष्ट्रीय कार्यक्रमों या रणनीतियों को स्थापित करना चाहिए।

ओजोन व्यवस्था

वर्ष 2012 में मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल को अस्तित्व में आए पच्चीस वर्ष हो गए थे। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल दुनिया की सबसे सफल पर्यावरण संधियों में से एक है जो समतापमंडलीय ओजोन परत की रक्षा करने में सक्षम रही हैय गैस की एक नाजुक ढाल पृथ्वी को सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाती है। यह ओजोन परत का महत्वपूर्ण कार्य है इस तरह के विकिरण ने त्वचा के कैंसर और अन्य बीमारियों को धीरे. धीरे कम करने के लिए फैलाना शुरू नहीं किया। अवक्षय के वास्तविक स्तर का मापन 1980 के दशक की शुरुआत में शुरू हुआ था जब वैज्ञानिकों ने देखा कि अंटार्कटिक के ऊपर ओजोन परत धीरे.धीरे कमजोर हो रही थी। बाद में उन्होंने पाया कि सीएफसी अंततरू वायुमंडल में टूटकर अलग हो जाते हैं और क्लोरीन परमाणु छोड़ते हैं जो ओजोन क्षरण का कारण बनते हैं। 1990 के दशक की शुरुआत में ओजोन क्षरण के तहत भूमि क्षेत्र लगातार 20 मिलियन वर्ग किमी से अधिक तक बढ़ गया और तब से 20 से 29 मिलियन वर्ग किमी के बीच भिन्न हो गया और 2000 में ओजोन छिद्र का क्षेत्र रिकॉर्ड 29 मिलियन वर्ग किमी तक पहुंच गया।

अमेरिकी उपग्रह प्रेक्षणों द्वारा समर्थित ओजोन कवच के नुकसान के बारे में इन खतरनाक निष्कर्षों ने तुरंत अंतर्राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित किया है। इसे दुनिया की अब तक की सबसे बड़ी पर्यावरणीय आपदाओं में से एक माना जाने लगा था। जैसा कि यह पाया गया कि क्लोरोफ्लोरोकार्बन उत्पादन का बड़ा हिस्सा ज्यादातर संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय समुदाय में स्थित था औद्योगिक देशों ने इस समस्या पर अधिक गंभीरता से विचार करना शुरू कर दिया। तदनुसार 1976 के बाद से संयुक्त राज्य की संघीय सरकार ने सीएफसी के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया था और परिणामस्वरूप रसायनों का उत्पादन और उनकी कुल खपत तेजी से गिर गई थी। इसकी प्रतिक्रिया में स्वीडन नॉर्वे डेनमार्क जैसे कुछ अन्य देश जो सीएफसी के प्रमुख उत्पादक नहीं थे प्रणोदक के उपयोग को प्रतिबंधित करते हैं।

निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि पर्यावरणीय व्यवस्थाओं को फिर से सक्रिय करने के लिए गठबंधन की उपलब्धता एक आवश्यक पूर्व शर्त है। जाहिर है गठबंधन को सोच.समझकर डिजाइन किया जाना चाहिए और एक पुनरावृत्त प्रक्रिया के माध्यम से समेकित किया जाना चाहिए। गठबंधन का गठन चरणों की एक श्रृंखला के माध्यम से आगे बढ़ता है। वास्तव में सभी साझेदारियों के लिए एक उत्प्रेरक या आयोजन सिद्धांत की आवश्यकता होती है जो सहयोगी कार्रवाई के लिए आधार प्रस्तुत करता है। गठबंधन बनाने के प्रारंभिक चरण में आमतौर पर इच्छुक पार्टियों के बीच एक संवाद शामिल होता है। इस तरह की वार्ता प्रक्रिया एक पर्यावरणीय मुद्दे पर बहुपक्षीय सहमति के माध्यम से शुरू की जा सकती है जिसके लिए उपाय की आवश्यकता है। इस सहमति को संवाद प्रक्रिया में निरंतरता बनाए रखने के लिए काम करना चाहिए ताकि अन्य संभावित व्यवहार्य सदस्यों को गठबंधन प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। एक बार जब गठबंधन की आवश्यकता महसूस हो जाती है और उस पर सहमति बन जाती है तो दूसरे चरण में इसे क्रियाशील बनाने के लिए एक रणनीति तैयार करना शामिल होता है।

इस प्रकार विश्व पर्यावरण की रक्षा की चुनौती में प्रमुख सामरिक और आयाम दोनों हैं। अकादमिक पक्ष पर घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शामिल जटिल संरचना की समझ बढ़ाने के लिए पर्यावरण अध्ययन के क्षेत्र में लगातार प्रयास किए गए हैं। सामरिक पक्ष पर संघर्ष.संस्कृति अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में सतत बातचीत और सौदेबाजी के माध्यम से नीतियाँ समझौते संधियाँ आदि रहने को देखते हुए हल करने के कई प्रयास

किए गए। क्योंकि जितने भी अपराधी प्रकृति में वैश्विक हैं उनके सादृश्य और कार्य के पैमाने दोनों में सहयोग और भविष्य की उन सबका सामना करने के लिए अंतिम नियति बने हुए हैं जो कि व्यापक सहमति निर्माण के संबंध में विकसित किए गए हैं। इसके अलावा राज्यों के बीच बढ़ती हुई अन्योन्याश्रितता ने एक दूसरे को सामूहिक प्रयास और ऊर्जा के आधार पर एक साथ काम करने के लिए मजबूर किया है जो अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ती शक्ति राजनीति को प्रभावित करता है। इस तरह के विस्तृत सहयोगी नेटवर्क की खोज ने अंततः बहुस्तरीय सहयोग के कई रूपों को जन्म दिया है जो एक वैश्विक पर्यावरण संरचना के निर्माण का संकेत देता है जो अलग.अलग व्यवस्थाओं के एक विस्तृत नेटवर्क को सुरक्षित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. Waltz, N. Kenneth, (1979) Theory of International Politics', (McGraw Hill, New York)
2. Jr. Nye, Joseph.S, (2009), Understanding International Conflicts; An Introduction to Theory and History, (Pearson Longman)
3. Gerhar,Tina,(2012)Rio+20kicksoff ‖http://www.progressive.org/rio_20_kicks_off.html, 20th June, The Progressive, accessed on 21.05.2013.
4. Gareth, Porter and Janet Welsh Brown, (1996), _Global Environmental Politics', (Westview Press)
5. Shiva, Vandana, ―The Myths of Globalization Exposed: Advancing toward Living Democracy ‖in James Gustave Speth, ed. (2003), in WORLDS APART; Globalization and the Environment, (Inland Press)
6. Osborn, Dereck, (2013), Building on Rio+20 to Spur Action for Sustainable Development, (Environment, May/June, Volume 55, Number 3)
7. Thomas, J. Schoenbaum, (2006), _International Environmental Protection' in IR- The Path Not Taken: Using International Law to Promote World Peace and Security,(Cambridge University Press)
8. McConnell, F. (1996), The Biodiversity Convention; Negotiating History, (KluerLaw International, London and the Hague)
9. Porter, Gareth and Janet Walsh Brown, (1996), Global Environmental Politics,(Westview Press)
10. Gabrielle, Walker and Sir David King, (2008), The Hot Topic, A Harvest Original Harcourt, (Inc .Orlando, Austin, New York, San Diego, London)
11. Hira, Anil and Theodre H.Cohn, (Winter 2003-4), Toward A Theory of Global Regime Governance, (International Journal of Political Economy, Vol.33,no-4)

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से महिलाओं में बढ़ते रोजगार के अवसर एवं नारी सशक्तिकरण

सिद्धार्थ अविद्रा
शोध छात्र, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग,
डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि. सागर म.प्र.

प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत
प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग,
डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि. सागर म.प्र.

सार संक्षेप– *बेरोजगारीहमारी सरकार और योजनाकारों के सामने एक गंभीर समस्या हैं। इस समस्या के निदान हेतु सरकार द्वारा निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं, जिससे की बेरोजगारी की दर को कम किया जा सके। उन्ही प्रयासों में से एक हैं, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की शुरुआत। इस योजना के लाभ से कई युवाओं को निरंतर रोजगार की प्राप्ति हो रही हैं। इस योजना का लाभ हमारे देश की महिलाओं को भी मिल रहा हैं। जिससे की कम शिक्षित वर्ग के युवाओं को भी ट्रैनिंग के माध्यम से एक कुशल व्यक्तित्व में परिवर्तित कर एक सुगम रोजगार की प्राप्ति कराने में यह योजना काफी लाभप्रद रही हैं।प्रस्तुत शोध पत्र में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अंतर्गत महिलाओं को बढ़ते रोजगार के अवसरों का अवलोकन किया गया हैं।अध्ययन में ज्ञात हुआ की इस योजना के लाभ से महिलाओं के लिए उचित रोजगार के साधन प्राप्त हुए हैं नगर की महिलाओं के साथ – साथ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को भी रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहें हैं।*

मूल शब्द–कोरोना महामारी, बेरोजगारी, रोजगार, नारी सशक्तिकरण,प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना

प्रस्तावना– भारत जैसे विकासशील देश के सामने आबादी और बेरोजगारी की एक बड़ी समस्या है, कोरोना महामारी के चलते यह समस्या और भी विकराल रूप ले चुकी है। इस समस्या का प्रभाव शहरों के साथ–साथ अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखने को मिलने लगा है। बेरोजगारी को काबू में करने के लिए सरकार द्वारा प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना को प्रतिपादित किया गया, जिसका उद्देश्य देश के युवाओं के अंदर छिपे कौशल को निखारना जिससे वे अपने रोजगार के लिए सक्षम बन सकें। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना केंद्र सरकार द्वारा जनता के लिए प्रारंभ की गई एक फ्लैगशिप योजनाओं में से एक है। भारत सरकार ने इस योजना की शुरुआत 16 जुलाई 2015 में की थी, जिसका उद्देश्य कम शिक्षित या फिर बीच में स्कूल छोड़ चुके युवाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें कुशल बनाना है, जिससे वे स्वयं के लिए एक रोजगार प्राप्त कर सकें। भारत सरकार की इस योजना के अंतर्गत युवाओं को संगठित कर रोजगार के अवसर प्रदान करना है। किसी देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए उस देश में बेरोजगारी को कम करना बहुत आवश्यक हैं।

महिलाओं में भी इस योजना का लाभ देखने को मिल रहा है। लोगों के अंदर जागरूकता को बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न कदम उठाए जा रहे हैं कहीं ना कहीं इस योजना से ग्रामीण रोजगार में भी बढ़ोतरी देखने को मिल रही हैं। हमारे भारत का युवा कमजोर नहीं है, जरूरत है तो उसके कौशल को निखारने की जिससे वह अपने लिए एक उचित रोजगार को प्राप्त कर सके। हमारे देश की महिलाएं भी अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए प्रयासरत हैं, सरकारी कार्यालय से लेकर प्राइवेट सेक्टर में भी महिलाएं कार्य कर रही हैं, यही महिला सशक्तिकरण का उदाहरण हैं। प्रधानमंत्री कौशल

विकास योजना के माध्यम से भी कम शिक्षित महिलाओं को भी रोजगार प्राप्त करने के अवसर प्रदान हुए हैं इस योजना के अंतर्गत संचालित प्रशिक्षण केंद्रों में महिलाओं के लिए सिलाई प्रशिक्षण, ब्यूटी पार्लर,हस्तशिल्प और कालीन,स्वास्थ्य सेवा,सूचना प्रौद्योगिकी आदि पाठ्यक्रम संचालित हैं,जिसमे प्रशिक्षण प्राप्त कर हमारे देश की महिलाओं ने अपने लिए रोजगार के अवसर प्रदान किये हैं जिससे समाज में महिलाओं की प्रतिष्ठा, मान – सम्मान,एवं प्रस्थिति, में निरंतर सुधार देखने को मिल रहे हैं।

महिलाओं को सशक्त बनाने का अर्थ हैं। महिलाओं के आत्म–मूल्य की भावना को बढ़ावा देना। इसका मतलब है उन्हें बढ़ावा देना और उनकी कमजोरियों को पहचानने और उन्हें दूर करने की उनकी क्षमता तय करने में मदद करना। महिलाओं का सशक्तिकरण उन्हें समाज में अपने लिए एक कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है। हमारा समाज शुरू से ही पुरुष प्रधान रहा हैं परन्तु समय के साथ – साथ हमारे समाज की महिलाएं अपने अस्तित्व के लिए परस्पर प्रयासरत हैं वर्तमान की महिलाएं स्वयं निर्णय लेने के लिए सशक्त होती जा रही हैं। महिला सशक्तिकरण का उपयोग सभी जातियों, पंथों और रंगों के बावजूद महिलाओं को सभी क्षेत्रों में समान अवसर की शक्ति देने के लिए किया जाता है। महिला सशक्तिकरण को उन्हें शक्तिशाली बनाने के लिए माना जाता है ताकि वे यह तय कर सकें कि उनके लिए क्या सही है और क्या गलत।

उद्देश्य–

- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के प्रभाव से महिलाओं में रोजगार के अवसरों को ज्ञात करना।
- रोजगार प्राप्ति के बाद समाज में महिलाओं की प्रस्थिति का अवलोकन करना।
- महिलाओं की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तन को ज्ञात करना।
- महिलाओं में रोजगार हेतु स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का अवलोकन करना।

अध्ययन क्षेत्र– प्रस्तुत शोध पत्र में तथ्यों के संकलन हेतु मध्यप्रदेश के सागर जिले का चयन किया गया हैं सागर जिले का क्षेत्रफल 12,805 वर्ग किलोमीटर हैं। इसके उत्तर में छतरपुर और ललितपुर, पश्चिम में विदिशा व गुना, दक्षिण में नरसिंहपुर, पश्चिम–दक्षिण में रायसेन तथा पूर्व में दमोह जिले की सीमाएं लगती हैं जिले के दक्षिणी भाग से कर्क रेखा गुजरती है सागर जिला 23डिग्री 10 मिनट से 24डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांश और 78डिग्री 4 मिनट से 79 डिग्री 21 मिनट पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है।सागर जिला भारत के लगभग हृदय स्थल में स्थित है, वर्तमान में इस जिले में 12 तहसीलें सागर, बंडा, बीना, खुरई, देवरी, मालथोन, रहली, शाहगढ़, राहतगढ़, गढ़ाकोटा, केसली शामिल हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार सागर जिले की जनसँख्या 23,78,458 है जिसमे से ग्रामीण क्षेत्र की जनसँख्या 16,69,662 एवं शहरी क्षेत्र की जनसँख्या 7,08,796 हैं, अपितु शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र की जनसँख्या अधिक हैं।

अनुसंधान पद्धति– प्रस्तुत शोध पत्र में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के लाभ से महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों एवं रोजगार के पश्चात महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को ज्ञात करने का प्रयास किया गया हैं।अध्ययन हेतु प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर रही महिलाओं से चर्चा की गयी एवं द्वितीयक तथ्यों के लिए पत्रिकाएं, पुस्तक, इंटरनेट, वेबसाइट, जर्नल का प्रयोग किया गया।अनुसंधान के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री कौशल विकास के अंतर्गत सागर जिले में संचालित प्रशिक्षण केन्द्रो पर जाकर प्रशिक्षण प्राप्त कर रही महिलाओं से चर्चा की एवं अनुसंधान में प्रयुक्त उपकरण साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया।

अध्ययन हेतु प्रशिक्षण केन्द्रो में जाकर 60 महिलाओं का साक्षात्कार अनुसूची के माध्ययम से साक्षात्कार लिया गया हैं जिसमे अलग – अलग प्रशिक्षण क्षेत्र की महिलाएं शामिल हैं।

तालिका 01

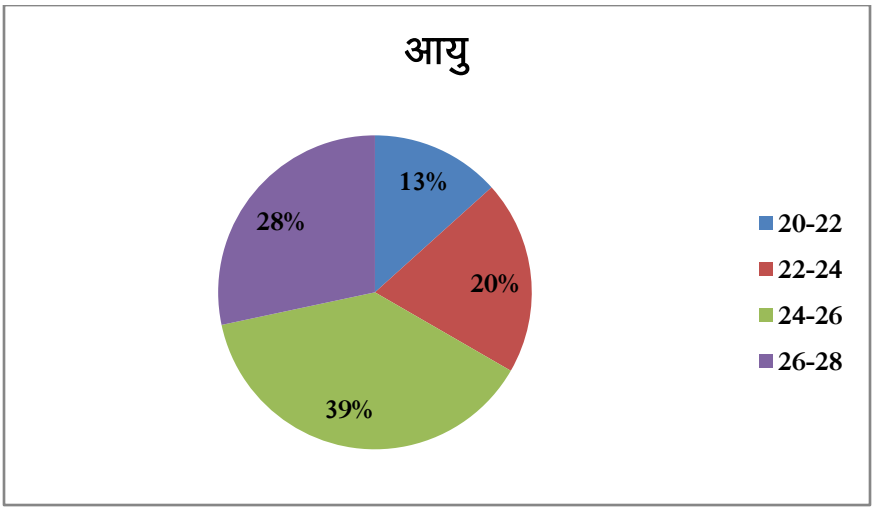

तालिका क्रमांक 01 के अनुसार प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अंतर्गत संचालित प्रशिक्षण केन्द्र में 20 से 22 आयु वर्ग की 8 , 22से 24 आयु वर्ग की 12 , 24से 26 आयु वर्ग की 23 एवं 26से 28 आयु वर्ग की 17 महिलाएं प्रशिक्षण प्राप्त कर रहीं हैं।

तालिका 02

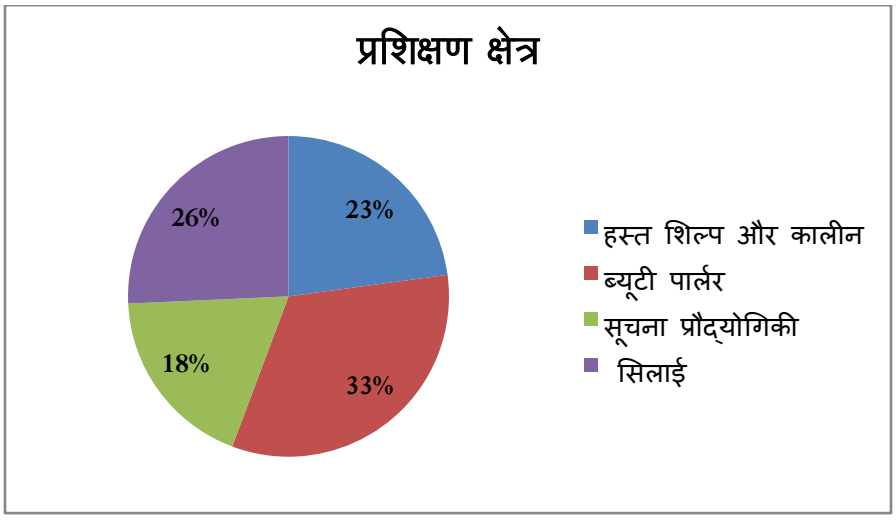

तालिका क्रमांक 02 प्रशिक्षण क्षेत्र के अनुसार हस्तशिल्प एवं कालीन के क्षेत्र में 16 , ब्यूटी पार्लर के क्षेत्र में 23 ,सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 13 एवं सिलाई के क्षेत्र में कुल 18 महिलाएं प्रशिक्षण प्राप्त कर रहीं हैं।

निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध अध्ययन में रोजगार के प्रति आज की महिलाओं की रुचि को देखते हुए यह कहा जा सकता हैं कि आज की महिलाओं में स्वयं की शक्ति से अपने निर्णय लेने की क्षमता एवं स्वतंत्रता हैं, यही नारी सशक्तिकरण का उदाहरण हैं। वर्तमान की महिलाओं में आत्मनिर्भर बनने की भावना की कमी नहीं हैं। अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए एवं अपनी प्रस्तिथि में सुधार हेतु आज की महिलाएं रोजगार के लिए प्रेरित होती जा रही हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से कम शिक्षित महिलाओं को रोजगार के

अवसर प्राप्त हुयें हैं ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं भी इस योजना से जुड़कर रोजगार प्राप्त कर रहीं हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से प्रशिक्षण प्राप्त करके पूरे देश में कहीं भी रोजगार प्राप्त किया जा सकता हैं। वर्तमान में इस योजना का तीसरा चरण 3.0 चल रहा हैं इसके पहले प्रथम चरण 1.0 एवं द्वितीय चरण 2.0 ने अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर ली हैं।

इस योजना की ऑफिशियल वेबसाइट के अनुसार दिनांक 25.05.2022 तक के आंकड़े निम्नलिखित हैं।

	India	Madhya Pradesh	Sagar
Enrolled Candidate	7,94,911	60,016	1,218
Trained Candidate	7,27,509	55,991	1,203
Assessed Candidate	5,56,180	41,451	762
Certified Candidate	3,96,162	23,915	493
Reported Placed	36,457	4,091	0
Ongoing training	10,093	149	0

वेबसाइट पर प्रदर्शित आंकड़ों को देखते हुए यह ज्ञात होता हैं कि यह योजना रोजगार हेतु कितनी कारगार साबित हो रही हैं। हमारे देश के युवाओं को इस योजना से जोड़ने के लिए सरकार द्वारा निरंतर प्रयास जारी हैं। योजना के तीसरे चरण 3.0 की उपलब्धि को प्राप्त करने हेतु अधिक से अधिक युवाओं को रोजगार के लिए प्रेरित किया जा रहा हैं इसके लिए विज्ञापन, समाचार पत्रों, रेडिओ, होर्डिंग्स, एवं गावों में चौपाल के माध्यम से युवाओं को जागरूक करने की पहल की जा रही हैं।

सन्दर्भ सूची–

- सिंह डॉ. प्रकाश आनंद (2007),सुनिश्चित रोजगार संवर्धन एवं ग्रामीण विकास, सागर,अमन प्रकाशन कटरा
- गौतम कुमार प्रमेश, (2009), मध्यप्रदेश में प्रधानमंत्री रोजगार योजना का मूल्यांकन ,अमन प्रकाशन ,प्रथम संस्करण
- खान गुफरान, (2013), सागर जिले में ग्रामीण विकास अभिकरण के अंतर्गत संचालित ग्रामीण विकास योजनाओं का अध्ययन,प्रांजल प्रकाशन सागर
- https://www.pmkvyofficial.org/about-pmkvy
- https://www.pmkvyofficial.org/home-page
- https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/joonakkonwar/women-empowerment-3-26133/
- https://www.linkedin.com/pulse/article-women-empowerment-shivani-jella
- https://sagar.nic.in/en/tehsil/

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

जनसचांर माध्यमों का परिवार पर पड़ने वाला प्रभाव
(एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

शोध निर्देशिका, प्रोफेसर रेखा
समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
अरिहन्त कुमार पाल, शोध छात्र,
समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

परिवर्तन प्रकृति का नियम है जो आज है वह भावी कल से भिन्न होगा। परिवार, धर्म, जाति तथा वैवाहिक संस्थाओं का रूप वहीं नहीं रहेगा जो आज कल है। सामाजिक संरचना में सदैव परिवर्तन होता रहा है प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के इतिहासों पर अगर गौर किया जाय तो समाज के सभी क्षेत्रों में अमूल–चूल परिवर्तन हुए है और अबाधित रूप से होते रहेंगे। वर्तमान समय वैज्ञानिक युग का समय है इसलिए सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र है, सामाजिक संचरना के परिवर्तन का प्रमुख कारण औद्योगीकरण, नगरीयकरण, भू मण्डलीय करण, वैश्वीकरण है। वर्तमान सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप तेजी से बदल रहा है इस बदलते रूप में मुख्य रूप से आधुनिक तकनीकी तथा जनसंचार माध्यमों का योगदान पूरी तरह से परिलक्षित होता है। सामाजिक संरचना की केन्द्रीय इकाई के रूप में परिवार को केन्द्रक इकाई माना जाता है जो बच्चें को जन्म देने से लेकर पारिवारिक स्थापना सहित सभी तरह के कार्यों का ईमानदारी पूर्वक बिना किसी लाभ के सम्पन्न करता है। परिवार ही बच्चें को एक जैविकीय प्राणी से मानवीय प्राणी में बदलता है आज संचार के माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के कारण परिवार के कार्य तथा संरचना में अमूल–चूल परिवर्तन दिखाई दे रहे है समाज सदैव परिवर्तनशील परिघटना है जिसका विकास, ह्रास एवं नवीनीकरण होता रहा है जो परिवर्तनशील दशाओं के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करता रहा है तथा इसमें इस दौरान विशाल परिवर्तन हुए है। हम समाज को इसके परिवर्तनशील स्वभाव को समझे बिना पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते।

परिवर्तन काल की किसी अवधि में किसी वस्तु में दृश्यमान परिवर्तन को इंगित करता है। इस प्रकार किसी निश्चित कालावधि में किसी सामाजिक परिघटना में परिवेक्षणीय अन्तर है। सामाजिक परिवर्तन कला साहित्य औद्योगिक दर्शन आदि में आए परिवर्तनों को नहीं कह सकते सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों एवं सामाजिक अन्तः क्रियाओं से है। सामाजिक परिर्वतन के इसी नैसर्गिक प्रक्रिया के गतिमान चरण के प्रभाव से समाज की सामाजिक संस्थाओं को भी प्रत्यक्ष या प्ररोक्ष रूप से प्रभावित किया है। इसी संदर्भ में समाजशास्त्र के जनक कहे जाने वाले आगस्त काम्ट महोदय ने समाज की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है।

1– धार्मिक अवस्था
2– तात्विक अवस्था
3–प्रत्यक्षवादी (वैज्ञानिक) अवस्था

परिर्वतन की इन्हीं अवस्थाओं से गुजरता हुआ आज हमारा समाज आधुनिक युग में प्रवेश कर चुका है जिसमें मनुष्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्ध धीरे–धीरे परिवर्तित हो रहे है। सामाजिक क्रिया–कलाप अब द्वितीयक संस्थाओं द्वारा सम्पन्न किये जा रहे है बढ़ते जनसंचार के साधनों ने सामाजिक ढ़ाचे को पूरी तरह से बदल दिया है।

जनसंचार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'चलना' जनसंचार दो शब्दों से मिलकर बना है– जिसमें 'जन' का अर्थ है लोग तथा 'संचार' का अर्थ है फैलाव। इस प्रकार जनसंचार का तात्पर्य उन माध्यमों से है जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक संदेशों का आदान–प्रदान किया जा सके।

जनसंचार के विभिन्न चरण–भारत में 19वीं शताब्दी से जनसंचार के क्षेत्र में परिवर्तन होना शुरू हुआ इससे पहले व्यक्ति के संदेशों का आदान–प्रदान की कई कहानियां इतिहासों में सुनने को मिलती है। जैसे मुगल काल में कबूतरों द्वारा संदेशों का आदान–प्रदान, डुग्गी द्वारा लोगों को संदेश देना प्रचलित था। जनसंचार के प्रगति के विभिन्न चरण निम्न प्रकार है।

1– **डाक व्यवस्था :–** भारत में डाक व्यवस्था को संचार प्रौद्योगिकी का आरम्भिक रूप माना जाता है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान डाक व्यवस्था का प्रसार करने के लिए सन् 1774 में कलकत्ता में पहलें जनरल पोस्ट आफिस (G.P.O.) की स्थापना की गयी सन् 1854 में पहला पोस्ट आफिस अधिनियम पारित किया गया। इस समय सम्पूर्ण भारत में डाकघरों की संख्या 1.57 लाख से अधिक है। सन् 2005 के जनसूचना अधिनियम (R.T.I.) से सम्बन्धित सेवाएं देने में डाक विभाग की मुख्य भूमिका है। मार्च 2009 से देश में डाक व्यापार केन्द्र भी स्थापित किये गये जिनका सूचना प्रौद्योगिकी में आज विशेष स्थान है।

2– **प्रेस अथवा समाचार–पत्र :–** जनसंचार माध्यमों के रूप में प्रेस तथा समाचार पत्र जन साधारण के लिए सूचना का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण साधन है। स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय स्तर तक की सूचनाएं विभिन्न समाचार पत्रों द्वारा सामान्य लोगों तक पहुंचाने में इसकी विशष भूमिका है। जनसंचार माध्यमों के रूप में प्रेस कितना प्रभावपूर्ण साधन है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारत में आज विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाले पंजीकृत समाचार पत्रों की संख्या 70,000 के लगभग है। समाचार पत्रों को निष्पक्ष सूचनाएं उपलब्ध कराने का कार्य प्रेसट्रस्ट ऑफ इण्डिया (P.T.I.) द्वारा किया जाता है। दिसम्बर 1959 से भारत में यूनाइटेड न्यूज ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई जिसमें हिन्दी समाचार एजेन्सी के रूप में सेवाएं देना शुरू की। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता की रक्षा तथा सूचनाओं के स्तर को बनाये रखने का काम भारतीय प्रेस परिसर का है। अब सरकार ने सरकारी नीतियों, कार्यक्रमों तथा जनसम्पर्क स्थापित करने हेतु प्रेस सूचना ब्यूरों (P.I.B) की स्थापना की है।

3– **दूर संचार :–**जनसंचार को बढ़ावा देने के रूप में दूर संचार वह महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा बहुत कम समय में एक–दूसरे से काफी दूर रहने वाले परस्पर सम्पर्क स्थापित करके अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते है। दूर संचार के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तार, टेलीफोन, फैक्स, मोबाइल तथा इंटरनेट जैसी सेवाओं को सम्मिलित कर सकते है। भारत मे तार द्वारा सूचना देने का काम सन् 1851 में शुरू हुआ जिसे हाल ही में भारत सरकार द्वारा स्थायी रूप से बन्द कर दिया गया।

टेलीफोन सेवा सन् 1881–82 में आरम्भ हुई आज भारत के दूर संचार नेटवर्क को ऐशिया का सबसे बड़ा नेटवर्क माना जाता है। भारत में मोबाइल क्रान्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 01 अक्टूबर 2000 में भारत संचार निगम लिमिटेड (B.S.N.L) की स्थापना हुई जिसके बाद दूर संचार की नई प्रौद्योगिकी द्वारा क्रान्तिकारी परिर्वतन सामने आने लगे। जनसंचार के क्षेत्र में इंटरनेट का व्यवसायिक और व्यक्तिगत उपयोग सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि है।

4– रेडियो तथा टेलीविजन :– रेडियो तथा टेलीविजन दोनों ही जनसंचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे है। भारत में रेडियो प्रसारण का आरम्भ सन् 1920 में शुरू हुआ शुरू के 10 वर्षों बाद सरकार ने इसे अपने नियन्त्रण में ले लिया तथा भारतीय प्रसारण सेवा नाम दिया। जिसे 1936 में आल इण्डिया रेडियों, सन् 1957 में पुनः इसका नाम संशोधित करते हुए आकाशवाणी कर दिया गया। रेडियो तथा टेलीविजन को एक विकसित माध्यम बनाने के उद्देश्य से सन् 1990 में प्रसार भारतीय अधिनियम पारित किया गया। आज नगरीय क्षेत्रों में रेडियो का उपयोग कम होता जा रहा है लेकिन गांव में खेती–बाड़ी, स्वास्थ्य और महिला कार्यक्रमों को सुनने हेतु बड़ी संख्या में ग्रामीण लोग रेडियो प्रसारण में रूचि ले रहे है। देश में इस समय रेडियो प्रसारण के लिए उच्च, मध्यम और अल्प शक्ति वाले लगभग 14,00 ट्रांसमीटर काम कर रहे है। विगत कुछ वर्षों से जनसंचार के रूप में टेलीविजन की लोकप्रियता काफी तेजी से बढ़ी है इस समय 200 से अधिक टेलीविजन चैनलों पर विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित हो रहे है। जिसमें बच्चों के कार्यक्रम से लेकर विभिन्न प्रकार के खेल, समाज सुधार कार्यक्रम, संगीत, मनोरंजन, तकनीकि तथा घरेलू (पारिवारिक) कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। एक अनुमान के आधार पर 90% नगरीय जनसंख्या तथा 50% ग्रामीण जनसंख्या टेलीविजन से सम्बन्धित कार्यक्रमों को देखती है।

5– विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय :–भारत में इस निदेशालय की स्थापना एक प्रमुख सूचना एजेन्सी के रूप में की गयी। इसका मुख्य कार्य समाचार पत्रों, टेलीविजन, रेडियों तथा मुद्रित समाचार सामग्री के द्वारा सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों से जन साधारण को परिचित कराना है। निदेशालय द्वारा विभिन्न भाषाओं के 4,000 से अधिक समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर सरकार के लक्ष्य और नीतियों का प्रचार किया जाता है। यह निदेशालय लघुवृत्त चित्र तैयार करके भी तरह–तरह की सूचनाओं का प्रसार करता है। समय–समय पर विभिन्न सूचनाओं के लिए प्रदर्शनियां भी आयोजित की जाती है।

6– भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणालीः–भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वह महत्वपूर्ण माध्यम है जिसने सन् 1980 से संचारा के क्षेत्र में एक बड़ी क्रान्ति के रूप में शुरूआत की। भारत द्वारा आन्तरिक्ष में जो उपग्रह स्थापित किये गये उनमें मुख्य रूप से इन्सेट–2E, इन्सेट–3A,इन्सेट–3B, इन्सेट–3C, एडुसेट है। इन सभी उपग्रहों का काम दूर–संचार, टेलीविजन प्रसारण, मौसम के पूर्वानुमान, आकस्मिक आपदा की चेतावनी और बचाव क्षेत्र में सूचनाएं उपलब्ध कराना है। आज भारत में 90 करोड लोगों को टेलीविजन से प्राप्त होने वाले कार्यक्रम और विभिन्न प्रकार की सूचना का लाभ उपग्रह प्रणाली की सहायता से ही प्राप्त हो रहा है। इसके अलावा तरह–तरह के प्रशिक्षण और विकास सम्बन्धी शिक्षा का लाभ देने में भी इस प्रणाली का विशेष योगदान है।

7– कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी :–वर्तमान युग में कम्प्यूटर सूचना प्रौद्योगिकी का सबसे महत्वपूर्ण साधन में से एक है। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी ने आज समूची दुनिया को एक छोटे से समुदाय में बदल दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कम्प्यूटर द्वारा दी जाने वाली प्रमुख सेवाओं को संक्षेप में समझा जा सकता है।

(i)- **ई–मेल :–** इस प्रविधि के द्वारा कोई भी व्यक्ति कितनी भी दूर बैठे व्यक्ति के मेल आई डी पर किसी भी प्रकार की सूचना का आदान–प्रदान कर सकता है।

(ii)- **सर्च इंजन :–** यह वह क्रान्तिकारी परिर्वतन है जिसके द्वारा दुनियां के किसी भी स्थान व विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(iii)- **सारणीयन तथा चार्टिंग** :– कम्प्यूटर के द्वारा बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न सूचनाओं से सम्बन्धित आंकड़ों को बहुत शीघ्र लघु सारणियों में व्यवस्थित करके निष्कर्ष प्राप्त कर सकते है।

(iv)- **आंकड़ों और सूचनाओं का केन्द्रीयकरणः–**आंकड़ो का केन्द्रीयकरण एक ऐसी प्रविधि है जिसके अन्तर्गत एक विशेष सेवा से जुड़े सभी केन्द्रों को एक दूसरे से इस तरह जोड़ दिया जाता है जिससे व्यक्ति अपने निवास स्थान से बहुत दूर होते हुए भी विशेष सुविधाओं को प्राप्त कर सकता है। जैसे भारतीय स्टेट बैंक की सभी शाखाओं का कोर बैकिंग के द्वारा जुड़ जाने से व्यक्ति किसी भी नगर की SBI शाखा से लेन–देन कर सकता है।

(v)- **सोशल नेटवर्किंग साइटः–** इस प्रविधि के द्वारा व्यक्ति अपनी वेबसाइट बनाकर उसमें इच्छित विवरण तथा जानकारियां डाल सकता है इस वेबसाइट द्वारा सर्च इंजन की सहायता से दूसरी वेबसाइट पर उपलब्ध अन्य व्यक्तियों के बारे में नवीनतम सूचनाएं प्राप्त कर सकते है।

(vi)- **इन्टरनेट द्वारा वार्तालापः–** इस प्रविधि के द्वारा अपने किसी सम्बन्धी, मित्र, व्यवसायिक सहकर्मी अथवा विभिन्न प्रकार के हितों से जुड़े हुए लोगों को स्क्रीन पर लाकर उनसे इस तरह वार्तालाप कर सकते है मानों आमने–सामने वार्तालाप कर रहे है।

(vii)- **ट्यूटर, फेसबुक, वाट्सएपः–** यह वह प्रविधि है जिसके द्वारा हम एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों से जुड़ कर त्वरित गति से विभिन्न तरह के संदेशों का आदान प्रदान कर सकते है।

विभिन्न तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आज जनसंचार के बढ़ते साधनों में समाज की संरचनाओं को प्रभावित करने का कार्य किया। इसी क्रम में सामाजिक संस्था की केन्द्रक इकाई 'परिवार' भी इससे अछूता नहीं है।

परिवार :–एल्मर महोदय ने अपनी पुस्तक Sociology of family में लिखते हैं कि फैमिली शब्द का उद्‌गम लैटिन शब्द Famulus से हुई है। जिसका अर्थ है सेवक अथवा सेवा करने वाला। परिवार के सम्बन्ध में विभिन्न समाजशास्त्रियों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की है। जिनमें से कुछ निम्न प्रकार है।

मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में–''परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं लालन–पालन की व्यवस्था करता है।''

इलियट एवं मैरिल के अनुसार–''परिवार पति–पत्नी एवं बच्चों से निर्मित एक जैविक सामाजिक इकाई है।''

किंग्सले डेविस ने परिवार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि–''परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिसमें संगोत्रता के सम्बन्ध होते है और जो इस प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित होते है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि परिवार जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक सामाजिक समूह है जिसमें माता–पिता तथा उनकी संताने होती है जिनका उद्‌देश्य अपने सदस्यों के लिए भोजन, प्रजनन, यौन संतुष्टि, सामाजीकरण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। इस प्रकार परिवार के पांच महत्वपूर्ण तत्वों का उल्लेख किया जा सकता है।

1– स्त्री पुरूष का यौन सम्बन्ध।
2– यौन सम्बन्धों को विधि पूर्वक स्वीकृति।
3– संतानों की वंश व्यवस्था।
4– संतानों का भरण–पोषण।
5–सह–निवास की व्यवस्था।

मैकाइवर व पेज ने अपनी पुस्तक सोसाइटी में परिवार की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है। जो निम्न है।

1– सार्वभौमिकता।
2– भावात्मक आधार।
3– सृजनात्मक प्रभाव।
4– सीमित आकार।
5– सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थिति।
6– सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व।
7– सामाजिक नियन्त्रण का साधन।
8– परिवार की स्थायी व अस्थायी प्रकृति।

परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त– परिवार की उत्पत्ति कब, कैसे व किन अवस्थाओं में हुई, मानवशास्त्रियों, मनोंवैज्ञानिकों तााि समाजशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता है। परिवार के उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त विद्वानों द्वारा निम्न प्रकार है।

1–यौन साम्यवाद का सिद्धान्त– मार्गन, फ्रेजर और ब्रिफाल्ट है।

2–पितृ सत्तात्मक (शास्त्रीय) सिद्धान्त– अरस्तु, प्लेटों तथा सर हेनरी मैन है।

3– मातृ सत्तात्मक सिद्धान्त– राबर्ट ब्रिफाल्ट, बैकोफन तथा टायलर है।

4– उद् विकासीय सिद्धान्त– बैकोफन, स्पेन्सर, टायलर आदि।

5– एक विवाही परिवार का सिद्धान्त– वेस्टरमार्क तथा मैलिनोवास्की है।

जनसंचार माध्यमों के प्रभाव से परिवार की वर्तमान संरचना तथा प्रकार्य का स्वरूपः–

जनसंचार के बढ़ते प्रभाव ने परिवार की आन्तरिक तथा वाह्य संरचना को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। परिवार में सभ्यता, संस्कृति, लोकाचार, रीति–रिवाज, व्यवहार प्रतिमान, परिधान, स्वागत के तरीके, अर्न्तसम्बन्ध, सहयोग की प्रक्रिया, संरचना, सामाजीकरण आदि में बदलाव दिखाई दे रहा है। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में से सबसे लोकप्रिय मोबाइल, टेलीविजन तथा इन्टरनेट ने लोगों की जीवनशैली को पूरी तरह से प्रभावित किया है। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों ने सबसे पहले व्यक्ति को आत्मनिर्भर तथा जागरूक बनाया जिससे लोग अपनी आजीविका हेतु घरों से निकल कर शहरों की तरफ प्रस्थान करने लगे जिससे संयुक्त परिवार धीरे–धीरे एकाकी परिवारों में परिवर्तित होने लगे। परम्परागत व्यवहारों में आधुनिकता का समावेश होने लगा परसंस्कृति ग्रहण तेजी से बढ़ने लगा मनोरंजन के साधनों के रूप में नाटक घर, क्लब, चलचित्र मित्रगोष्ठियां के लोकप्रिय होने के कारण मनोरंजन के परम्परागत स्वरूप जैसे आल्हा, समूह गान, वृद्ध जनों द्वारा कहानियां, लोकगीत आदि इतिहास हो गए। जनंसचार के बढ़ते प्रभाव से सामाजीकरण में भी बदलाव हुआ है। आज सामाजीकरण के रूप में विभिन्न निजी संस्थाएं कार्य कर रही है जैसे विद्यालय, व्यक्तित्व को निखारने की कक्षाएं आदि। शिक्षा के आधुनिक तरीकों ने व्यक्ति को सामाजिक की जगह आर्थिक क्षेत्रों में रूझान बढ़ा दिया है। जनसंचार के अधिक उपयोग से परिवार के आपसी सम्बन्धों में गिरावट हुई है जिससे परिवार में अन्तर पीढ़ी संघर्ष बढ़ चुके है। आज परिवार के सभी सदस्यों के हाथ में मोबाइल होने से एक दूसरे की आवश्यकताओं आदि पर ध्यान नहीं दिये जा रहे है। जिससे आत्मीय सम्बन्ध धीरे–धीरे समाप्त हो रहे है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए द्वितीयक संस्थाओं का सहयोग ले रहा है। सामाजिक नियन्त्रण के रूप में धीरे–धीरे प्राथमिक नियन्त्रण का प्रभाव खत्म हो रहा है और इसके स्थान पर द्वितीयक साधनों द्वारा समाज को नियंत्रित करने का प्रयास किया जा रहा है। आज इलेक्ट्रानिक तथा प्रिंट मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण अति जागरूकता उत्पन्न होने से विवाह विच्छेद,

मादक द्रव्य व्यसनों का बढ़ता प्रभाव, बेकारी, बेरोजगारी आदि द्वारा परिवार का स्थायी स्वरूप धीरे–धीरे प्रभावित हो रहा है।

संचार माध्यमों का परिवार पर पड़ने वाला सकारात्मक प्रभाव :–

1– सदस्यों की जागरूकता में वृद्धि।
2– व्यक्ति के अप्रत्यक्ष सम्बन्धों में बढ़ावा।
3– परिवार सदस्यों की बढ़ती आत्म निर्भरता।
4– अंध विश्वासों, कुरीतियों तथा पाखण्डों की समाप्ति।
5– अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूकता।
6– मनोरंजन के साधनों का उन्नतिशील विकास।
7– पाश्चात्य् संस्कृति द्वारा जीवन स्तर में सुधार।
8– महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार।
9–शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण स्तरों में सुधार।
10– महिला सशक्तीकरण में वृद्धि।

जनसंचार माध्यमों का परिवार पर पड़ने वाला नकारात्मक प्रभावः–

1– परिवार के आकार में परिवर्तन।
2– पारिवारिक समस्यों के आपसी सम्बन्धों में गिरावट।
3– वृद्ध जनों में अकेलापन, उदासी, उपेक्षा।
4–मनोरंजन द्वारा नकारात्मक प्रभाव।
5– सांस्कृतिक प्रतिमान तथा व्यवहारों में ह्रास।
6– स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार जैसे अन्द्रिा, मानसिक तनाव, उक्त रक्त चाप आदि।
7– युवा वर्ग में विचलन।
8– प्राथमिक सम्बन्धों में तनाव।
9– अप्रवास तथा उत्प्रवास से समस्या।
10– परम्पराओं तथा सांस्कृतिक पक्षों में गिरावट।

निष्कर्ष :– इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के द्वारा आज हमारी सामाजिक संरचना, लोगों के जीवन स्तर में सुधार, शिक्षा के स्तर में वृद्धि, स्वास्थ्य के क्षेत्र में उन्नति, सांस्कृतिक उन्नति, नवाचार, संगठन आदि में तेजी से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। आज इन्हीं जनसंचार के बढ़ते प्रभाव ने विभिन्न देशों के बीच की दूरियों को कम करके वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया। आज नगरीकरण, औद्योगी करण, भूमण्डलीय करण आदि के पीछे जनसंचार माध्यमों का प्रमुख योगदान है। जहां एक तरह जन संचार ने सामाजिक संरचना में भौतिक पक्षों में गति प्रदान की वहीं समाज के अभौतिक पक्षों का तेजी से ह्रास हो रहा है। जिसके कारण समाज में सहयोग, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, धैर्य, सामूहिकता, धर्म, नैतिकता, संस्कृति तथा संस्कारों में तेजी से गिरावट हो रही है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत विवाह को सात जन्मों का पवित्र बन्धन माना जाने वाला सम्बन्ध भी अब विवाह विच्छेद की भेट चढ़ रहा है। जनसंचार की अधिक उपयोगिता से मनुष्य की दैनिक क्रियाओं पर सीधा प्रभाव पड़ा है। समाज की केन्द्रक इकाई परिवार के संगठन को भी इन जनंसचार के माध्यमों ने प्रभावित करके रखा है। आज प्रौद्योगिकी विलम्बना के कारण जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से लोग लाभान्वित कम बल्कि दुष्प्रभावित अधिक हो रहे है। यदि जनसंचार माध्यमों का सही तरीके से उपयोग करना है तो समाज में व्याप्त प्रौद्योगिकी विलम्बना को शीघ्र ही दूर करने हेतु मजबूत कदम उठाने

होंगे। यदि जनसंचार माध्यमों का इसी तरह से उपयोग होता रहा तो समाज में मनुष्य सामाजिक प्राणी के स्थान पर एक मशीनी प्राणी रह जायेगा। समाज की मूल कही जाने वाली परिवार जैसी संस्थाएं धीरे–धीरे यदि विलुप्त हो गयी तो समाज स्वतः ही समाप्त हो जायेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जी.के., एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस 3/10 ठ निकट तुलसी सिनेमा आगरा, मथुरा बाईपास रोड, आगरा–282002, पृ. 35
2. भूषण विद्या, सचदेव डी.आर., किताब महल दरियागंज, नई दिल्ली–11002, पृ. 301
3. अग्रवाल, जी.के., एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस 3/10ठ निकट तुलसी सिनेमा आगरा, मथुरा बाईपास रोड, आगरा–282002, पृ. 44
4. अग्रवाल, जी.के., एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस 3/10ठ निकट तुलसी सिनेमा आगरा, मथुरा बाईपास रोड, आगरा–282002, पृ. 55–57
5. भूषण विद्या, सचदेव, डी.आर., किताब महल दरियागंज, नई दिल्ली–11002, पृ. 292–293
6. अग्रवाल जी.के., समाजशास्त्र परिचय, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस 3/10ठ निकट तुलसी सिनेमा आगरा, मथुरा बाईपास रोड, आगरा–282002, पृ. 127
7. नारायण, के.शंकर, मोक्ष के मार्ग
8. विज्ञान प्रगति, दिसम्बर संस्करण 2018
9. दैनिक जागरण, सम्पादकीय 14, जनवरी 2019 (कुम्भ वि0)

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

सशक्त युवा सशक्त राष्ट्रः चुनौतियाँ एवं संभावनायें

राम प्रसाद प्रजापति
शोध छात्र
स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मिर्जापुर, उ0प्र0।

सारांश :– ***जब किसी भी व्यक्ति के मूलगुणों को उभारकर उसके योग्यतानुसार उसे सशक्त करना ही दरअसल सशक्तीकरण है। इसमें कोई भी शक नहीं कि ग्रामीण युवा खासे मेहनती होते है उनमें प्रकृति के मुताबिक अपने आप को ढालने की क्षमता होती है और विषम परिस्थितियों को बेहतर तरीके से सामना कर पाते है। आवश्यक इस बात की है कि उनकी इन खासियतों का ज्यादा से ज्यादा सार्थक उपयोग किया जाय। तेजी से बदलती दुनियाँ में युवा सशक्तीकरण की आवश्यकता सर्वोपरी है। ग्रामीण युवाओं को सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार ने समय–समय पर कई योजनाएं बनायी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी युवा सशक्तीकरण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ग्रामीण युवाओं को सशक्त करना देश को सशक्त करने के समान है। गाँवों का तभी विकास सुनिश्चित होगा। जब ग्रामीण युवा आजीविका और बेहतर जिंदगी के लिए शहरों में न जाकर अपनी ही जन्मभूमि को कर्मभूमि समझकर उसके विकास के लिए कार्य करेगा।***

भारतीय युवा ही ब्राण्ड इण्डिया का ब्राण्ड एम्बेसडर है। भारतीय युवा संस्कृति और परम्परा का प्रतिनिधित्व करते है। ना केवल भारतीय पुरातन पहचान पर गर्व अपितु 21वीं शदी में हमारे देश की नई पहचान गढ़ने की अपेक्षा भी भारतीय युवा से की जा रही है। **–माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी**

प्रस्तावना :– अभी बीते साल जून की बात है, जब देश की सबसे बड़ी अदालत (जनसंख्या) में विभिन्न राज्यों ने जानकारी दी कि देशबन्दी के दौरान कितने–कितने प्रवासी वापस अपने गृहराज लौटे। बिहार के लिए ये संख्या करीब 28 लाख थी, वही उत्तर प्रदेश के मामले में करीब 25 लाख, मध्यप्रदेश के मामले में 14 लाख और राजस्थान के मामले में ये संख्या करीब 13.6 लाख थी। अन्य राज्यों जैसे झारखण्ड, ओडिसा और पश्चिम बंगाल के लिए ये संख्या भी ठीक–ठाक रही। अब दो तथ्यो पर गौर किजिए इसमें सबसे ज्यादा जनसंख्या गाँवों में निवास करने वालो की थी और दूसरी सबसे बड़ी बात इनमें ज्यादा युवा थे।

2011 की जनसंख्या के मुताबिक, कृषि श्रमशक्ति में 55 फीसदी हिस्सेदारी मजदूरो की है जिनके पास खुद की कोई जमीन नही, और वे दूसरो की जमीन पर काम करते है। बाकी 45 फीसदी के करीब ऐसे है जिनके पास अपनी जमीन है और वे खुद काम करते है। वर्ष 2019 में जारी कृषि जनगणना के मुताबिक 2015–16 में कुल 157.82 मिलियन हेक्टेयर जमीन पर खेती हो रही थी जबकि 2010–11 में 159. 59 मिलियन हेक्टेयर पर यानि 1.11 फीसदी की गिरावट रही है। कहा जाता है कि युवा किसी भी देश को बदल सकते है। जरूरत है युवाओं की काम करने की क्षमता को सवारने और तरासने की और नवीनीकरण की।

युवा से तात्पर्य :– संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 15 से 24 वर्ष तक की आयु के व्यक्ति को **'युवा'** कहते है जबकि भारत जनसंख्या के मामले में दूसरा स्थान रखने वाले देशों में, युवा आयु वर्ग को 15 से 29 वर्ष के रूप में रखा गया है। भारत आज विश्व का सबसे युवा देश है जिसकी औसत आयु 29 वर्ष है जो हमारी सबसे बड़ी शक्ति है। राष्ट्रमण्डल देशो से जुड़े वैश्विक स्तर के आकड़े बताते है कि विश्व के अधिकांश

देशो में युवावस्था का प्रारम्भ 15 वर्ष से ही माना गया है। युवावस्था की अधिकतम आयु 40 वर्ष मानते हुए दुनियाँ में मलेशिया आज सबसे आगे है।

भारत में जब 2003 में राष्ट्रीय युवा नीति का निर्माण हुआ था उस समय युवाओं के लिए 13 से 35 वर्ष के आयु समूह को युवा वर्ग के श्रेणी में रखा गया था। राष्ट्रीय युवा नीति के अन्तर्गत ही राष्ट्रीय स्तर पर युवाओं को दो समान समूहो में विभाजित करते हुए उनमें से 13 से 19 वर्ष के लिए किशोर आयु समूह तथा 20 से 35 वर्ष के आयु समूह को मध्यम युवा वर्ग में वर्गीकृत किया गया है।

युवा सशक्तीकरण :– युवा सशक्तीकरण एक लोकप्रिय शब्द है जो हर कोई अपनी सुविधा के अनुसार इस्तेमाल करता है। युवा सशक्तीकरण का मतलब है युवाओं को पढ़ाई और रोजगार के अवसर प्रदान करना ताकि वह खुशहाल जिंदगी व्यतीत कर सके और आने वाली पीढ़ी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर प्रदान करने में सक्षम हो तथा वे अपने अधिकारों और दायित्वों से भलिभांति परिचित हो।

ग्रामीण युवा सशक्तीकरण :– ग्रामीण परिवेश के सन्दर्भ में सशक्तीकरण का अर्थ ग्रामीण युवाओं का गाँवों में रहकर वहा के परिवेश को समझना उसे विकसित करना, कृषि स्थानीय कारीगरी को स्वावलंबी, सक्षम बनाना, ग्रामीण सशक्तीकरण है। जब युवा गाँवो में रहकर गाँवो की बेहतरी के लिए कदम उठायेंगे तो गाँवो की समृद्धि व खुशहाली निश्चित है।

क्यो आवश्यक है ग्रामीण युवा सशक्तीकरण :–

1. गरीबी दर कम करने में
2. गाँवो के विकास में सहायक हो
3. जागरूकता एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सकारात्मक प्रभाव
4. रोजगार के अवसर में वृद्धि
5. ग्रामीण युवा आत्म विश्वास एवं आत्मनिर्भर से परिपूर्ण हो

युवा सशक्तीकरण के सम्मुख चुनौतियाँ :–

भारतीय गांव एक सांस्कृतिक इकाई है। संस्कृति कला–मूल्य गाँवो की शक्ति है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर सुप्रसिद्ध पर्यटक– **'ट्रेविनियर'** ने कहा था कि–''भारत का प्रत्येक गाँव अपने आप में एक छोटा सा देश है''। भारतीय घटनाओं से ग्रामीण जीवन अप्रभावित रहता है इन्हीं विशेषताओं के परिणाम स्वरूप एक समय हमारे देश को सोने की चिड़ियाँ के नाम से जाना जाता था। हमारे ग्रामीण युवा जो एक समय पर खेती को उत्तम, व्यापार को मध्यम और नौकरी को निकृष्ट कहता था, वह आज शहरो की ओर अधिक रूचि गांवो में अपनी जमीन होने के बावजूद उन्हें शहरो की नौकरिया शिक्षा व स्वास्थ्य व्यवस्था अधिक आकर्षित कर रही है।

अन्य चुनौतियाँ :–

दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली :– भारत का आज भी शिक्षा प्रणाली परम्परागत व्यवस्था पर आधारित है जो केवल पठन–पाठन व नैतिक शिक्षा तक ही सीमित है जबकि उसमें नवीनीकरण एवं व्यवशायिक शिक्षा देने की जरूरत है।

अनुपयोगी शिक्षा :– शिक्षा का एक रूप सैद्धान्तिक है और दूसरी व्यवहारिक! सैद्धान्तिक ज्ञान हमें जीवन और प्रकृति को समझने में सहायता देती है जबकि शिक्षा का व्यवहारिक पक्ष आर्थिक जीवन में इसकी उपयोगिता को स्पष्ट करता है। शिक्षा में वर्तमान सामाजिक मूल्यों तथा परिवर्तनशील विशेषताओं का अभाव होने के कारण यह न तो उपयोगी प्रतीत होती है और न ही विद्यार्थी वर्ग इसमें कोई रूचि ही महसूस करता है। विश्वविद्यालयों में नकल की प्रवृत्ति अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी है, इसके लिए अनुशासनहीनता, धमकी और हिंसा को भी एक साधन के रूप में प्रयुक्त करना बुरा नहीं समझा जाता है।

शिक्षा का व्यापारिक स्वरूप :– शिक्षा को आज के सन्दर्भ में देखा जाय तो व्यक्तिगत व्यापार की तरह एक सरकारी व्यापार बन चुकी है। सरकार स्वयं जानती है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा तभी उपयोगी बन सकती है जब केवल योग्य छात्रों को ही इसमें प्रवेश दिया जाये इसके बावजूद सभी को प्रवेश की सुविधा इसलिए दे दी जाती है जिसमें सरकार पर शिक्षा संस्थाओं को दी जाने वाली आर्थिक सहायता का कम से कम भार पड़े।

राष्ट्रीय नीति का अभाव :– शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण देश के लिए कोई समान नीति न होने से भी विद्यार्थियों के असन्तोष में वृद्धि हुई है कही शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है तो कहीं हिन्दी, किसी विश्वविद्यालय में आन्तरिक अंक निर्धारण का प्रचलन है तो कही सम्पूर्ण मूल्यांकन दूसरे विश्वविद्यालयों द्वारा होता है।

पारिवारिक कारण– किशोर एवं युवा वर्ग पर नियंत्रण रखने तथा उसका समाजीकरण करने में परिवार की भूमिका सदैव ही अत्यधिक रही है। वर्तमान परिस्थितियों में हमारी परिवार व्यवस्था संक्रमण के एक ऐसे स्तर से गुजर रही है। जिसमें बच्चों के प्रति परिवार की आकांक्षा बहुत अधिक है, लेकिन समाजीकरण की प्रक्रिया में स्वयं परिवार का योगदान सबसे कम है। इस परिवर्तन ने युवा वर्ग में ऐसे अनेक तनावों को जन्म दिया है। जिसके कारण वह कहीं भी अवसर मिलने पर असन्तोष को अभिव्यक्ति करने लगता है। जिनमें पारिवारिक नियंत्रण का ह्रास, तथा परिवार की उदासिनता का प्रमुख स्थान है।

आर्थिक कारक– आज एक ओर मध्यम वर्गीय परिवारों की संख्या सबसे अधिक है। दिन–प्रतिदिन बढ़ती हुई आवश्यकताओं तथा आर्थिक समस्याओं के कारण इन परिवारों में न तो पिता के पास अपने बच्चों की प्रगति को देखने का समय है और न ही वे बच्चों के समाजीकरण और शिक्षा पर ध्यान देना अपना उत्तरदायित्व समझते हैं, यानि आर्थिक समस्याओं के कारण वे अपने बच्चों के प्रति उदासीन रहते हैं। साथ ही उनके भविष्य को लेकर अनजान बने होते हैं।

राजनीतिक कारण– भारत में युवा पीढ़ी और विशेषकर छात्रों ने स्वतंत्रता के पहले भी राजनीति में सक्रिय हिस्सा लिया था, और आज भी ले रहे हैं। सच है कि स्वतंतत्रा के पूर्व उनकी राजनीतिक सहभागिता ब्रिटिश प्रशासन को समाप्त करने एवं भारत को स्वतंत्र बनाने के लिए थी। आज के युवकों की राजनीतिक सहभागिता का उद्देश्य तात्कालिक समस्याओं को दूर करना होता है। समस्या का स्थाई समाधान खोजना नहीं उदाहरण के लिए विद्यार्थी अपने असंतोष के फलस्वरूप पुलिस से मुठभेड़ करेंगे लेकिन प्रशासनिक सुधार लाने अथवा पुलिस की कार्यप्रणाली को बदलवाने के लिए बाद में कोई प्रयास नहीं करेंगे। शिक्षा व्यवस्था के दोषों का शिकार बनकर कुलपति के कार्यालय में तोड़–फोड़ कर सकते हैं लेकिन ऐसे दीर्घकालिक प्रयास नहीं करेंगे जिससे शिक्षा को उपयोगिता दी जा सके।

एडवर्ड शिल्ज– ने कहा कि भारतीय संस्कृति के परम्परागत मूल्यों ने जो व्यवहार सम्बन्धी आचरण किये हैं, उन्होंने वर्तमान एक प्रकार की यौनिक रिक्तता को विकसित किया है। यह स्थिति ने जिन यौनिक तनावों को जन्म दिया है। वही युवा असन्तोष का मुख्य कारण भी है। **मेटा स्पेन्सर** ने कहा कि भारत में छात्र अथवा युवा चुनौतियों का मुख्य कारण उनके भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना तथा सही मार्ग–निर्देशन का अभाव है। शिक्षा के प्रति व्यवसायिक दृष्टिकोण, शिक्षकों व विद्यार्थियों के बीच सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दूरी तथा विद्यार्थी नेताओं को राजनीतिक दलों का समर्थन उनके असन्तोष एवं आन्दोलनकारी प्रवृत्ति आदि। **मर्टन** ने भी युवा असन्तोष का कारण स्पष्ट किया है, कि प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक आदर्श–नियमों के अनुरूप कुछ ऐसे व्यवहारों को महत्व दिया जाता है, जिनके द्वारा सामाजिक–सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

संभावनाएं :– भारत सरकार ने युवाओं को सशक्त करने की आवश्यकताओं को स्वीकारा है और समय–समय पर विभिन्न नीतियों और योजनाओं का क्रियान्वयन भी किया गया है।

शिक्षा तथा रोजगार में समन्वय :– युवाओं को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा को व्यवहारिक बनाना आवश्यक है। इसके लिए सरकार का यह दायित्व है कि एक ऐसे विभाग की स्थापना की जाय जो प्रतिवर्ष देश में विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित रोजगार के अवसरो की सम्भावना को ज्ञात करके उसी के अनुसार शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति का निर्माण किया जाय। इस नीति से व्यवशायिक शिक्षा पाने वाले छात्रों/युवाओं में फैली बेरोजगारी में तत्काल कमी की जा सकती है। आवश्यक यह है, शिक्षा नौकरी–प्रधान न होकर जीवन के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रदान करने वाली होनी चाहिये।

युवा नेतृत्व को सही दिशा :– युवा पीढ़ी में लगन, उत्साह, परिश्रम और निष्ठा की कमी नहीं होती, आवश्यकता केवल उन्हें सही दिशा देने की है। सही दिशा के अभाव में ही वे अपनी शक्ति और उत्साह को सही मार्ग नहीं दे पाते है यदि प्रत्येक शिक्षा संस्था में पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, शैक्षणिक, प्रदर्शिनियों, सांस्कृतिक कार्यक्रमो, समाज सेवा शिविरो, उच्चशिक्षा के विद्यार्थियों द्वारा नीची कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अध्ययन तथा परिचर्चा कार्यक्रमो को आयोजित किया जाय तो युवा–पीढ़ी की शक्ति और उत्साह का अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता :– नैतिक शिक्षा का तात्पर्य किसी धार्मिक शिक्षा या परम्परागत नैतिक शिक्षा से नही है बल्कि शिक्षा का वह रूप है जिसके द्वारा विद्यार्थी राह समझ सके की अतीत कि किन परिस्थितियों में व्यवहार के किन ढंगों को स्वीकार किया गया, वर्तमान युग की आवश्यकताएं क्या है, इन आवश्यकताओं के अन्तर्गत व्यवहार के कौन सा नियम उपयोगी है। हमारी सामाजिक संरचना को देखते हुए कौन से परिवर्तन उचित है और कौन से अनुचित। विभिन्न वर्गों की समस्याएं क्या है? राष्ट्रीय चरित्र क्या है? ऐसी शिक्षा निश्चय ही विद्यार्थियों को नया दृष्टिकोण प्रदान करेगा।

युवाओं को सशक्त बनाने में कई सरकारी नीतिगत योजनाएं :–

राष्ट्रीय युवा नीति (2014)– युवा आबादी को ध्यान में रखते हुए देश के विकास तथा उत्थान के लिए राष्ट्रीय युवा नीति लाई गयी। जिनमें पाँच प्रमुख उद्देश्य व अन्य प्राथमिक क्षेत्रों की पहचान की गयी है।

पाँच प्रमुख उद्देश्य –

1. एक समय कार्यबल का गठन करना जो देश की अर्थव्यवस्था में बेहतर योगदान दे।
2. एक ऐसी पीढ़ी को तैयार करना जो सशक्त हो, स्वस्थ हो और चुनौतियों को सामना कर सके।
3. सामाजिक मूल्यों और राष्ट्रीय जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करे।
4. नागरिक की सेवा लेना और उनकी भागीदारी को सरल बनाना।
5. जोखिम ग्रस्त युवाओं की मदद तथा लाभ से वंचित एवं सीमान्त युवाओं के लिए समतामूलक अवसर सुनिश्चित करना।

युवाओं को सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण प्राथमिक क्षेत्र–

1. शिक्षा
2. रोजगार और कौशल विकास
3. उद्यमिता
4. स्वास्थ्य और स्वस्थ जीवन शैली खेल
5. सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना
6. सामुदायिक सहभागिता
7. राजनीति एवं शासन में भागीदारी
8. युवा सहभागिता, समावेशन एवं सामाजिक न्याय

मेक इन इण्डिया 25 सितम्बर 2014 :–

इसका मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है–

1. निवेश को सुविधाजनक बनाना
2. नव प्रयोग को बढ़ावा देना
3. कौशल विकास में वृद्धि करना
4. बौद्धिक संपदा को सुरक्षा देना
5. सर्वोत्तम श्रेणी का मैन्युफैक्चरिंग इन्फ्रास्ट्रक्चर निर्मित करना

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (15 जुलाई 2015) :–

बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना को 'नेशनल स्किल डेवलोपमेन्ट' और 'एंटरप्रेन्योशिप पॉलिशी' के तहत शुरू किया गया था। इस योजना का उद्देश्य ऐसे युवाओं को रोजगार देना था जो कम पढ़े–लिखे थे या किसी कारण वश पढ़ाई बीच में छोड़नी पड़ी थी। इस योजना के तहत युवाओं को उद्योगो से जुड़ा प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए युवाओं से कोई फीस नहीं ली जाती बल्कि उन्हे पुरस्कार के रूप में 5 हजार से 10 हजार रूपये तक की धनराशि सरकार के द्वारा मिलती है। कौशल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि 3 माह, 6 माह व 1 वर्ष तक होती है। यह सर्टिफिकेट पूरे देश में मान्य होता है।

डिजिटल इण्डिया :– इसकी शुरूवात 1 जुलाई 2015 को हुई थी। इस कार्यक्रम की शुरूवात भारत को डिजिटल तौर पर सशक्त बनाने के लिए की गयी है इस अभियान के तहत, शिक्षा, अस्पताल, समेत सभी स्वास्थ्य सेवाओं और सरकारी दफ्तरो को इन्टरनेट के जरिये गांव को जोड़ने व डिजिटल साक्षरता को बेहतर बनाने पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

स्टार्टअप इण्डिया 2016 :– इसके अन्तर्गत छोटे, उद्योगों और व्यापारियों को बढ़ावा देने के लिए उन्हें आसान शर्तों पर ऋण देने की सुविधा प्रदान की जाती है। स्टार्टअप इण्डिया की शुरूवात व्यापार और रोजगार के अवसर बढ़ाने के मकसद से हुई ताकि छोटे शहरो व गांवो के युवाओं को इससे जोड़ा जाय।

राष्ट्रीय युवा सशक्तीकरण :– राष्ट्रीय युवा सशक्तीकरण कार्यक्रम युवा मामलों एवं खेल मंत्रालयों द्वारा संचालित केन्द्रीय योजना है। यह योजना 12वीं पंचवर्षीय (1 अप्रैल 2012 से 31 मार्च 2017) योजना के समय से युवाओं को सशक्त बनाने के लिए शुरू किया गया था। इस योजना के लाभार्थियों में 15 से 29 आयु समूह के युवाओं को सम्मिलित किया जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)– तेजी से बदलते समय के अनुसार भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति की शुरूआत की है जिसमें स्किल बढ़ाने के साथ ही उच्च शिक्षण संस्थानों में शोध पर भी जोर देने की बात की गयी है।

इसके निम्न बिन्दु इस प्रकार हैं–

- ग्रामीण युवा अपने गावों में रहकर ही शिक्षा प्राप्त कर सकें, इसके लिए **ओडीएल** द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थानों का ऑनलाइन कोर्स विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।
- स्कूली बच्चों को स्थानीय व्यवसायिक विशेषताओं जैसे– माली, कलाकार, बढ़ई, कुम्हार, इत्यादि को जानने व समझने के मौके मिलेंगे। छुट्टियों के दौरान व्यवसायिक विषय समझने के आनलाइन अवसर प्रदान किया जायेगा।
- छोटी उम्र से ही युवाओं को सशक्त करने के इरादे से उन्हें अपने गांव/तहसील/जिला/राज्य में उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों का दौरा करवाने का प्रबन्ध किया जायेगा साथ ही स्थानीय कलाकारों

और शिल्पकलाकारों से मिलने के पर्याप्त मौके, और सांस्कृतिक तथा पर्यटक महत्व के स्थानों के दौरों के अवसर भी दिये जायेंगे।

- अनुसन्धान को बढ़ावा देने के लिए **नेशनल रिसर्च फाउंडेशन** की स्थापना की जायेगी।

युवा सशक्तीकरण के लिए बुनियादी जरूरतें –

स्कूली शिक्षा :– यदि युवाओं को अच्छी शिक्षा के मौके अपने गांवो में रहते हुए मिलेंगे तो शहर उन्हे कम आकर्षित करेंगे।

कॉलेज शिक्षा :– युवाओं को इस सोच से बाहर निकलना होगा कि उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए शहरों में जाने के अतिरिक्त कोई और रास्ता नही है। इसलिए आवश्यकता है कि मान्यता प्राप्त संस्थान ज्यादा से ज्यादा आनलाइन कोर्सेज चलायें। जिनकी मदद से ग्रामीण युवा गांवो में रहकर अपनी पसन्दीदा विषय पढ़ सके।

इंटरनेट की सुविधा :– गांवो में रहते हुए शिक्षा प्राप्त करने, विभिन्न प्रकार की जानकारी को पाने और नेट बैंकिग जैसी सुविधा का लाभ उठाने के लिए जरूरी है बढ़िया इन्टरनेट कनेक्टिविटी गांव–गांव तक पहुँचे।

रोजगार :– रोजगार वह सबसे बड़ा कारण है जिसकी वजह से युवा शहरो की ओर रूख कर रहे है। यदि गाँवों में रहकर उन्हे उनकी क्षमतानुसार रोजगार के अवसर मिलेंगे तो निःसन्देह युवा गांवो में रहना ही बेहतर समझेंगे। जरूरी है परम्परागत व्यवशाय को आगे बढ़ाने के लिए बैंको से ऋण की सुविधा मिले।

जागरूकता :– जरूरी है ग्रामीण युवाओं को अवगत करवाना की शहरो में बढ़ती भीड़ में वे सशक्त नहीं होंगे। अपने ही गांव में रहकर अपनी जुड़ो से जुड़कर, अपने परिवेश को समझकर उसकी बेहतरी के लिए कार्य कर ही सशक्तीकरण सम्भव है। ग्रामीण युवा को यह जानने की जरूरत है कि अपने गांवो के बड़े घरो को छोड़कर, शुद्ध वायु और भोजन के अभाव में जो तरक्की मिलेगी वह केवल दिखावा है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय युवा दिवस 12 जनवरी 2021 पर कहा कि ''हमारा युवा अपनी प्रतिभा और अपने सपनो के अनुसार खुद को विकसित कर सके, इसके लिए एक वातावरण तैयार किया जा रहा है शिक्षा और सामाजिक व्यवस्था तथा कानूनी बारिकियाँ सबको केन्द्र में रखकर योजनाएं बनाई जा रही है।''

निष्कर्ष :–

युवा सशक्तीकरण से सम्बन्धित सरकार द्वारा चलाई गई जो भी योजनाएं हैं, चाहे वह स्किल इण्डिया मिशन, डिजिटल इण्डिया मिशन, मेक इन इण्डिया, स्टार्टअप इण्डिया, जवाहर रोजगार योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वराज योजना, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना। ये सभी योजनाएं एक कल्पना मात्र हैं। जब तक इन्हें मूर्त रूप नहीं दिया जाता है, जब तक ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास और व्यवसायिक शिक्षा के स्तर को उपर उठाया नहीं जाता। साथ ही अपनी जन्मभूमि को कर्मभूमि बनाकर उसके विकास के लिए कार्य करें। जब व्यवहार में सरलता, शुद्ध वातावरण और खानपान, भारतीय संस्कृति में श्रद्धा, आपसी प्यार, कृषि, मवेशी पालन, संसाधनों का सामुदायिक स्वावलंबन और परम्परागत कारीगरी **वोकल फॉर लोकल** तथा **लोकल से ग्लोबल**, तब युवा को गर्व होगा और निःसंदेह देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

- डा0 के0 पी0 कृष्णन, डा0 दिव्या नाम्बियार, 2017, स्किल इण्डिया चुनौतियाँ, उपलब्धिया भावी संभावनाएं, 655 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली– कुरूक्षेत्र।
- डा0 सिंह, डा0 रहीस 2021, वोकल फॉर लोकल तथा लोकल से ग्लोबल 779 सातवां तल, सूचना भवन, सीजोओ परिसर लोधो रोड नई दिल्ली– योजना
- प्रो0 तनय, कुरोड़े, डा0 मेधना भिलारे 2021, आत्म निर्भर भारत के लिए आर्थिक उपाय, 779 सातवां तल, सूचना भवन, सीजोओ परिसर लोधो रोड नई दिल्ली
- डा0 श्रद्धा 2021 सशक्त युवा सशक्त राष्ट्र, कुरूक्षेत्र, 655 सूचना भवन सी0 जी0 को कम्पलेक्स सोधी रोड नई दिल्ली, फरवरी
- जोशी, प्रमोद 2021 आत्म निर्भर भारत के लिए महिला सशक्तीकरण, फरवरी, कुरूक्षेत्र, 655 सूचना भवन, सी0 जी0 ओ कम्पलेक्स लोधी रोड नई दिल्ली।
- https//wwwmsdl.gov.in

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

Construction and Standardisation of Learning Engagement Scale

Dr.Surendra Pal
Professor
Department of Teacher Education
D.A.V. (P.G.) College, Muzaffarnagar (U.P.)
&
Vijay KumarTyagi
Researcher
Department of Teacher Education
D.A.V(P.G.) College, Muzaffarnagar (U.P.)

Abstract

In present era, academic achievement is centre point of discussion among the educators because it has become the criterion for selection in many fields of life. Several factors like heredity, personality, environment, intelligence, motivation and temperament are directly related and affect the academic achievement of the students. Apart from these factors, problem solving ability and learning engagement are the two major factors those are directly related and affect the academic achievement of the students. To see the relation\difference between achievement and learning engagement, the researcher felt the requirement of a learning engagement scale. In present paper, dimensions of learning engagement, construction of statements, item analysis, reliability, validity, evaluation and process of standardisation has been explained.

Key Words: Learning engagement, Item analysis, Reliability and Validity

Introduction: Engagement is a multidimensional concept. It does not mean not only to be active but also to be sensible **(Harper2009).** Student learning engagement means willingness, motivation and success of student in learning process **(Bomia1997).** Without engagement, there is no effective teaching, learning and real achievement **(Carpenter 2010).** It is best indicator of successful learning for children. There are several dimensions of engagement like emotional, behavioural and cognitive identified by the researchers **(Appleton, Christenson and Furlong,2008).**These dimensions of engagement indicates that a learner must be engaged through their mind, emotion and body for getting better academic achievement. To test the learning engagement of the CBSE & NIOS secondary students, the researcher has constructed a standardised Engagement scale.

Construction and standardisation of learning engagement scale:

This tool was constructed to know the learning engagement of the secondary students of various boards studying through regular and distance mode. Having kept his study content, the researcher selected the three dimensions of learning engagement like cognitive engagement, behavioural engagement and emotional engagement. Having read the related literatures like research thesis, dissertations, educational journals and surveys of M.B. Buch and finally

discussed with my supervisor and subject experts, 50 statements were constructed. All the statements were directly related to the selected dimensions of the learning engagement. Likert approach was followed to construct the scale. Following steps were followed to construct the test.

Planning of the test:

This is the first step to construct the test. In this step, the constructor decides the objectives, time limit, nature & number of items of the test.

The First Draft (Preliminary checking of learning engagement scale):

In this stage, by the help of the supervisor and subject experts, it was tried to know the flaws of the statements. Ambiguities of the statements, double meaningfulness of the statements and indefinites of the sentences were removed. After making the statements flawless, 50 statements were taken for statistical item analysis.

Item analysis:

Item analysis is the technique to find out the effectiveness of the statements of the scale. By the help of it, ineffective and worthless statements are discriminated. Initially, the first draft was administered on the representative sample of 500 secondary students studying through regular and distance mode under various boards in the age group of 14 to 16 years who were selected through random sampling technique. After that, each test booklet was separately checked and scored. Then, they were arranged in descending order from the highest score to the lowest score. Following the Kelly method, 27% top scorer and 27% low scorer students were selected and on the basis of that, two groups, one is of top scorer and second is of low scorer students were formed. Between these two groups for each item Mean and S.D were calculated and 't' test to know the difference between means was applied. Only those items were selected for final draft that were significant at .05 level of significance and rest were rejected. These statements include three dimention of engagement as stated:

1. Behavioural Egagement
2. Cognitive Engagement
3. Emotional engagement

Scoring Process:

Following scoring process was followed for the statements of this learning engagement scale.

Table -1 : Scoring Method

Response	Completely Agree	Agree	Neutral	Disagree	Completely Disagree
For Positive Statement	5	4	3	2	1
For Negative Statement	1	2	3	4	5

Table -2: Acceptance and Rejection of the Statements

Item No.	't' value	Result at 0.05 level of significance	Remark
1	6.68	Significant	Accepted

2	1.92	Insignificant	Rejected
3	4.96	Significant	Accepted
4	4.79	Significant	Accepted
5	7.57	Significant	Accepted
6	6.35	Significant	Accepted
7	5.20	Significant	Accepted
8	5.43	Significant	Accepted
9	5.16	Significant	Accepted
10	6.93	Significant	Accepted
11	1.97	Insignificant	Rejected
12	1.17	Insignificant	Rejected
13	1.92	Insignificant	Rejected
14	2.87	Significant	Accepted
15	0.487	Insignificant	Rejected
16	1.84	Insignificant	Rejected
17	1.37	Insignificant	Rejected
18	4.76	Significant	Accepted
19	3.88	Significant	Rejected
20	5.66	Significant	Accepted
21	0.642	Insignificant	Rejected
22	5.11	Significant	Accepted
23	1.61	Insignificant	Rejected
24	3.90	Insignificant	Rejected
25	4.90	Significant	Accepted
26	4.88	Significant	Accepted
27	5.66	Significant	Accepted
28	5.62	Significant	Accepted
29	5.03	Significant	Accepted
30	5.22	Significant	Accepted
31	0.935	Insignificant	Rejected
32	4.76	Significant	Accepted
33	4.69	Significant	Accepted
34	5.70	Significant	Accepted
35	1.86	Insignificant	Rejected
36	5.97	Significant	Accepted
37	5.09	Significant	Accepted
38	6.37	Significant	Accepted
39	5.03	Significant	Accepted
40	1.10	Insignificant	Rejected

41	**1.10**	Insignificant	Rejected
42	**5.37**	Significant	Accepted
43	**5.38**	Significant	Accepted
44	**1.44**	Insignificant	Rejected
45	**4.26**	Significant	Accepted
46	**5.08**	Significant	Accepted
47	**1.79**	Insignificant	Rejected
48	**3.19**	Significant	Accepted
49	**1.94**	Insignificant	Rejected
50	**4.81**	Significant	Accepted

Final draft:

Finally, out of 50 items 30 items that were significant on both .05 &.01 levels of significance with high 't' value were included in the final draft of the test. These thrirty items are selected in such a way that all the three dimentions of engagement has ten items each.

Establishing Reliability of Learning Engagement:

To know the reliability of learning engagement scale, Split-half method was applied. Reliability of scale was calculated through categorising the statements in two groups on the basis of odd and even. Reliability co-efficient of scale was calculated 0.78.

Table -3: Split Half Reliability

S.No.	Method	'r"	N	Significance Level
1	Split Half	0.78	100	.01

Validity:

Face validity technique was applied to know the validity of learning engagement scale. Subject experts found in their investigation that scale measures decided purpose of the scale.

Establishing Content Validity of Learning Engagement :

Learning engagement test contains the content validity & discriminating power because it was undergone the process of item analysis and only those items were selected which had significant values. On the other hand, Validity of test was tested by the way of correlating its scores on a parallel test. It was tested against the standardised tool 'Student Survey on Engagement'.

Table-4: Content Validity

S.No	Parralel Test	'r"	N	Significance Level
1	Student Survey On Engagement	0.62	100	.01

Norms:

Norms are scores from standardised tests given to representative samples of students. Norms provide a way for research scholar to know what scores is average in a given grade. For calculating norms the NPC was devided into five parts and the scores are calculated by using Z-score of each category. This is shown in table-5.

Table-5: Statistical Results

N	Mean	Standard Deviation
500	103.3	16.9

Table-6
Norms for interpretation of the level of learning engagement

S.No.	Scores Range	Levels of Learning Engagement
1	Below & equal to 72.88	Very Low Learning Engagement
2	72.88 - 93.16	Low Learning Engagement
3	93.16 - 113.44	Average Learning Engagement
4	113.44 - 133.72	High Learning Engagement
5	133.72 & above	Very High Learning Engagement

Conclusion:

Researcher has constructed this test for measuring the learning engagement of secondary students. This test will be helpful to measure the various dimensions of learning engagement like behavioural, emotional & cognitive. By the help of it, levels of learning engagement of the secondary students can be measured.

REFERENCES:

1. Lee, J.S.(2014).The relationship between student engagement and academic performance: Is it a myth or reality? *The journal of educational research*, 177-185.
2. Dogra, A.(2016). The association between students' learning engagement and their achievement in psychology, *International journal of multidisciplinary education and research.*
3. Gunuc, S. (2014). The relationship between student engagement and their academic achievement, *International journal on new trends in education and their implication.*
4. Axelson, R. & Flick, A. (2010) Defining student engagement, change: The magazine of higher learning.

5. Appleton, J.J., Christenson, S.L. & Furlong, M.J. (2008).Student engagement with school: critical conceptual & methodological issues of the construct, *Psychology in the schools.*
6. Deater-Deckard, K, Chang, M. & Evans, M.E. (2013) Engagement states & learning from educational games. New directions for child & adolescent development.
7. Klem, A.M. & Connell, J.P (2004).Relationship matter: linking teacher support to student engagement & achievement, *Journal of school health.*
8. Gupta, M., Pasrija, P. & Kavita (2015).Effect of problem solving ability on academic achievement of high-school students: A comparative study, *Bhartiyam International Journal of research education*, vol4,issue 2.
9. Newmann, Fred .M(1992).Student engagement and achievement in American secondary schools,Teachers college press, Teachers college, Columbia University, Newyork.
10. Tomeko Johnson-Smith (2014).Student engagement & academic achievement in technology enhanced traditional classroom environment, Liberty university, Lyncburg.
11. Gupta,S.P(2003).Statistical methods, Sharda Pustak Bhawan, Allahabad,U.P.
12. Bhatnagar,R.P(2006).Readings in methodology of research in education, Surya Publication, Meerut,U.P.
13. Singh,A.K(2014).Research methods in psychology sociology and education, Motilala and Banarsi Das Publication, Delhi.

****

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

यथार्थवाद और हिंदी साहित्य

डॉ० अर्चना धामा
ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
डी०ए०वी० कॉलेज, मुजफ्फरनगर।

शोध सारांश–

यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति है जिसके अनुसार कलाकार यथासंभव अपने व्यक्तित्व को तटस्थ रखते हुए जीवन के यथार्थरूप को अंकित करने का प्रयास करता है, यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है। एक में वास्तविकता का आग्रह अधिक रहता है और दूसरे में भावना का पक्ष प्रबल दिखाई देता है। यथार्थवाद वस्तुजगत को नग्न रूप में प्रस्तुत करने का पक्षपाती है, उसका वर्ण्य विषय है धरती, जो कुछ भी वह है। आदर्शवाद का वर्ण्य विषय भी धरती है, जो कुछ धरती को होना चाहिए। दोनों ही वास्तविक जीवन से सामग्री ग्रहण करते हैं, अंतर केवल इतना है कि यथार्थवाद में वास्तविकता का स्थान प्रधान होता है, भाव और कल्पना का गौण, जबकि आदर्शवाद में भाव और कल्पना अधिक महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी दोनों दृष्टिकोणों का विकास हुआ है। जहां आदर्शवादी आदर्श व्यक्तियों के आदर्श क्रिया कलापों एवं उच्च भावनाओं का चित्रण आदर्श शैली में करता है, वहां यथार्थवादी मानव जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण सहज स्वाभाविक माध्यम से प्रस्तुत करता है। साहित्य में दोनों का उचित समन्वय होना चाहिए, यह एक आदर्श है, यथार्थ यह है कि ऐसा संभव नहीं हो पाता है, साहित्यकार को निजी दृष्टिकोण और परिस्थितियों के प्रभाव में आकर किसी एक ओर झुक जाना पड़ता है, यद्यपि थोड़ी बहुत आदर्शवादिता और यथार्थवादिता प्रत्येक साहित्य में उपलब्ध होगी, परंतु उनमें प्रमुखता किसी एक की ही रहती है।

शब्द कुंजी :परवर्ती, मानवेतर, प्राकृत, सूक्ष्म, विषमता, समग्र।

यथार्थवाद का शाब्दिक अर्थ है – 'जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना। दर्शन, मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र, कला और साहित्य के क्षेत्र में यह वह विशेष दृष्टिकोण, जो सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को, काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक को, भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को, सुंदर के स्थान पर कुरुप को, आदर्श के स्थान पर यथार्थ को ग्रहण करता है – यथार्थवादी दृष्टिकोण कहलाता है। यथार्थवादी स्थूल, भौतिक एवं प्रत्यक्ष जगत् में ही जीवन की इतिश्री मानता है'। यथार्थवादी विषयवस्तु की स्थूल विशेषताओं में सौंदर्य के उपादानों की खोज करते हैं। आदर्शवादी चिन्तक सौन्दर्य को विषयगत न मानकर विषयीगत मानते हैं। आदर्शवादी आलोचकों ने सौंदर्य पर सामाजिकता, नैतिकता एवं उपयोगिता का अंकुश लगाया तो यथार्थ वादियो ने उसे वैयक्तिकता, उच्श्रृंखला एवं कलात्मकता के क्षेत्र में उन्मुक्तता प्रदान की।

यथार्थवादी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियां–

यथार्थवादी रचना में सामान्यतः निम्नांकित प्रवृतियां होती हैं –

(1) यथार्थवादी कलाकार – 'जीवन क्या है ?' का उत्तर देता है। 'वह क्या होना चाहिए ?' की समस्या में नहीं पड़ता।

(2) यथार्थवादी रचना में अतीत और भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण अधिक होता है।

(3) यथार्थवादी रचना में जीवन की असंगतिओं, कटुताओं एवं विषमताओं का चित्रण होता है।

(4) यथार्थवादी रचना में परिस्थितियों का मानव पर प्रभाव बताया जाता है, जबकि आदर्शवादी मानव परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

(5) यथार्थवादी केवल समस्या प्रस्तुत करता है, उसका समाधान आदर्शवादी करता है।

(6) यथार्थवादी में वैयक्तिकता अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में सामाजिकता।

(7) यथार्थवादी शैली में स्वाभाविकता, तीव्रता, व्यंगात्मकता अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में काल्पनिकता, शिथिलता और कोमलता का वेग होता है।

(8) यथार्थवादी साहित्य में रौद्र, वीभत्स एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में करुण, वीर और शांत की।

यथार्थवाद की त्रुटियां–

वास्तव में देखा जाए तो आदर्श उतना ही यथार्थ है जितनी कि कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति। जीवन में अयथार्थ की कल्पना दुष्कर है किंतु अपने पारिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं और कुरुपताओं का ही चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुंदर अंश को छोड़कर असुंदर अंश का अंकन करना चाहता है, यह एक प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है। जब कलाकार की दृष्टि पयोधर पर लगी जौंक की भांति (जो दुग्धपान न कर रक्त ही चूसती है) अथवा कठफोड़वा की भांति (जो वृक्ष के अनंतव्यापी वैभव–फल, फूल एवं रस से विरक्त हो, छाल में छिपे कीड़े–मकोड़ों को कुरेद–कुरेद कर खाने में ही दत्तचित्त रहता है) एकमात्र घिनौने, जघन्य एवं कुत्सित रूप को ही ढूंढ–ढूंढकर सारी कुरुपता और भयावहता के साथ चित्रित करने में ही लगी रहती है तो वह कला के वास्तविक रूप से च्युत हो जाता है।

यथार्थवाद का स्वस्थ पक्ष–

यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रुरताओं का नग्न चित्र होता है जो हमें घोर निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों ओर बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। कलाकार का यह कार्य नहीं है कि वह जीवन में आस्था न रहने दे अपितु उसे तो हमें जीने की कला सिखानी है कि जीया कैसे जाय ? इसमें संदेह नहीं कि यथार्थवाद हमारी आंखें खोल देता है – समाज में फैली कुप्रथाओं (जो चलते–चलते प्रगति के मार्ग में बाधा बन गई है) की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, इस प्रकार वह अपने पाठक के मन में उस आक्रोश को जन्म देना चाहता है जिसके बिना कोई भी सुधार अथवा क्रांति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

भारतीय साहित्य में यथार्थवाद–

प्राचीन भारतीय जीवन एवं साहित्य में आदर्शान्मुखता की ही प्रधानता रही है, किंतु वास्तविकता यह नहीं है। जहां रामायण युगीन समाज में हम आदर्श के लिए यथार्थ की बलि होती देखते हैं, वहां महाभारतीय जीवन में यथार्थ की पूर्ति के निमित्त आदर्शों का पतन दृष्टिगोचर होता है। समाज की मर्यादाएं क्या हैं ? आदर्श क्या हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर महाभारतीय नेताओं ने यथार्थवादी ढंग से दिया है। युधिष्ठिर ने एक स्थान पर स्वीकार किया है कि समाज की मर्यादाएं एवं नियम देश–काल सापेक्ष हैं, अतः उनमें आवश्यकता अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। महाभारत की अनेक घटनाओं में भी हम आदर्शवादीता के विरुद्ध कूटनीति में कपट–कौशल का प्रयोग देखते हैं। महाभारत–परवर्ती युग में भी इस यथार्थवादी दृ ष्टिकोण का पर्याप्त विकास हुआ था।

महाकवि कालिदास के दृष्टिकोण में हमें स्थान–स्थान पर यथार्थवादिता का परिचय मिलता है। 'मेघदूत' में वे एक और पत्नी–वियुक्त अपराधी के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। उन्होंने 'कुमार–संभव' में शिव–पार्वती के प्रथम समागम का वर्णन यथार्थनुमोदित शैली में किया, यद्यपि इसके लिए उन्हें लोकापवाद का भी कम सामना नहीं करना पड़ा। आगे चलकर शुद्रक ने 'मृच्छकटिक' (मिट्टी की गाड़ी) में एक वेश्या–पुत्री को नायिका का पद देकर तथा चोर–जुआरिओं के जीवन का चित्रण सहानुभूति से करके अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया। संस्कृत के अन्य नाटकों में भी यथार्थवादिता का आग्रह इतना अधिक है कि उन्होंने निम्न–वर्ग के पात्रों के संभाषण में प्राकृत भाषा तक का प्रयोग किया है।

साहित्य में संस्कृत के स्थान पर जब प्राकृत की प्रतिष्ठा हुई तो यथार्थवादी प्रवृत्ति का और भी अधिक विकास हुआ। हाल की 'गाथा–सप्तशती' विशुद्ध यथार्थवादी दृष्टिकोण से रचित है। इस ग्रंथ में देवताओं के स्थान पर जन–साधारण को, अलौकिक क्रियाकलापों के स्थान पर दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को, नैतिकता में झुकी हुई आकांक्षाओं के स्थान पर मानव–हृदय की सहज–स्वाभाविक वृत्तियों के चित्रण को प्रमुखता प्राप्त हुई है। प्रेम की विभिन्न परिस्थितियों का निरूपण 'गाथा–सप्तशती' में अत्यंत स्वभाविक शैली में हुआ है।

'अमरुक–शतक', 'श्रृंगार–शतक', 'गोवर्धन–सप्तशती', 'चोरपंचाशिका' आदि मुक्तक रचनाओं ने गाथा–सप्तशती को यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाया। यही परंपरा अपभ्रंश मुक्तककारों में होती हुई हिंदी के मुक्तक कवियों – देव, बिहारी, पद्माकर आदि तक पहुंची। प्राचीन भारत के नाटक एवं मुक्तक साहित्य में यथार्थवादिता को पर्याप्त प्रश्रय मिला है।

हिंदी काव्य में यथार्थवाद–

हिंदी काव्य के प्रारंभिक काल से ही उसमें यथार्थवादी दृष्टिकोण का स्फुरण मिलता है। अमीर खुसरो, विद्यापति, नरपति नाल्ह आदिकवि राज्याश्रित थे, जिनका उद्देश्य शिक्षा ने होकर मनोरंजन करना था, अतः उनमें यथार्थवादी दृष्टिकोण का मिलना स्वभाविक है। खुसरो की निम्नांकित पंक्तियों में यथार्थवादिता का ही रंग दृष्टिगोचर होता है –

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहूं देस।।
मोरा जोवना नवेलरा भयो है गुलाम।
कैसे गर दीनी बकस मोरी माल।।
सखी ! पिया को जो मैं ना देखूं,
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।

यहां सौंदर्य और यौवन की तरंगों का चित्रण उद्यम रूप में है, किसी प्रकार की आदर्शवादिता या नैतिकता का नियंत्रण इन पर दृष्टिगोचर नहीं होता।

प्रणय के उन्मुक्त कवि विद्यापति से तो किसी आदर्श की आशा करना ही व्यर्थ है। सौंदर्य की प्रथम झलक देखकर ही उनकी समस्त आदर्शवादिता मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है, और फिर जब हृदय में प्रेम का महोदधि उछलने लगता है तो समाज के सारे रीति–नियम उसमें डूब जाते हैं, उन्हीं के शब्दों में –

मनमधि मदन महोदधि उछलल
बूड़ल कुल मरजादे !!

प्रेम और धर्म में से किसे स्वीकार करना चाहिए – यह आदर्शवादी इसके उत्तर में कहेगा कि धर्म की रक्षा के लिए प्रणय का गला घोंट देना उचित है, किंतु यथार्थवादी कवि विद्यापति अपनी प्रणय विह्वल नायिकाओं को सलाह देते हुए प्रेम को 'नीलमणि हार' तथा धर्म को कांच या शीशे के सदृश बताते हैं –

कुलवति धरम कांच समतूल। मदन दलाल भेल अनुकूल।।

आनल बेचि नीलमनि हार। से तुह पंहिरबि करि अभिसार।।

आदर्शवादियों के प्रेम का अंत भी आदर्शमय होता है, या तो प्रेमी–प्रेमिका अनेक कठिनाइयों के अनंतर एक सूत्र में बंधने में सफल हो जाते हैं, या दोनों अपने स्वप्नों की पूर्ति के निमित्त प्राणों की बलि दे देते हैं; किंतु विद्यापति के प्रणय–लोक में यह कुछ नहीं होता। रस–लोलुप नायक–भ्रमर कुछ दिनों के रस–पान के अनंतर विमुख हो जाता है और अर्ध–विकसित कलिका सी नायिका के पास केवल वेदना, निराशा, ग्लानि और अमर्ष से परिपूर्ण कुछ दाहक–स्मृतियां शेष रह जाती हैं। वह सोचती हैं –

कुल–कामिनि छलो, कुलटा भए गेलौ तिन कर बचन लोभाई।
अपने कर हत मूंड मुड़ाएल कानु से प्रेम बढ़ाई।।

चोर रमनि जनि मन मन रोअई अम्बर छिपाई।

दीपक लो सलभ जनि धायल से फल भुजइत चाई।।

अपने विगत प्रेम पर किया गया यह पश्चाताप कवि के यथार्थवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

'बीसलदेव रासो' सामंतवादी व्यवस्था में जकड़ी हुई पराधीन नारी की यथार्थ गाथा है वह प्रेयसी या पत्नी न होकर अपने पति की दासी–मात्र है यही कारण है कि बीसलदेव की इस गर्वोक्ति का – मेरे समान और राजा कौन है ? मेरे यहां नमक की झील है ! – सीधा और स्पष्ट उत्तर देने–मात्र के अपराध में उसकी रानी को बारह वर्ष वियोग का दंड भुगतना पड़ता है। नारी–जीवन के प्रति कवि की सहानुभूति रानी राजमती के शब्दों में व्यक्त हुई है –

त्रिय जनम कोई दियो हो महेस। अवर जनम थारै घणां हो नरेस।।

मध्यकालीन भारत की नारी मनुष्य–जीवन की अपेक्षा वन की काली कोयल, जंगल की हरिणी या घर की गाय का जन्म प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर समझती है – पशु–पक्षियों का जीवन मानव के लिए स्पृहणीय बन गया है। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह तथ्य वास्तविकता पर आधारित है।

मध्यकालीन हिंदी कवि–

मध्यकालीन भक्त कवियों का दृष्टिकोण आदर्शवादी था, किंतु उन्होंने उसमें यथार्थ का भी कहीं–कहीं समन्वय किया है। विशेषतः सूरदास के काव्य में यथार्थ चित्रण सर्वाधिक मात्रा में हुआ है। उनके कृष्ण अवतार–पुरुष होते हुए भी साधारण बालक की भांति मां से चोटी बढ़ाने की बात पूछते हैं। गोपी–जीवन के विभिन्न दृश्यों में तत्कालीन ग्रामीण जीवन की झांकी मिलती है। इसी प्रकार गोपियों की विरहाग्नि की व्यंजना में भी सर्वथा यथार्थात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उद्धव ज्ञान की जिस गठरी को लेकर गोकुल पहुंचे थे, वह आदर्शवादिता का ही दूसरा रूप था; उसे ठुकरा कर मानों सूर ने आदर्शवादिता को ठुकरा दिया हो। गोपियां यह नहीं कहती कि उद्धव के ज्ञान का आदर्श मिथ्या है, अपितु उनका निवेदन तो यह है कि वह उनके वश की बात नहीं है –

मधुकर, मन नांही दस बीस।

एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस।।

गोपियों की इस विवशता में सूर का यथार्थवाद मुखरित है।

आगे चलकर रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों में तो यथार्थवाद अपनी चरम सीमा तक पहुंचा हुआ है। वे सामाजिक आदर्शों के विरोध परकीया की गुप्त क्रीड़ाओं का चित्रण रुचिपूर्वक करते हैं, अभिसारिकाओं की छद्म–लीला के वर्णन में वे नीति और नियम को भुला बैठते हैं, और इतना ही नहीं, वे सिद्धांत रूप में भी स्वीकार कर लेते हैं –

कौन गनै, पुर वन नगर, कामिनि एकै रीत !
देखत हरै विवेक ली, चित्त हरै करि प्रीति !!

इन श्रृंगारी कवियों में यथार्थवादिता का आग्रह सबसे अधिक बिहारी में मिलता है। वे श्रृंगारिकता को ही जीवन का चरम लक्ष्य घोषित कर देते हैं – 'तंत्री नाद, कवित्त, रस, सरस राग, रति रंग'।

प्रेम के क्षेत्र में नीति–नियम और मर्यादाओं का उल्लंघन हो जाता है, इस कटु यथार्थ को भी निःसंकोच रूप से स्वीकार कर लेते हैं –

क्यौ बसियै, क्यौं निबहियै, नीति–नेह–पुर नांहि।

सौंदर्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर भी बिहारी ने यथार्थवादी ढंग से दिया है –

समै–समै सुन्दर सबै, रूप कुरुपु न कोइ।।
मन की रुचि जेती जितै। तित तेती रुचि होइ।।

यह तो सिद्धांत की बात हुई। व्यवहारिक दृष्टि से भी बिहारी ने अपने युग के उन दृश्यों का अंकन किया है, जिन्हें एक आदर्शवादी सर्वथा उपेक्षित कर देता। वस्तुतः बिहारी को रीतिकाल का सबसे बड़ा यथार्थवादी कवि कहा जाता है।

आधुनिक युग–

भारतेंदु हरिश्चंद्र का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी था, अर्थात् उन्होंने यथार्थ का चित्रण तो किया है, किंतु उसमें रस लेते हुए नहीं, अपितु उसे व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। तत्कालीन भारत की दुर्दशा, विदेशी शासकों का शोषण, सरकारी कर्मचारियों के अनाचार, धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों आदि का नग्न चित्रण, भारतेंदु और उनके सहयोगी कवियों द्वारा भरपूर हुआ है। उदाहरण के लिए भारतेंदु की कुछ कह–मुकरनियां इस प्रकार हैं –

भीतर–भीतर सब रस चूसे। हंसि–हंसि के तन–मन–धन मूसै।
जहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि साजन, नहीं अंग्रेज।।
इनकी, उनकी खिदमत करो; रुपया देते देते मरो।
तब आवे मोहि करन खराब, क्यों सखि साजन, नहीं अंग्रेज खिताब।।

द्विवेदी युग और छायावादी युग में कवियों का दृष्टिकोण आदर्शात्मक ही रहा। यद्यपि दोनों की आदर्शवादिता में सूक्ष्म अंतर था। द्विवेदी युग की आदर्शवादिता धर्म और संस्कृति के स्थूल रूप को ग्रहण करके आगे बढ़ी थी, जबकि छायावादी कवियों ने आध्यात्मिकता और दर्शन के सूक्ष्म तत्त्वों को अपनाया, किंतु यथार्थवादिता का सर्वथा अभाव दोनों में ही नहीं। जहां गुप्त जी की, 'भारत–भारती' में यथार्थ का चित्रण हुआ है, वहां छायावादियों के असफल प्रणय की परिणति में तत्कालीन समाज की वास्तविकता निहित है। आगे चलकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में तो यथार्थवाद को ही लक्ष्य मानकर चला गया है, अतः उनमें इसका चित्रण अत्यधिक मात्रा में मिलना स्वभाविक है। प्रगतिवादियों ने जहां समाज की यथार्थ परिस्थितियों के अंकन का प्रयास किया है, वहां प्रयोगवादियो ने व्यक्ति की यथार्थ अनुभूतियों का।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः यह सकते हैं कि हिंदी–कविता का कोई भी युग ऐसा नहीं है जिसमें यथार्थ को स्थान न मिला हो। वस्तुतः हिंदी काव्य में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ का ही अधिक बोलबाला रहा है। हां इतना अवश्य है कि परिस्थिति–भेद से इस यथार्थ के रूप विभिन्न रहे हैं। जहां रीतिकाल में दांपत्य–जीवन एवं समाज की श्रृंगारिक प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण रुचिपूर्वक हुआ, वहां भारतेंदु युग में समाज की व्यापक परिस्थितियों का अंकन व्यंगात्मक दृष्टिकोण से हुआ है। प्रगतिवाद इस दृष्टि से भारतेंदु युग की यथार्थवादिता के निकट है, जबकि प्रयोगवादी रीतिकालीन वैयक्तिक श्रृंगारिकता से भी आगे बढ़े हुए हैं। अस्तु, यथार्थ यथार्थ ही है,

उससे आदर्श की आशा रखना व्यर्थ ही सिद्ध होगा, परंतु सुंदर तब होता है जब यथार्थ और आदर्श का समन्वय हो।

संदर्भ ग्रंथ–

(1) शर्मा, श्री निवास – 'हिंदी साहित्य का इतिहास', तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
(2) गुप्त, अशोक कुमार – 'साहित्यिक निबंध' पुस्तक प्रचार, गांधी नगर, दिल्ली।
(3) रत्नाकर, डा० मोहनलाल एवं वीरेंद्र कुमार अग्रवाल – 'हिंदी साहित्य का इतिहास', शारदा प्रकाशनए नई दिल्ली।
(4) गुलाबराय, बाबू – 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
(5) द्विवेदी, हजारी प्रसाद – 'हिंदी साहित्य – उद्‌भव और विकास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

सामाजिक सुधार में कानूनों की भूमिका : एक अध्ययन

शोध छात्रा
रुची कुमारी राय

सारसंक्षेप

भारत का संविधान सभी नागरिकों को समान सुरक्षा प्रदान करने के लिए वचनबद्ध है। निहितार्थ यह है कि न केवल कानून होने चाहिए अपितु हमें यह भी देखना कि उनका न्यायपूर्ण रूप से कार्यान्वयन एवं सुधार कैसे हो। न्याय और कल्याण के लिए उपेक्षित वर्गों की सुरक्षा के लिए विशिष्ट उपाय करना आवश्यक है और ऐसा ही एक उपाय है समाज कल्याण के उद्देश्य से विशिष्ट कानूनों को लागू करना जिन्हें हम सामूहिक रूप से सामाजिक कानून कहते हैं। विभिन्न तकनीकी आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक तथ्यों के परिणामस्वरूप हमारे समाज में विभिन्न रूपों में वैयक्तिक और सामाजिक अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अव्यवस्थाओं के परिणामों का मुकाबला करने के लिए इन व्यक्तियों समूहों और संस्थाओं को विशिष्ट विचारधाराओं कार्यक्रमों और सहायताओं की आवश्यकता होती है सामाजिक सुधार में कानून एक ऐसा ही दृष्टिकोण है। उपेक्षित अभावग्रस्त और पीड़ित बच्चों की देखभाल सुरक्षा और उपचार के लिए परीक्षण भिक्षा पर नियंत्रण और उन्मूलन के लिए वेश्याओं की कल्याण सेवाओं के लिए वयस्क अपराधियों के लिए उपेक्षित और अकिंचन वर्गों के लिए तथा ऐसे ही अन्य वर्गों के लिए विशिष्ट कानून बनाए गए हैं। अवैध व्यापार बाल अपराध जैसी सामाजिक समस्याएँ हमारी व्यवस्था की ही उपज है और सामाजिक सुधार ही सामाजिक दुष्क्रिया की इन समस्याओं को गहराई से देखता है।

प्रस्तावना

सामाजिक सुधार द्वारा कानून को प्रभावशाली साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में समाज कार्यकर्ता न्याय प्रदान करने विशेषतः कमज़ोर वर्गों को न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। समाज कार्य कानून के साथ मिलकर बाल अपराधियों के पुनर्वास में व्यावसायिक कार्यान्वयन में तथा कानून की सहायता के ज़रूरतमंदों में वेश्याओं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति निर्धनों की सहायता कर सकता है। वास्तव में सामाजिक सुधार सामाजिक कानून के क्षेत्र में अपने लिए एक सार्थक और रचनात्मक भूमिका हैं।

सामाजिक कानून की संकल्पना समाज में रहने वाले व्यक्तियों और समूहों के व्यवहारों का नियंत्रण करने मार्गदर्शन करने तथा प्रतिबंधित करने का एक साधन है। यदि व्यक्तियों और समूहों को एकदम स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तो वे दूसरों की कीमत पर अपने हितों की पूर्ति के लिए परस्पर संघर्ष करने लगेंगे। उस समय अव्यवस्था पैदा करते हुए वे समाज को क्षति पहुँचा सकते हैं। व्यक्तियों के कार्यों को वांछित दिशाओं में नियंत्रित और निर्देशित करने वाली अनेक संस्थाओं में से एक संस्था कानून है। अन्य हैं सामाजिक परम्पराएँ प्रथाएँ तथा धार्मिक संस्तुतियाँ आदि में कानून एक व्यापक विषय है जिसकी कई शाखाएँ हैं। व्यापक अर्थ में सभी कानूनों का स्वरूप सामाजिक है और सीमित अर्थ में केवल उन्हीं कानूनों को सामाजिक कानून की श्रेणी में रखा जाता है जिन्हें समाज कल्याण के लिए लागू किया जाता है। कानून अनेक प्रकार के होते हैं जैसे कराधान औद्योगिक दीवानी आपराधिक और व्यावसायिक आदि। सामाजिक कानून कानून की वह शाखा है जो कुल मिलाकर लोगों के विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पक्षों से संबंधित हैं। यह सामाजिक संस्था

है जो किसी सक्षम कानून एजेंसी के प्रयास से सामाजिक नियमों पर आधारित है। यह कानून समय की आवश्यकताओं राष्ट्र की परिस्थितियों और इसके सामाजिक राजनीतिक आदर्शों को ध्यान में रखकर लागू किए जाते हैं।

किसी कल्याणकारी राज्य में सामाजिक कानून की आवश्यकता और महत्व को कम नहीं आँका जा सकता। हमारा संविधान कल्याणकारी राज्य बनने की जनता की अभिलाषा प्रकट करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को बेहतर जीवन जीने और सुखी रहने का अधिकार मूल अधिकार हो। विस्तृत अर्थ में देश के प्रत्येक नागरिक को बुनियादी मानव अधिकार जैसे जीवन, रोज़गार कार्य, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकार पाने का अधिकार हो अब ये अधिकार केवल राज्य के सामाजिक कानून और कानूनी सहायता में समाज कार्यकर्ता की भूमिका के बीच अन्योन्याश्रित संबंध है।माधव मेनन कहते है कि कानूनी परामर्श, कानूनी साक्षरता कानूनी दस्तावेज बनाने और लोक अदालतों तथा झगड़े निपटाने के अन्य रूप को संपूर्ण क्षेत्र कानून और सरगुज कार्य संस्थाओं के सहयोगी प्रयासों पर निर्भर है। बेहतर कानूनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए इस घनिष्ठ संबंध के महत्व को मान्यता प्रदान करते हुए संसद ने कुछ चुनी हुई न्यायिक संस्थाओं में न्यायकर्ता (सामान्य जज) की भूमिका प्रदान की है। मुवक्किल द्वारा किसी कानूनी कार्रवाई का संपूर्ण लाभ उठाने के लिए न्याय के कार्य में ज्ञान संपन्नता एवं सहायक दलीय कार्य उसकी कुंजी है। प्रत्येक व्यक्ति को न्याय उपलब्ध कराने के लिए राज्य ने अदालत मानवाधिकार आयोग सतर्कता संस्थाएँ तथा व्यापक कानूनी सहायता योजना निर्धनों के लिए लागू की है। भारत में कानूनी सहायता का संबंध अदालती कार्रवाई में अधिवक्ताओं का प्रतिनिधित्व प्रदान करना भर नहीं है अपितु यह कानूनी शिक्षा के साथ लोगों को सशक्त बनाने का कानूनी कार्यवाही के लिए उन्हें गतिशील बनाने का तथा अपने विवाद निपटाने लिए मुफ्त कानूनी सहायता के साथ उन्हें समर्थ बनाने का एक आंदोलन है।

सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में कानून

समाज में जब हम सोचते हैं संतुलन प्राकृतिक स्थिति में है तो यह समय के साथ बदलता रहता है। जैसे–जैसे लोग बदलते हैं उनकी मानसिकता भी बदलती है समग्र रूप से समाज को बदलना पड़ता है। परिवर्तन जनसंख्या वृद्धि, तकनीकी विकास, मानव बस्ती में परिवर्तन और कई अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है। यदि कोई समाज उन हिस्सों के साथ विकसित नहीं होता है, जिनमें वह शामिल है, तो उसे कयामत का सामना करना पड़ेगा। ऐसा समाज विषाक्त है, यह लोगों को निराश करता है और अंत में समाज ही मर जाता है। कानून को अपने तर्क को ऐसे शब्दों में पेश करना चाहिए जो समझने योग्य हों और वर्तमान सिद्धांतों के अनुकूल हों। हम पुरापाषाण युग से नवपाषाण युग तक, फिर पाषाण युग और उसके बाद द्वापर युग आदि तक मनुष्य के उत्थान और विकास की कहानियाँ सुनते हैं। यदि हम इसे देखें तो हमारा समाज एक मंच है, जैसा कि शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध में कहा है। सारी दुनिया एक मंच है। हम समय और उम्र के साथ उदार हो जाते हैं, जैसे मनुष्य बुद्धिमान होता है। पात्र बदलते हैं, कुछ भी स्थिर नहीं रहता, हम पुराने को छोड़ देते हैं, और नया लाते हैं नतीजतन हम आगे बढ़ते हैं। कहते हैं आज कल नहीं है हम खुद बदलते हैं कोई परिवर्तन स्थायी नहीं है यह परिवर्तन के अधीन है यह गतिविधि के सभी हिस्सों में देखा जाता है। परिवर्तन वास्तव में दर्दनाक है फिर भी आवश्यक है। परिवर्तन के माध्यम से हमें ताज़ा करने और फिर से बनाने का मौका मिलता है। व्यक्ति हमेशा जीवन में स्थिरता के लिए प्रयास करता है फिर भी यह तथ्य कि समाज के लिए शांति घातक है बनी रहती है।

सामाजिक व्यवस्था और कानून का उद्देश्य

सामाजिक परिवर्तन वह तरीका है जिससे मानव व्यवहार और अंतःक्रिया में परिवर्तन द्वारा सामाजिक संस्थाओं को बदला जाता है। सामाजिक परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से आती है। जैसे–जैसे

नई पीढ़ियां एक–दूसरे के साथ अधिक से अधिक बातचीत करती हैं, दुनिया के प्रति हमारी धारणा बदलती है और इस तरह हमारे व्यवहार में भी बदलाव आता है। सामान्य प्रवृत्ति बताती है कि समय के साथ एक समाज को नई चीजों के प्रति अधिक स्वीकार्य और उदार बनना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपने आंतरिक स्व को अपनाने में सक्षम होना चाहिए। जैसा कि सभी मामलों में होता है अपवाद यहाँ भी मौजूद हैं। कुछ लोग खुद को सुरक्षित रखते हैं और इस विशेषता को अपने बच्चों और पोते–पोतियों को देते हैं। इस तरह समाज का एक हिस्सा अभी भी रूढ़िवादी रह सकता है लेकिन अधिकांश आबादी आगे बढ़ने की प्रवृत्ति रखती है।

सामाजिक परिवर्तन के कारण

चार सामान्य कारण, जैसा कि सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा मान्यता प्राप्त है, प्रौद्योगिकी, सामाजिक संस्थान, जनसंख्या और पर्यावरण हैं। उल्लिखित सभी चार क्षेत्र इस बात को प्रभावित कर सकते हैं कि समाज कैसे और कब बदलता है। और वे सभी आपस में जुड़े हुए हैंरू एक क्षेत्र में परिवर्तन से पूरे परिवर्तन हो सकते हैं।

तकनीकी– प्रौद्योगिकी विशिष्ट समस्याओं को हल करने वाले उपकरण बनाने के लिए वैज्ञानिक शक्ति का उपयोग है। तकनीकी परिवर्तन हमारी जीवन शैली को महत्वपूर्ण रूप से ढालते हैं, रेडियो, टेलीविजन, कंप्यूटर और ऑटोमोबाइल का आविष्कार कुछ ऐसे प्रमुख उदाहरण हैं जिन्होंने हमारी जीवन शैली में परिवर्तन लाया है। कंप्यूटर के आविष्कार के कारण, क्योंकि बिल गेट्स ने माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनी की स्थापना की, और क्योंकि यह कंपनी एमएस वर्ड की तरह कुछ लाई, हम यहां इस प्रोजेक्ट को डिजिटल रूप से बना रहे हैं, वे दिन गए जब हमने हस्तलिखित प्रोजेक्ट जमा किए प्रौद्योगिकी में प्रगति के परिणामस्वरूप समाज अधिक पारदर्शी हो गया है क्योंकि सर्वर पर सभी डेटा उपलब्ध है जिससे सिस्टम आसानी से सुलभ और पारदर्शी दोनों बन गया है।

आधुनिकीकरण– आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जहां अविकसित समाज के लोग बेहतर रोजगार, बेहतर जीवन शैली और बेहतर बुनियादी ढांचे जैसे अवसरों की तलाश में अपने स्वयं के कल्याण के लिए विकसित समाजों में चले जाते हैं। रहने की स्थिति में यह भारी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की ओर ले जाता है।

पर्यावरण– पर्यावरण में धीमे बदलाव का भी एक बड़ा सामाजिक प्रभाव हो सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, औद्योगीकरण के नकारात्मक प्रभावों में से एक वायु, जल और भूमि के प्रदूषण में वृद्धि है। प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन से समाज में भी परिवर्तन हो सकते हैं। जब कोई बड़ा तूफान, भूकंप, या कोई अन्य प्राकृतिक आपदा आती है तो हम इसका ज्वलंत प्रमाण देखते हैं।

सामाजिक संघर्ष– युद्ध, जातीय संघर्ष, स्पष्ट कारणों से सामाजिक आंदोलनों, यथास्थिति को भंग करने और सैनिकों की मृत्यु जैसे प्रकरणों ने न केवल उनके प्रियजनों को बल्कि पूरे समाज को भी उम्र के लिए नुकसान और दर्द दिया है और ऐसा कई और वर्षों तक करेंगे। आना।

कानून

कानून, नई सामाजिक परिस्थितियों और विचारों के लिए विधायी और प्रशासनिक प्रतिक्रियाओं के साथ–साथ संविधान, विधियों या उदाहरणों की न्यायिक पुनरू व्याख्या के माध्यम से, न केवल स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है बल्कि प्रमुख सामाजिक परिवर्तन के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करता है। कानून सामाजिक संस्थाओं को बदलकर समाज को बदलने में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाता है। वर्षों से, मुकदमेबाजी ने सामाजिक परिवर्तन को किसी भी चीज़ से अधिक प्रभावित किया है। गणतंत्र से साम्राज्य में रोम का परिवर्तन प्राप्त नहीं किया जा सकता था यदि स्पष्ट कानूनी घोषणा के तरीकों से नहीं, जो शाही संप्रभुता के सिद्धांत द्वारा

समर्थित था। कानून, सामाजिक सत्य की छाप होने से बहुत पीछे है, वास्तविकता को प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

भारत ने अपनी स्वतंत्रता के बाद, सामाजिक व्यवस्था को ठीक करने और कल्याणकारी राज्य बनने की तैयारी के लिए कानून बनाए। इसका उद्देश्य मुक्त और समान समाज को प्राप्त करना और शोषण करना था जहां जाति आपके अवसरों को परिभाषित नहीं करती थी, जहां सभी को समान स्तर पर रखा जाता था, जहां लोग घनिष्ठ समाज में रहते थे, जहां केवल आपकी क्षमताएं मायने रखती थीं, न कि उस परिवार के लिए जिसमें आप पैदा हुए थे। उद्देश्य, इसने सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कानून और विनियम बनाए। कानून मानव व्यवहार को नियमों के शासन के अधीन करने की गतिविधि है। कानून के शासन का संबंध शक्ति के उपयोग को विनियमित करने से है। जबकि समाज एक स्वतःस्फूर्त व्यवस्था है, राज्य खेल के नियमों को लागू करने की एकाधिकार भूमिका के साथ एक सुरक्षात्मक एजेंट है। चूंकि जबरदस्ती पर एकाधिकार सरकार का है, इसलिए यह जरूरी है कि इस शक्ति का दुरुपयोग न हो। एक स्वतंत्र समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक मान्यता प्राप्त निजी क्षेत्र होता है, एक संरक्षित क्षेत्र जिसका सरकारी अधिकार अतिक्रमण नहीं कर सकता है कानून का उद्देश्य स्वतंत्रता और नैतिक एजेंसी को संरक्षित करना है। भारत एक ऐसा देश है जो विविधता का प्रतिनिधित्व करता है।

भारत में न्यायालयों की संरचना और पदानुक्रम

जैसा कि भारत के संविधान द्वारा परिभाषित किया गया है भारत ने सरकार का एक संघीय रूप अपनाया है, जिसका अर्थ है कि कानून पारित करने की शक्ति केंद्र और राज्यों के बीच विभाजित है। फिर भी, संविधान संघीय और राज्य दोनों कानूनों के निष्पादन के लिए अदालतों से मिलकर एक एकीकृत न्यायिक संरचना बनाता है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय नई दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय का पालन करने वाले राज्यों में विविध उच्च न्यायालय हैं। उच्च न्यायालयों से पहले जिला और अधीनस्थ न्यायालय होते हैं, जिन्हें भारत में निचली अदालतों के रूप में जाना जाता है। न्यायालयों के कामकाज को पूरा करने के लिए श्रम, उपभोक्ता, सेवा मामले के विवादों जैसे क्षेत्र–विशिष्ट दावों का न्याय करने के लिए विशिष्ट न्यायाधिकरण हैं।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

28 जनवरी 1950 को भारत का सर्वोच्च न्यायालय अस्तित्व में आया। औपनिवेशिक काल में, इसने भारत के संघीय न्यायालय और प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति दोनों को बदल दिया, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय माना जाता था। एक मुख्य न्यायाधीश और 7 न्यायाधीशों के साथ एक सर्वोच्च न्यायालय की परिकल्पना भारत के संविधान द्वारा की गई थी क्योंकि यह 1995व में अस्तित्व में थी। आने वाले वर्षों में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने का अधिकार संसद को दिया गया है। वर्तमान में, सर्वोच्च न्यायालय की कुल संख्या34 न्यायाधीशों की है जिसमें मुख्य न्यायाधीश भी शामिल हैं

उच्च न्यायालय– भारत राज्य और केंद्र शासित प्रदेश के स्तर पर 24 उच्च न्यायालयों से बना है। प्रत्येक उच्च न्यायालय का एक राज्य एक केंद्र शासित प्रदेश या राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के संग्रह पर अधिकार क्षेत्र होता है।

जिला और अधीनस्थ न्यायालय

उच्च न्यायालयों के नीचे चलने वाले न्यायालयों को निचली अदालतें कहा जाता है। वे जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों से बने होते हैं। प्रत्येक राज्य को शजिला और सत्र न्यायाधीशश द्वारा शासित क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। जब वह किसी दीवानी मामले की अध्यक्षता करता है तो उसे

श्सत्र न्यायाधीशश के रूप में जाना जाता है, जब वह एक आपराधिक मामले की अध्यक्षता करता है, तो न्यायाधीश को श्जिला न्यायाधीशश के रूप में जाना जाता है। जब वह एक शहर में एक जिला अदालत की अध्यक्षता करती है जिसे राज्य सरकार द्वारा महानगरीय क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

भारत में कानून की जननी वह संविधान है, जो कानूनों, केस लॉ और कस्टम लॉ को अपनी व्यवस्था के अनुरूप उचित स्वीकृति देता है। कानून या नियम संसद, राज्य विधानमंडल और केंद्र शासित प्रदेश के विधानमंडलों द्वारा स्थापित किए जाते हैं। इसी तरह अधीनस्थ अधिनियम या नियमों, दिशानिर्देशों के रूप में जाना जाने वाला कानूनों का एक विशाल वर्गीकरण है, जैसे कि केंद्र और राज्य सरकारों और आसपास के प्राधिकरणों जैसे नगर निगमों, नगर पालिकाओं, ग्राम पंचायतों और अन्य पड़ोस निकायों द्वारा बनाए गए उप–कानून।

लैंगिक समानता और न्याय

महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण से संबंधित प्रतिमाओं की व्याख्या करते समय भारतीय न्यायपालिका द्वारा स्थिति, अवसरों और न्याय की समानता की अवधारणा को लागू किया गया है। उदाहरण के लिए, गायत्री देवी पंजारी बनाम उड़ीसा राज्य में, उड़ीसा उच्च न्यायालय ने उस संबंध में महिलाओं के लिए 3व प्रतिशत अवलोकन के अलावा मेरिट की दुकानों को आवंटित करते समय महिलाओं को प्राथमिकता देने की सरकार की नीति को बरकरार रखा। न्यायालय ने माना कि इसे किसी भी समूह के लिए एक सीमा के रूप में नहीं लिया जा सकता है और सरकार अभी भी पुरुषों के ऊपर महिलाओं को पसंद कर सकती है यदि महिलाओं के लिए आरक्षण है क्योंकि कोटा नीति का उद्देश्य न्यूनतम सुनिश्चित करना है जबकि वरीयता नीति का उद्देश्य लोगों के सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है। नुकसान के साथ। एक अन्य मामले में, अदालत ने 1961 के मातृत्व लाभ अधिनियम के लाभों को बढ़ा दिया। हमारी आबादी का लगभग आधा हिस्सा बनाने वाली महिलाओं को अपनी आजीविका कमाने के लिए जहां कहीं भी काम किया जाता है, उन्हें सम्मानित और सम्मान के साथ व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। उनके कार्यों की प्रकृति, उनका पेशा और जिस स्थिति में वे काम करते हैं, वे सभी सुविधाएं दी जानी चाहिए जिनके वे हकदार हैं।

समाज के पिछड़े वर्ग

सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ, 1993 सुप्रीम कोर्ट 477 में श्क्रीमी लेयर टेस्टश के सिद्धांत को विकसित किया है, ताकि वंचित वर्ग, जरूरतमंद लोगों और हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों के लिए सामाजिक न्याय के सकारात्मक प्रभाव को सुनिश्चित किया जा सके।

बंधुआ मजदूरन्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था का एक अच्छा उदाहरण बंधु मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ, एआईआर 1984 एस सी 8व2 है। सर्वोच्च न्यायालय ने बाल श्रम सहित बंधुआ मजदूरी की सामाजिक–आर्थिक बुराई को मिटाने का प्रयास किया और ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को समाप्त करने के लिए कुछ दिशानिर्देशों का पालन किया।

दहेज मृत्यु

दहेज हत्या शायद समाज में व्याप्त सबसे खराब सामाजिक विकारों में से एक है, जो इस सामाजिक बुराई को जड़ से खत्म करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया की मांग करता है। राजा लाल सिंह बनाम झारखंड राज्य में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि गायत्री की मृत्यु और उसे दहेज से संबंधित उत्पीड़न के बीच एक स्पष्ट संबंध है, इसलिए, भले ही गायत्री ने आत्महत्या कर ली हो, एस. 304 अभी भी आकर्षित हो सकते हैं।

विधान और सामाजिक परिवर्तन

विधान समाज में रहने वाले व्यक्तियों और समूहों के कार्यों को विनियमित करने, निर्देशित करने और सीमित करने का एक तंत्र है। दूसरों के नुकसान पर अपने स्वार्थ की खोज में, पूर्ण स्वतंत्रता में छोड़े गए व्यक्ति और समूह आपस में टकरा जाएंगे। वे समाज को गंभीर नुकसान पहुंचाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अराजकता होती है। विधान उन कई संगठनों में से एक है जो उपयुक्त चौनलों में व्यक्तिगत कार्रवाई की देखरेख और मार्गदर्शन करता है। अन्य में सामाजिक प्रथाएं, अनुष्ठान, धार्मिक कानून आदि शामिल हैं। कानून की कई शाखाएँ हैं और यह एक विशाल विषय है। सभी कानून व्यापक अर्थों में सामाजिक हैं, केवल वे कानून जो सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य से बनाए जाते हैं, संकीर्ण अर्थों में सामाजिक कानून के रूप में जाने जाते हैं। कई प्रकार के कानून हैं जैसे कराधान, कॉर्पोरेट, नागरिक, आपराधिक, वाणिज्यिक, आदि। कानून जिसकी उत्पत्ति कानून में है, उसे अधिक सही ढंग से अधिनियमित कानून कहा जा सकता है, अन्य सभी रूपों को असंबद्ध के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। कानून सामाजिक नियम का एक रूप है जो सरकारी संस्थानों से उत्पन्न होता है। जब उन्हें कानून बनाने वाली संस्था या प्राधिकरण द्वारा बनाया और लागू किया जाता है, तो कानून कानून बन जाते हैं। कानूनों, विशेषकर सामाजिक नीतियों ने सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामाजिक परिवर्तन में विधान की भूमिका के सावधानीपूर्वक विश्लेषण से दो बातों का खुलासा हो सकता है। राज्य और समाज कानूनी मानदंडों को कानूनों द्वारा वर्तमान सामाजिक मानदंडों के अनुरूप रखने का प्रयास करते हैं। सामाजिक मानदंडों को मजबूत करने के लिए आधुनिक कानूनी मानकों के आधार पर कानूनों का भी उपयोग किया जाता है। वर्तमान सामाजिक मानक को कानूनी स्वीकृति मिलने पर ही सामाजिक सुधार सामाजिक परिवर्तन का एक सफल माध्यम होगा। अपने आप में, कोई भी कानून एक मानदंड को दूसरे मानदंड से प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। यह शायद ही मानकों को बदल सकता है। वैश्विक सुधार शायद ही बिना सहायता प्राप्त सामाजिक कानून द्वारा लाया जा सकता है। लेकिन लोकप्रिय राय की मदद से, सामाजिक व्यवहार में बदलाव के कारण सामाजिक मानदंडों में बदलाव हो सकता है। इस बात को समझने के लिए भारत में बने सामाजिक कानून के कुछ उदाहरण हमारी मदद करेंगे।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता से पहले और बाद में, सामाजिक परिवर्तन लाने की दृष्टि से भारत में कई तरह के कानून बनाए गए। इनमें से कोई भी सफल हो सकता है, जबकि कुछ अन्य मृत पत्रों के रूप में रह जाते हैं। विधान समाज में रहने वाले व्यक्तियों और समूहों के कार्यों की निगरानी, निर्देशन और सीमित करने का एक साधन है। विधान समाज में रहने वाले व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियंत्रित करने, मार्गदर्शन करने और प्रतिबंधित करने का एक उपकरण है। दूसरों के नुकसान पर अपने स्वार्थ की खोज में, पूर्ण स्वतंत्रता में छोड़े गए व्यक्ति और समूह आपस में टकरा जाएंगे। वे समाज को गंभीर नुकसान पहुंचाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अराजकता होती है। विधान कई संगठनों में से एक है जो उपयुक्त चौनलों में व्यक्तिगत कार्रवाई की देखरेख और मार्गदर्शन करता है। अन्य में सामाजिक प्रथाएं, अनुष्ठान, धार्मिक कानून आदि शामिल हैं। कानून की कई शाखाएं हैं और यह एक विशाल विषय है। व्यापक दृष्टिकोण से, सभी कानून चरित्र में सामाजिक हैं, पतले दृष्टिकोण से केवल वे कानून जो सामाजिक कल्याण के अंतिम लक्ष्य के साथ स्थापित होते हैं, उन्हें सामाजिक कानून के रूप में मान्यता दी जाती है। कई प्रकार के कानून हैं, उदाहरण के लिए, कराधान, कॉर्पोरेट, सामान्य, आपराधिक, व्यवसाय आदि। सामाजिक कानून का वह हिस्सा है जो व्यक्तियों के विभिन्न सामाजिक आर्थिक मानकों का कुल योग है। यह एक सामाजिक आधार है जो एक सक्षम विधायी प्राधिकरण के आदेश पर बनाए गए सामाजिक मानकों को टाइप करता है। ये कानून समय

की आवश्यकताओं, देश की परिस्थितियों और इसके सामाजिक–राजनीतिक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अधिकृत हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Bhatt, P. Ishwar., Law & Social Transformation, Eastern Book Company, Lucknow 1st Edn 2008.
2. Aristotle, The Politics, TA Sinclair (Tr.) Penguin Book London 1962.
3. Hilaire Barentt, Introduction of feminist, Jurisprudence Cavendish Publishing, London, 1988.
4. Singh, Yogendra., Culture Change in India, Rawat Publications Jaipur
5. Verma, J. S., The new Universe of Human Rights, Universal New Delhi 2004.
6. Dewan, V.K., Law relating to offences Against women, 1996 & 97.
7. Patwardhan, M.V., Manusmriti: The Ideal Democratic Republic of Manu 79 (1st edn. 1968).
8. Uruse Matigin, Women" s Property Right in India, Kalpaz Publications Delhi 2010
9. Kumar Vijendra, Hindu Law of Adoption: Principles and Precedents, 2004, 417.
10. Carolyn Hamilton & Alison Perry, Family Law in Europe 260 (Butterworths, London, 2002).
11. Dewan, V.K., Law Relating of offences Against Women, 2nd Edn., Orient law House 2000, 33
12. Myneni, Dr. S.R, Women & Law, Asia law House, Hyderabad 2002.
13. S. Alladi Kuppuswani, The Constitution: What is means to the People (Gogia & Company Hyderabad 2000)
14. Gour, Harisingh, THE HINDU CODE, Vol. 1, Law Publishers, 1974. 304 13. J. Duncan M. Derret, THE DEATH OF MARRIAGE LAW, EPITAPH FOR THE RISHIS, Carolina Academic Press, 1978.

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में नेतृत्व के बदलते प्रतिमान – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, राँची जिले के सोनाहातु एवं तमाड़ प्रखण्ड के विशेष संदर्भ में।

छाया रानी
शोध छात्रा
यू0जी0सी0 नेट उत्तीर्ण
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश :–

***"स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में नयी लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था की स्थापना हुई और महिलाओं को भी पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकार मिले। मध्यकाल व ब्रिटिश काल में कुछ महिलाओं के उदाहरण मिलते है जो राजनीति में सक्रिय थी किन्तु ये सभी उदाहरण उच्च कुलीन राजवंश की महिलाओं से संबंधित है। सामान्य महिलाओं को कितना राजनीतिक अधिकार था इसका उल्लेख कही प्राप्त नहीं होता। झारखण्ड में भी उच्च वर्ग की महिलाओं की स्थिति निम्न वर्ग व जाति की महिलाओं से बेहतर रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में राँची जिले* की ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में नेतृत्त्व में बदलते प्रतिमान के आकलन पर केन्द्रित है।"

शब्द कुंजी – जनजाति, महिला, नेतृत्त्व, प्रतिमान

"भारत को ग्रामों का देश कहा जाता है, यहाँ की संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है। जिसका निर्माण करनेवाली 75 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। गाँव ही हमारी प्राचीन समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति के स्त्रोत एवं केन्द्र रहे है। कवियों एवं रचनाकारों ने ग्राम की प्रशंसा करते हुए कहा है – ग्राम 'स्वर्ग तुल्य' है। किन्तु वर्त्तमान समय में ग्राम का स्वरूप या रूपरेखा बदल गया है। इसका मुख्य कारण – औधोगीकरण एवं नगरीकरण है।"

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजी शासन के दौरान 19वीं सदी में ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कुछ अध्ययन करते हुए जिनका उद्देश्य ग्रामीण पुननिर्माण, सुधार या कल्याण नहीं अपितु राजनैतिक लाभ प्राप्त करना था, किन्तु इन अध्ययनों का एक लाभ यह अवश्य हुआ कि इनके द्वारा स्थापित प्रारूपों ने आगे होने वाले अध्ययनों का मार्गदर्शन किया और ग्रामीण अध्ययन की रूपेखा प्रस्तुत की। सन् 1861 ई0 में 'सर हेनरी मेन' की 'एन्सिएण्ट लॉ' (Ancient Law) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें भारतीय ग्रामो की सामाजिक आर्थिक समस्याओं एवं भूमि व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया।

सन् 1947 में, जब भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की तो नई सरकार ने ग्रामो की बिगड़ती दशा को सुधारने का निश्चय किया। जब तक ग्रामो में निवास करनेवाली 75% जनसंख्या के कल्याण की बात नहीं सोची जाती तब तक आजादी का उनके लिए कोई अर्थ नहीं था। गाँधीजी ने कहा था – "भारत तो गाँवो में बसता है।" अतः यदि हमें भारत को उन्नत करना है तो गाँवों की दशा सुधारनी होगी। उन्होंने (गाँधीजी) नारा दिया – "गाँवों को वापस चलो" (Go back to village)। इस सम्बन्ध में प्रो0 देसाई कहते है – "ग्रामीण सामाजिक संगठन, इसके ढ़ाचे कार्य व उद्विकास का व्यवस्थित अध्ययन केवल आवश्यक ही नहीं हो गया वरन् स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनिवार्य भी हो गया है।"[1]

नेतृत्त्व :–

नेतृत्त्व एक प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति सामाजिक प्रभाव के द्वारा अन्य लोगों की सहायता लेते हुए एक एक सामान्य लक्षित कार्य सिद्ध करता है।

एलन कीथ गेनेंटेक ने दी जिसके अधिक अनुयायी थे नेतृत्त्व वह है जो अंततः लोगों के लिए एक ऐसा मार्ग बनाना है जिसमें लोग अपना योगदान दे कर कुछ असाधारण कर सके।

ओसवाल्ड स्पैंगलगर ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड टेक्निक्स' (Man and Techniques) में लिखा है कि "इस युग में केवल दो प्रकार की तकनीक ही नही वरन् दो प्रकार के आदमी भी है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में कार्य करने तथा निर्देशन देने की प्रवृत्ति है उसी प्रकार कुछ व्यक्ति ऐसे है जिनकी प्रकृति आज्ञा मानने की है। यही मनुष्य जीवन का स्वाभाविक रूप है। यह रूप युग परिवर्त्तन के साथ कितना ही बदलता रहे किन्तु इसका अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक यह संसार रहेगा।"

शासन करना, निर्णय लेना, निर्देशन करना, आज्ञा देना आदि, सब एक कला है, एक कठिन तकनीक है। परन्तु अन्य कलाओं की तरह यह भी एक नैसर्गिक गुण है। प्रत्येक व्यक्ति में यह गुण या कला समान नही होती है।

लोकतांत्रिक दृष्टि से इसका अर्थ उस स्थिति से समझा जाता है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से दूसरे व्यक्तियों के आदेशों का पालन कर रहे हो। कभी–कभी यदि कोई व्यक्ति शक्ति के आधार पर दूसरों से मनचाहा व्यवहार कवा लेने की क्षमता रखते हो तो उसे भी नेतृत्त्व के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। वास्तविकता यह है कि नेतृत्त्व का तात्पर्य इनमें से किसी एक व्यवहार से नहीं है बल्कि नेतृत्त्व व्यवहार का वह ढंग होता है जिसमें एक व्यक्ति दूसरों के व्यवहार से प्रभावित न होकर अपने व्यवहारों से दूसरों को अधिक प्रभावित करता है। भले ही यह कार्य दबाव द्वारा किया गया हैं अथवा व्यक्तिगत सम्बन्धी गुणों को प्रदर्शित करके किया गया हो।[2]

जनजातीय नेतृत्त्व

चिताम्बर के अनुसार, "प्रत्येक समाज की शक्ति संरचना के अन्तर्गत कुछ व्यक्ति इतने शक्तिशाली तथा सूझ–बूझ वाले होते हैं, जो दूसरों को प्रोत्साहित, प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देकर उनकी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इसी क्रियाशीलता को नेतृत्त्व कहा जाता है, जबकि ऐसे व्यक्तियों को नेता, शक्तिधारक, शक्ति सम्पन्न मानव, शक्ति केन्द्र या शक्तिशाली क्षेष्ठजन कहा जाता है।"

नेतृत्त्व एक सामाजिक तथ्य के साथ–साथ सापेक्ष अवधारणा है। जिसमें व्यक्ति में नेतृत्त्व के गुण होते है, उसमें अनुसरण करने के भी गुण पाये जाते हैं। किन्तु जब अनुसरण करने की अपेक्षा व्यक्ति की नेतृत्त्व क्षमता अधिक विकसित हो जाती है तथा एक बड़ी संख्या में व्यक्तियों द्वारा इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तब वह व्यक्ति समूह मे नेता की प्रस्थिति प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक समुदाय में अधिकांश व्यक्ति उन थोड़े व्यक्तियों का अनुसरण करते है, जिनमें नेतृत्त्व की क्षमता निहित होती है। इसका कारण यह है कि समुदाय में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है, जिनमें किसी मसले पर स्वंय निर्णय लेने की अथवा परिस्थितियों का पूर्वानुमान करने की क्षमता हो।

व्यवाहारिक रूप में नेतृत्त्व व्यवहार का वह ढंग है जिसमें एक व्यक्ति दूसरों के व्यवहार से प्रभावित होने की अपेक्षा अपने व्यवहार से दबाव द्वारा वैचक्तिक गुणो के आधार पर दूसरे लोगो को अधिक प्रभावित करता है।

लेपियर तथा फार्न्सवर्थ के शब्दों में नेतृत्त्व वह व्यवहार है जो दूसरे लोगों के व्यवहारो को उससे कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार नेता को प्रभावित करते है।[6]

पिगर की दृष्टि में "नेतृत्त्व तथा पर्यावरण के सम्बन्धो को स्पष्ट करने वाली एक धारणा है। यह उस परिस्थिति का विश्लेषण करती है, जिसमें परिस्थिति विश्लेषण करती है जिसमें एक व्यक्ति ने एक विशेष पर्यावरण के अन्तर्गत इस प्रकार स्थान ग्रहण कर लिया हो कि उसकी इच्छा, भावना एवं अन्तर दृष्टि किसी सामान्य लक्ष्य को पाने के लिए दूसरे व्यक्तियों को अनुशासित करती है तथा उन पर नियंत्रण रखती है।"[7]

अर्थात् विशिष्ट पर्यावरण + व्यक्ति की स्थिति निर्देश = नेतृत्त्व। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति एक विशेष पर्यावरण में आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक इत्यादि जब एक विशेष प्रस्थिति प्राप्त कर लेता है, तो वह अपने गुणवत्ता या क्षमता के द्वारा दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करने लगता है जो नेतृत्त्व की स्थिति उत्पन्न करता है। नेतृत्त्व तथा प्रमुत्व में कुछ मौलिक विभेद है।[3]

जनजातीय नेतृत्त्व के परम्परागत आधार

झारखण्ड के जनजातीय नेतृत्त्व का परम्परागत स्वरूप विभिन्न जनजातियों में कुछ विभिन्नताओं के साथ लगभग एक समान है। परिवार की प्रतिष्ठा का जनजातीय समुदाय में एक विशेष महत्व है, जिसके आधार पर जनजातीय नेतृत्त्व में व्यक्ति को एक विशेष प्रस्थिति प्राप्त हैं। प्रतिष्ठित परिवार के व्यक्ति के नेतृत्त्व को गाँव के अन्य जनजातीय लोग बहुत ही सहजता से स्वीकार कर लेते हैं। आयु भी जनजातीय नेतृत्त्व का एक प्रमुख आधार रही है। परम्परागत जनजाततीय नेतृत्त्व मुख्य रूप से ऊँची आयु समूहों के हाथ में रही है। अधिक आयु के व्यक्ति अधिक अनुभवी एवं सम्मानित समझे जाते है। किसी भी निर्णय में उनके विचारों को जानना आवश्यक समझा जाता है। वयोवृद्ध व्यक्ति परम्पराओं के पहरूयें होते है। इसलिए उनके द्वारा प्रदत्त नेतृत्त्व अधिक उपयोगी, सार्थक तथा मान्य होते है। जनजातीय आर्थिक रूप से अभावग्रस्त जीवन रहा है। जो व्यक्ति जनसामान्य की आर्थिक आवश्यकताओंको पूरा करने तथा समय–समय पर उन्हें आर्थिक सहायता देने में सक्षम होता है, उस व्यक्ति का शीघ्र ही सामान्य ग्रामीणों द्वारा नेतृत्त्व स्वीकार कर लिया जाता है। यही कारण है कि भू–स्वामित्व तथ सम्पत्ति का परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। यदि कोई आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति को चुनौती देता तो उसे आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। शिक्षा के अभाव के कारण परम्पराओं से जुड़े तथा परम्पराओं की व्याख्या करने में सिद्धहस्त व्यक्तियों को परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व में स्वतः स्थान प्राप्त हो जाता है। इसके साथ ही जनजातीय नेतृत्त्व मे वैसे व्यक्तियों की भी अहमियत होती है, जिन्हे बाह्य दुनिया के सम्बन्ध में जानकारी होती है। साधारण या किसी व्यक्ति का परहा राजा, राजनैतिक नेता या अधिकारी के साथ कोई सम्बन्ध होता तो वह ग्रामीणों की सहायता कर व उन्हें नयी जानकारी देकर नेतृत्त्व ग्रहण कर लेता है।

इस प्रकार परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व के निर्धारण में कई प्रतिकारको का योगदान होता है, किन्तु किसी व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं का इस सन्दर्भ में विशेष महत्त्व होता है। ऐसा व्यक्ति जो सार्वजनिक जनजातीय जीवन में सक्रिय भूमिका निभाने की क्षमता रखता हो तथा किसी विवाद की सफल मध्यस्थता करने की योग्यता रखता हो, उसका स्थान जनजातीय नेतृत्त्व में बड़ी ही सुगमता से सुनिश्चित हो जाता है।[4]

झारखण्ड में जनजातीय नेतृत्त्व के उभरते प्रतिमान

स्वतंत्रता के पश्चात् झारखण्ड के परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। स्वतंत्र भारत के लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत धर्मनिरपेक्ष, समतावादी तथ गणतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए जनजातीय विकास को प्राथमिकता दी गयी। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत जनजातीय विकास के लिए न केवल अनेक विकास योजनाएँ आरंभ की गयी, बल्कि इन विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में जनजातीय सहभागिता को भी अनिवार्य समझा जाने लगा। इस नयी स्थिति ने परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व को एक नया आयाम दिया। जनजातीय नेतृत्त्व के नवोदित प्रतिमानों का स्वरूप परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व से सर्वथा भिन्न है।

स्वतंत्रता के बाद झारखण्ड के जनजातीय समाज में प्रजातांत्रिक नेतृत्त्व का विकास हुआ, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की आनुवांशिक स्थिति, भू–स्वामित्व तथा जनजातिगत सदस्यता का विशेष महत्त्व नहीं रहा। पंचायती व्यवस्था लागू किये जाने के पश्चात् जनजातीय नेतृत्त्व उन व्यक्तियों में केंद्रित हो गया, जिन्हें आम

चुनाव में बहुमत प्राप्त होने लगा। प्रजातांत्रिक नेतृत्त्व की शक्ति अथवा प्रतिष्ठा में कोई स्पष्ट तथा व्यापक विभेद नहीं होता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत नेता जनसमुदाय को अपने व्यवहारों से प्रभावित करने के साथ ही जनआकांक्षओं से भी प्रभावित होता है तथा नेता के प्रमुत्व की व्यख्या परम्परागत मान्यताओं के आधार पर नहीं की जाती, बल्कि जनमत एवं राजकीय नीतियों का इस क्रम में विशेष महत्व होता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था लागू किये जान के बाद परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व के अन्तर्गत लोकतांत्रिक मूल्यों से ओत–पोत एक ऐसा वयार आया, जिसने सम्पूर्ण जनजातीय शक्ति संरचना को झकझोर दिया।

जनजातीय जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र का विस्तार होने के फलस्वरूप जनजातीय गाँवों में शिक्षिक नेता की उपयोगिता पहले की तुलना में कही अधिक बढ़ गयी। नये नियमों के अन्तर्गत सरकार की ओर से भी जनजातीय क्षेत्रों में औपचारिक पदों पर शिक्षित व्यक्ति की ही नियुक्ति की जाने लगी। जनजातीय विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप जनजातीय नेतृत्त्व विविधता की स्थिति उत्पन्न हुई। जनजातीय जीवन के विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के नेताओं की आवश्यकता महसूस हुई। उदाहरणार्थ – ग्राम सभा का प्रधान, न्याय पंचात का सरपंच, सरकारी समिति का अध्यक्ष, विद्यालय का शिक्षक, कल्याण समितियों के पदाधिकारी इत्यादि। ऐसे नेताओं का उदय हुआ जिनके अन्तर्गत समग्र जनजातीय नेतृत्त्व विशिष्ट कार्यो से सस्बद्ध विशिष्ट लोगों को पृथक–पृथक रूप में नेता की मान्यता दी जाने लगी। इस परिवर्तन के दौर में ऊँची आयु समूहों के हाथ में केन्द्रित परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व चरमरा उठा। अब जनजातीय नेतृत्त्व धीरे–धीरे युवा वर्ग का पर्दापण होने लगा, क्योंकि जनजातीय विकास कार्यक्रमों में जनजातीय युवाओं की सहभागिता बढ़ने लगी तथा उनमें औपचारिक शिक्षा के प्रसार के कारण बदलती परिस्थितियों में नेतृत्त्व करने की क्षमता का विकास हुआ।

परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व में भू–स्वामियों तथा धनाढ़यों की अप्रत्यक्ष रूप से काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु नये प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत जनजातीय नेतृत्त्व के लिए जनसाधारण का भी प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाने लगा। विशेषकर मध्यम वर्ग के सदस्यों को नेतृत्त्व ग्रहण करने का अवसर मिला। जनजातीय नेतृत्त्व को आनुवांशिक तथा एकाधिकारवादी स्वरूप अब समाप्त हो चला तथा जनजातीय नेतृत्त्व में परिवर्तनशीलता के तत्व आ जुड़े, जिसके परिणामस्वरूप नेताओं को अपने अधिकारों की अपेक्षा जनजातीय समुदाय के प्रति अपने कर्तव्यों के लिए अधिक जागरूक रहने की नौबत आ पड़ी। चूँकि जनसमुदाय को अब कभी भी अपने नेता को बदल देने का अधिकार प्राप्त हो गया। परहा, हातु तथा टोला पंचायत स्तर पर जहाँ पहले अलग–अलग नेता होते थे, अब उनके स्थान पर एक सामूहिक नेतृत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अन्तर्गत विभाजन पर आधारित दृढ़त काफी हद तक दुर्बल पड़ने लगी।

जनजातीय शक्ति संरचना के अन्तर्गत विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रवेश के कारण जनजातीय नेतृत्त्व विभिन्न राजनैतिक दलो से सम्बद्ध हो गया तथा जनजातीय नेतृत्त्व का सामाजिक स्वरूप अब राजनीति से अभिरंजित हो उठा।

वर्त्तमान समय में जनजातीय गाँव अब विभिन्न राजनैतिक दलों के केन्द्र बन गये है। अब जनजातीय नेतृत्त्व का सामाजिक सुधार तथा सामूहिक हित से उतना लगाव नही रहा, जितना विभिन्न राजनैतिक दलों की गतिविधियों से। लोकतांत्रिक चुनाव पद्धति के अन्तर्गत नेतृत्त्व का निर्धारण अब किसी समूह की संख्या शक्ति के आधार पर होने लगा तथा परम्परागत जनजातीय नेतृत्त्व में बहुत ज्यादा महत्व नहीं रहा। नौकरी शाही का भी जनजातीय नेतृत्त्व पर काफी व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रखंड विकास पदाधिकारी, अंचलाधिकारी, चिकित्सा पदाधिकारी, कृषि पदाधिकारी, ग्राम सेवक इत्यादि अन्य सरकारी कार्यकत्ताओं का भी भी जनजातीय नेतृत्त्व में बदले स्वरूप को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।[5]

जनजातीय महिलाओं का नेतृत्त्व

जनजातियों न केवल भारत अपितु विश्व के अधिकांश भागो में निवास करती है। जिसमें दक्षिण अफ्रीका में सर्वाधिक जनजातियाँ पाई जाती हैं। भारतीय सभ्यता एवं अपने आप में अनूठी है। भारत के निवासियों की विभिन्न प्रजातियों का समिश्रण हुआ है। भारतीय जनसंख्या विविध धर्म, जाति, पंथ समुदायों एवं वर्गो के आधार पर सदियों से बंटे हुए है। इसके पश्चात् भी भारतीय एकता एवं अखण्डता इस वर्गीकृत संख्या में भी एकीकृत रूप से आज भी समाहित रही है। भारत में वर्गीकृत रूप में देश की आबादी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक रूप में ग्रामीण शहरी तथा औधोगिक समाज में देख सकते हैं।

ग्रामीण समाज का एक मांग वन प्रदेशों तथा पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करता है। जिन्हें उनकी भाषा, राजनीतिक संगठन, सामाजिक संगठन एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अनेक मानव–समुदाय को मानव के विकास क्रम से अलग करता है। आज इन्हीं समुदाय के लोगों को आदिम जाति, आदिवासी, वन्य जाति तथा अनुसूचित जनजाति से संबंधित करताहै। इनमें से प्रत्येक समुदाय का अपना नाम है जिसमें उन्हें आसानी से पहचान लिया जा सकता है। लेकिन इतिहास की विडम्बना ने इसे सम्पूर्ण समुदाय को आदिवासी या जनजाति के रूप में परिभाषित किया है। सदियों से यह वर्ग सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक, शोषित एवं उत्पीड़ित और उपेक्षित रहा है और आज भी है।

भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रिटानी सल्तनत के प्रवेश के दौरान यहां के लोगों ने अपने आप के इन समुदायों से अलग कर इन्हें 'ट्राइव' की संज्ञा दी गई। आज इन्हें हम आदिवासी या वनवासी कहते है। जिन्हें प्राचीन काल में उनके नामों से ही सम्बोधन किया जाता था। इन्हें भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार यथा, भील, कोल, किरात, मुण्डा, उराँव, संथाल, निषाद आदि नामों से पुकारा जाता था, जो धर्मग्रंथो में वर्णित है। भारतीय मूलनिवासियों के परिवर्तन का कारण आर्यो का भात आगमन कहा जा सकता है। जब भारत में दो गुट आर्यो व अनार्यो के रूप में विभाजित हुए थे। अनार्यो को दस्यु भी कहा गया, जिसका शाब्दिक अर्थ दूसरे लोग से है, किन्तु हाल ही में हुए पुरात्व विभाग के एक अन्वेषण (खोज) में पाया गया है कि आर्य कही बाहर से नहीं आयें वे यही के मूलनिवासी है।

जनजातीय समाज वर्षों से एकान्त परम्परागत जीवन–यापन करता आ रहा है। कुछ लोगो का सम्पर्क बाहरी समाज से हुआ। हर छोटे–बड़े जनजाति समाज का परम्परागत संगठन अवश्य ही होता है। मानवशास्त्रीय/समाजशास्त्रीय अध्ययनो में पाया गया कि कोई भी समाज या समुदाय लम्बे समय तक अपना अस्तित्व तभी कायम या स्थिर रख सकता है। जब उसकी एक आन्तरिक व्यवस्था हो। जनजातीय समुदाय का बाहरी लोगों के सम्पर्क के बाद भी अपनी सभ्यता व परम्पराओं में विशेष परिवर्तन नहीं आया। दो चीजे अवश्य ही हुई है एक आबादी बढ़ने से क्षेत्रीय फैलाव और दूसरा क्षेत्रीय फैलाव के बावजूद एक निश्चित सीमा तक सीमित रहे।

व्यापक क्षेत्र में प्रसार वाली जनजातीय समुदाय यथा गोण्ड, भील, हो, संथाल, उराँव, मुण्डा आदि है। वे सभी जाति या उपजाति अपने क्षेत्रीय विस्तार से अनभिज्ञ नहीं है। प्रत्येक बड़े व छोटे समूह यह जानते है कि उसके भूखण्ड का विस्तार कहाँ तक हैं। इन समुदाय में आपसी झगड़े व लड़ाईयों चाहे व धार्मिम व सामाजिक मुद्दे हो का निपटारा परम्परागत मुखिया प्रणाली से किया जाता है।[6]

प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं को अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त था किन्तु प्राचीन काल में भी महिलाओं की प्रस्थिति से संबंधित दो विचार परिलक्षित होते हैं। एक मतानुसार महिलायें पृथ्वी पर समस्त गुणों का प्रतीक मानी गई। महाभारतकाल में महिलाएँ न केवल गृहस्थ जीवन वरन् सामाजिक संगठनों में भी केन्द्र बिन्दु का कार्य करती थी। दूसरे मतानुसार सभ्यता के प्रारंभिक युगों में महिलाएँ वासनापूर्ति का साधन व गुलाम के समान थीं।

भारत में प्राचीन काल से राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वैदिक काल के तत्कालीन राजनीतिक संगठन 'विद्थ' में पुरूषों के साथ महिलाओं की भी समान भागीदारी थी। साथ ही नगर की सभा और समितियों में भी महिलाओ की सहभागिता होती थी। संक्षेप में कहा जाए तो ऋग्वैदिक काल में महिलाएँ अपने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकारों का उपयोग करते हुए पूर्ण से गृह स्वामिनी थी। उत्तर वैदिक काल में उसके अधिकार अत्यंत सीमित हो गए और वह केवल पत्नी और मातृत्व तक सिमट कर रह गई।

महाकाव्य काल में महिलाओं की स्थिति में और भी गिरावट देखने को मिलती है। सती–प्रथा बहुपतित्व, बहु पत्नी प्रथा जैसी परंपराओं का उल्लेख रामायण एवं महाभारत में मिलता है, मनु स्मृति के अनुसार स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं छोड़ा जाना चाहिए। मनुस्मृति काल के दौरान जब महिलाओं का जीवन अंधकार मय था। तब महावीर और बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ जो ब्राहमणकारी परंपराओ के विरूद्ध लोगो को जागृत करने के प्रयासों में लगे हुए थे। बुद्ध ने महिलाओं के लिए संघ का द्वारा खोल दिया। सम्राट अशोक की पुत्र संघमित्रा ने बौद्ध धर्म प्रचारिका के रूप में श्रीलंका की यात्रा की और स्त्रियों से संबंधित सामाजिक कुरीतियो को दूर करने की दिशा में कार्य किया।

गुप्तकाल में चन्द्रगुप्त प्रथम की पत्नी जो लिच्छवि वंश की राजकुमारी थी प्रथम प्राचीन भारतीय नारी थी जिसका नाम उसके पितृकुल सहित स्वर्ण मुद्रा पर अंकित पाया जाता हैं। पूर्व मध्यकाल में उड़ीसा में भूमकार रानियों का उल्लेख मिलता हैं जिन्होंने लगातार 50 वर्षो तक उड़ीसा पर कुशलतापूर्वक शासन किया। कश्मीर की रानी विद्दा ने भी 23 वर्षों तक सशक्त शासन किया।

शासन एवं राज्य व्यवस्था में महिलाओं की नेतृत्त्व संबंधी ये सभी उदाहरण उच्च कुलीन राजवंश की महिलाओं से सम्बन्धित है। मुगलकाल में स्त्रियों की उन्नति मार्ग प्रबल नहीं था किन्तु फिर भी मुस्लिम में कुछ महिलाओं ने अपनी प्रतिमा का परिचय दिया।

ब्रिटिशकाल के उतर्रार्ध से भारत की नारियों का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हो चुका था लेकिन वास्तविक सहभागिता 20वीं शताब्दी से माना जाता है। भारत सरकार ने अधिनियम 1919 में महिलाओं को प्रजातांत्रिक स्तर में मताधिकार का अधिकार दिया। सन् 1935 में केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओं में भी महिलाओं का मताधिकार मिला। इसी समय अनेक महिला मंडल बनाए गए, जिन्होंने महिलाओं के अन्दर राजनीतिक अधिकार की चेतना जगायी।

स्वतंत्रता के बाद देश में एक नयी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना हुई। स्वतंत्र भारत में महिलाओं को पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकार मिले। जिससे लोकसभा व राज्यसभा मे उनकी भागीदारी बढ़ती गई।[7]

इस तरह झारखण्ड में 1857 के सिपाही–विद्रोह के पूर्व संताल– विद्रोह, कोल–विद्रोह, लरका विद्रोह, चुआड़ विद्रोह हुए। उनमें आदिवासी महिलाओं ने भारी संख्या में शिरकत की, इतिहास गवाह है कि झारखण्ड की महिलाएँ मुगल काल में भी उनसे युद्ध करने हेतु तीर–तरकश लेकर पुरूषो की वेष–भूषा में मैदान पर उतर गयी। सदैव ही महिलाओं ने झारखण्ड की सामुदायिक अवधारणा को जीवित रखा है। संताल बहुल इलाके की बात करे तो फूलो एवं झानो की नेतृत्त्व ने भी विद्रोह में साथ देते हुए अंग्रेजो सिपाहियों के शिविर को ध्वस्त कर सिपाहियों की हत्या कर दी थी।

राजनैतिक आंदोलन से अलग हटकर भी महिलाओं ने सामाजिक आन्दोलनों में साथ दिया है। पूरे झारखण्ड क्षेत्र में पूर्व की जो स्वशासी शासन व्यवस्था थी अर्थात् पड़हा, मानकी–मुण्डा, महतो, परगनैत एवं मांझी महिलाएँ भी रही है। अतः महिलाओं की भूमिका सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों व्वस्थाओं में बराबरी की रही है

आधुनिकता से भरे इस युग में भारतीय शासन एवं प्रशासन द्वारा लोक कल्याणकारी राज्य स्थापित हो सके इस उद्देश्य की पूति हेतु सभी वर्गों को उत्थान एवं कल्याण हेतु कुछ योजनाएँ संचालित की गई है। जिसमें इन जनजातियों के नागरिको का सर्वागीण विकास किया जा सके। इसके बाद भी देश व प्रदेश में जनजाति महिलाओं की नेतृत्त्व में कुछ परिवर्तन स्पष्ट तौर पर नही दिखाई पड़ता है। फिर भी जनजाति महिलाओं की सामाजिक के स्थिति के सुधार हेतु राजनीतिक सहभागिता, शैक्षणिक हिस्सेदारी और आर्थिक सशक्तिकरण का कार्य किया जा रहा है।[8]

निष्कर्ष :–

इस शोध पत्र के माध्यम से भारतीय राजनीति में महिलाओं की वास्तविक नेतृत्त्व की स्थिति का ज्ञान होगा जिससे उनकी भूमिका एवं क्रियाशीलता के प्रभावी आयामो को सामने रखा गया है। महिलाओं के नेतृत्त्व पर प्रश्न चिन्ह लगाने तथा क्षमताओं को लेकर वैचारिक मतभेद समाप्त करता है। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में राजनैतिक समझ में बढ़ोतरी तथा प्रतिनिधित्व एवं महिलाओं को प्रोत्साहित का आधार है। भविष्य की राजनीति में महिलाओं का नेतृत्त्व एवं भूमिका का आकलन एवं नवीन कानून व योजनाओं के लिए सहायक सिद्ध हो रही है। जनजातीय महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमताओं में बढ़ोतरी तथा शासन व प्रशासन क मुख्यधारा से जोड़ने के सहयोग व सहायता के चलते जनजातीय महिलाओं में आत्मसम्मान, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षनिक और राजनीति विकास को स्पष्ट महसूस किया जा सकता है।

संदर्भ–सूची

1. गुप्ता एवं शर्मा, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृ0सं0–7, 8
2. वर्मा, उमेश कुमार, 2009, झारखण्ड का जनजातीय समाज, सुबोध ग्रंथ माला, पुस्तक पथ, राँची, पृ0सं0–230, 231, 223–236
3. दिवान, डॉ0 रेणु, झारखण्ड की महिलाएँ बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ0सं–12, 13
4. तिर्की, प्रभाकर, (2019), झारखण्ड आदिवासी विकास का सच, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0–18
5. पाल, सुधीर, (2017),ग्रामसभा नये लोकतंत्र की दस्तक आधार प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, पंचकुला, पृ0सं0–26
6. पाण्डेय, अभिषेक, भारतीय संविधान और राजव्यवस्था मार्गदर्शन पब्लिकेशन, राँची, पृ0सं0–237, 238
7. शुक्ला, राजेश, (2006), ग्रामीण शक्ति संरचना एवं ग्राम विकास, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ0–211
9. सिन्हा, अर्चना (2002), पंचायत के जरिये ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका, पृ0सं0–34

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

NEP 2020 AND REFORMS IN HIGHER EDUCATION

Dr. Preety Agarwal
Prof.Deptt. Of Teacher Education
D.A.V.PG.College, Muzaffarnagar
Email:preety1974@rediffmail.com

ABSTRACT
First and foremost, the announcement of the much-awaited National Education Policy (NEP) has cleared the path for setting up a single regulatory body for country's higher education. The regulatory body, that is to be named the Higher Education Commission of India (HECI), will function as the single authority for all public and private educational institutions (except those involved in medical and law education). In addition to this, a National Research Foundation will be created to oversee all research activities to be carried out by the various academic institutions in the country. It has focused on the holistic development of students' minds, acknowledging their interests, and motivating them to enhance it.

KEY WORDS: Higher Education, National Education Policy 2020, NEP-2020, Multi-disciplinarily, Multilingualism, Conceptual Understanding, Critical Thinking

INTRODUCTION

The National Education Policy (NEP) 2020 is a national educational policy reform which has introduced profound changes at every level of learning, including higher studies and secondary and primary schooling. It aims to transform the education sector of India by 2040. Equitable access to high-quality education for all students, regardless of their socio-economic class and backgrounds, is the ultimate goal of NEP 2020.Formulated by the Education Ministry, formerly known as the Ministry of Human Resources and passed by the Union Cabinet; NEP 2020 has replaced the National Policy on Education (NPE), 1986. The most appreciable fact about the policy is that it transcends the inflexible boundaries of education, which was relegated to rote textbook learning. It has focused on the holistic development of students' minds, acknowledging their interests, and motivating them to enhance it. NEP endorses multi-disciplinarily, multilingualism, conceptual understanding, vital creative and critical thinking and teaching life skills. No hard divisions between streams like Humanities, Science, and Commerce is also a much-needed change initiated under NEP. At school-level education, NEP did away with the archaic 10+2 structure and introduced a new pedagogical and curricular structure of 5+3+3+4 which covers students of ages 3-18 years. It has been divided into four stages of learning:- Foundational, Preparatory, Middle, and Secondary. The new policy caters to 3-6-year-old children as well and promotes Early Childhood Care and Education (ECCE). Under this, NCERT will formulate a National Curricular and Pedagogical Framework for Early Childhood Care and Education (NCPFECCE). It will be divided into two parts which will entail a sub-framework for 0-3 year-olds and a sub-framework for 3-8 year-olds. The ECCE will help children to learn a

diverse range of things like art, music, craft, drama, puppetry, etc., to plant the seeds of creative instincts and logical thinking in them from an early age.

One of the most important features of NEP is the layout of a cohesive programme to strengthen the roots of Foundational Literacy and Numeracy. It is the most basic learning essential but is brazenly absent in a sizeable population of children. The Ministry of Human Resource Development (MHRD) has also been commissioned to constitute a National Mission on Foundational Literacy and Numeracy to achieve the goal of universal foundational literacy and numeracy in all primary schools by 2025.One of the hallmark changes of NEP is the introduction of experiential learning, which is based on competency-based learning rather than competition-based assessment and comparisons. It will have hands-on learning, arts-integrated and sports-integrated education, and story-telling-based pedagogy. It extricates India's learning culture from one-dimensional, rigid and fixed subject comprehension and allows one to explore relations between subjects and find analogies. It will enhance students' cognitive abilities and analytical aptitude.NEP has introduced some very important and desirable changes in the Indian education system, which was jarring under the substratum of policy which was way too impasse and parochial to suit the contemporary social environment. It is a reformatory step in the right direction, and its implementation will be the final word. It is balanced assimilation of adept modernism and respectability for India's vast multiculturalism and linguistic identities.

THE FUNDAMENTAL PRINCIPLES OF THE POLICY:

- recognizing, identifying, and fostering the unique capabilities of each student, by sensitizing teachers as well as parents to promote each student's holistic development in both academic and non-academic spheres.
- according the highest priority to achieving Foundational Literacy and Numeracy by all students by Grade 3.;
- flexibility, so that learners have the ability to choose their learning trajectories and programmes,

and thereby choose their own paths in life according to their talents and interests;

- no hard separations between arts and sciences, between curricular and extra-curricular activities, between vocational and academic streams, etc. in order to eliminate harmful hierarchies among, and silos between different areas of learning.
- multidisciplinary and a holistic education across the sciences, social sciences, arts, humanities, and sports for a multidisciplinary world in order to ensure the unity and integrity of all knowledge;
- emphasis on conceptual understanding rather than rote learning and learning-for-exams.;
- creativity and critical thinking to encourage logical decision-making and innovation;
- ethics and human & Constitutional values like empathy, respect for others, cleanliness, courtesy, democratic spirit, spirit of service, respect for public property, scientific temper, liberty, responsibility, pluralism, equality, and justice;
- promoting multilingualism and the power of language in teaching and learning;
- life skills such as communication, cooperation, teamwork, and resilience;

- focus on regular formative assessment for learning rather than the summative assessment that encourages today's 'coaching culture';
- extensive use of technology in teaching and learning, removing language barriers, increasing access for Divyang students, and educational planning and management;
- respect for diversity and respect for the local context in all curriculum, pedagogy, and policy, always keeping in mind that education is a concurrent subject;
- full equity and inclusion as the cornerstone of all educational decisions to ensure that all students are able to thrive in the education system;
- synergy in curriculum across all levels of education from early childhood care and education to school education to higher education;
- teachers and faculty as the heart of the learning process – their recruitment, continuous professional development, positive working environments and service conditions;
- a 'light but tight' regulatory framework to ensure integrity, transparency, and resource efficiency of the educational system through audit and public disclosure while encouraging innovation and out-of-the-box ideas through autonomy, good governance, and empowerment;
- outstanding research as a co requisite for outstanding education and development;
- continuous review of progress based on sustained research and regular assessment by educational experts;
- a rootedness and pride in India, and its rich, diverse, ancient and modern culture and knowledge systems and traditions.
- Education is a public service; access to quality education must be considered a basic right of every child;
- substantial investment in a strong, vibrant public education system as well as the encouragement and facilitation of true philanthropic private and community participation.

KEY POINTS IN NEP 2020 FOR HIGHER EDUCATION

1. Gross Enrolment Ratio (GER) in higher education to be raised to 50% by 2035
2. Around 3.5 crore seats to be added in higher education
3. Undergraduate education can be of 3 or 4 years with multiple exit options and appropriate certification at different stages
4. Academic Bank of Credits to be established to facilitate Transfer of Credits for lateral admission to other institutes
5. Multidisciplinary Education and Research Universities (MERUs), at par with IITs and IIMs, to be set up as models of best multidisciplinary education of global standards in the country
6. The **National Research Foundation** will be created as an apex body for fostering a strong research culture and building research capacity across higher education
7. **Higher Education Commission of India** (HECI) will be set up as a single overarching umbrella body for the entire higher education system, excluding medical and legal education. Public and private higher education institutions will be governed by the same set of norms for

regulation, accreditation and academic standards.

8. Affiliation of colleges is to be phased out in 15 years and a stage-wise mechanism is to be established for granting graded autonomy to colleges

Besides the above key changes, the NEP 2020 has proposed to set up an autonomous body – the **National Educational Technology Forum (NETF)**, to provide a platform for free exchange of ideas on the use of technology in order to enhance learning, assessment, planning, and administration. The National Education Policy has also emphasized on setting up of a **Gender Inclusion Fund** which is aimed at creating an environment of equitable and fair quality education for girls as well as transgender students. Also, as per the NEP document, Special Education Zones will be created for disadvantaged regions and groups which will make higher education opportunities more accessible for students.

Flexible UG Courses with Multiple Entries and Exits

As per the NEP, the students will now have options of multiple exits during their UG programme. For example, a student can exit just after 1st year of graduation with a certificate in hand. If he/she opts to exit after the second year, an Advanced Diploma will be awarded for 2 years of successful completion of study. As usual, the 3rd year of UG completion will result in a Bachelor's Degree and 4th year of UG completion will be awarded with a Bachelor's of Research.

NEP 2020 – UG Exit Options

Option No.	**Options**	**Academic Recognition**
1	After 1st year of UG programme	Certificate
2	After 2nd year of UG programme	Advanced Diploma
3	After 3rd year of UG programme	Bachelor's Degree
4	After 4th year of UG programme	Bachelor's with Research

Further, the credits earned at various levels will get credited into a digitalized Academic Bank of Credit. Students can use their earned credits to take admission in another institution to further continue their studies for the remaining year/s of their graduation courses.

HECI – A Single Regulatory Body with 4 Verticals

As per the National Education Policy (NEP) 2020, a single regulatory body will guide Higher Education in India. The regulatory body named as Higher Education Commission of India (HECI) will have 4 verticals to deal with different functions of higher education.

Serial No	**HECI Vertical**	**Function**
1	National Higher Education Regulatory Council (NHERC)	Creating and Implementing Higher Education regulation
2	General Education Council (GEC)	Standard setting for academia
3	Higher Education Grants Council (HEGC)	For funding academic and research activities

4	National Accreditation Council (NAC)	Accreditation to academic institutions

NEP 2020 – Focus on Research

As per the National Education Policy, a central body named National Research Foundation will be created to build a strong research culture and research capacity across different domains in higher education.

To enhance both the quality and capacity of academic research, the government will establish multi-disciplinary Education and Research Universities (MERUs), at par with Indian Institutes of Technology (IITs) and Indian Institutes of Management (IIMs).

NEP 2020 – Greater Autonomy and Multi-disciplinary Approach

The policy has envisioned phasing out the system of affiliation over the next 15 years and providing graded autonomy to colleges. Thus, over the coming decade, every college would develop into either an autonomous degree-granting college or a constituent college of a university.

Also, the policy aims at focusing on multi-disciplinary culture in institutions offering professional education. For example, stand-alone technical universities, health science universities, legal and agricultural universities etc will be helped to become multi-disciplinary institutions.

NEP 2020 – Use of Technology in Higher Education

National Education Policy 2020 has emphasized the use of technology in multiple ways to enhance the teaching-learning experience and also to make quality education accessible for masses. As per the NEP document, the use of technology will be taken to the next level to "ensure preparedness with alternative modes of quality education whenever and wherever traditional and in-person modes of education are not possible." This step carries special significance in the backdrop of the COVID 19 pandemic, forcing the majority of institutions to switch their teaching-learning mode from in-person offline method to virtual learning in online mode. To promote 'Online Education and Digital Education', a dedicated unit will be set up to facilitate building of digital infrastructure, digital content and also to look after the e-education needs at the level of both school and higher education.

Further, under the 'Open and Distance Learning' will be made more relevant with credit-based recognition of Massive Open Online Courses (MOOCs) to make these courses at par with the highest quality in-class programmes.

The government will also set up an autonomous body – National Educational Technology Forum (NETF), which will work as a platform for free exchange of ideas on the use of technology to enhance learning, assessment, planning, and administration.

CONCLUSION

An education system rooted in Indian ethos that contributes directly to transforming India, that is Bharat, sustainably into an equitable and vibrant knowledge society, by providing high-quality education to all, and thereby making India a global knowledge superpower. The curriculum and pedagogy of our institutions must develop a deep sense of respect towards the fundamental duties and Constitutional values, bonding with one's country, and a

conscious awareness of one's roles and responsibilities in a changing world. To instill a deep-rooted pride in being Indian, not only in thought, but also in spirit, intellect, and deeds, as well as to develop knowledge, skills, values, and dispositions that support responsible commitment to human rights, sustainable development and living, and global well-being, thereby reflecting a truly global citizen. The new policy focuses on online and e-learning. Education has always been more of brick and mortar approach rather than technology-based. Online education will play an extensive role to bridge the gap between the students and the institutes. In education what is complementary today will become core. The virtual world will become more real than the real world with digital and video centric approaches. New Education Policy is not just about the degree. It is all about focus on life skills and vocational courses. It will be student centric approach where affordability and accessibility will be there and where the students can leverage the most out of education. Increased access, equity, and inclusion through open schooling, online education and Open Distance Learning will be promoted.

REFERENCES

1. Aithal, P. S.; Aithal, Shubhrajyotsna (2019). "Analysis of Higher Education in Indian National
2. Education Policy Proposal 2019 and Its Implementation Challenges". International Journal of Applied Engineering and Management Letters. 3 (2): 1–35. SSRN 3417517
3. National Education Policy 2020. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep/ NEP_Final_English.pdf referred on 10/08/2020.
4. Nandini, ed. (29 July 2020). "New Education Policy 2020 Highlights: School and higher education to see major changes". Hindustan Times.
5. Jebaraj, Priscilla (2 August 2020). "The Hindu Explains | what has the National Education Policy 2020 proposed?"The Hindu. ISSN 0971-751X
6. Chopra, Ritika (2 August 2020). "Explained: Reading the new National Education Policy 2020". The Indian Express.
7. Rohatgi, Anubha, ed. (7 August 2020). "Highlights | NEP will play role in reducing gap between Research and education in India: PM Modi". Hindustan Times.
8. Krishna, Atul (29 July 2020). "NEP 2020 Highlights: School And Higher Education". NDTV.
9. Naidu, M. Venkaiah (8 August 2020). "The New Education Policy 2020 is set to be a landmark in India's history of education". Times of India Blog.
10. https://static.pib.gov.in/WriteReadData/userfiles/NEP_Final_English_0.pdf
11. https://www.orfonline.org/expert-speak/national-education-policy-2020-policy-times/
12. https://www.highereducationdigest.com/the-impact-of-national-education-policy-2020-on professional-education/

13. http://bweducation.businessworld.in/article/NEP-2020-Impact-On-Higher-Education-/07-08-2020-305999/
14. https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/theaitics/implications-of-the-national-education-Policy-2020-on-higher-education-in-india-2-24729/
15. https://www.hindustantimes.com/india-news/pm-modi-s-address-at-conclave-on-transformational-reforms-in-higher-education-under-national-education-policy-highlights/story-dehOW8q8ZRrONbbFSRjg0H.html

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

शैक्षिक उद्देश्य एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण एक विश्लेषण

प्रो0 (डॉ0) सुविता कुमारी
शिक्षक शिक्षा विभाग
डी0ए0वी0 कालेज, मुजफ्फरनगर

सारांश–

शिक्षा कार्य करने में जो हमारी मूल धारणा, प्रवृत्ति या प्रेरक तत्व होता है वे ही शैक्षिक उद्देश्य है क्योंकि उसी के द्वारा शिक्षा के कार्य की प्रगति होती है, दिशा मिलती है। जीवन दर्शन राजनैतिक आदर्श और सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व भौगोलिक परिस्थितियों के परिवर्तन होते ही शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य, जो उद्देश्य प्राचीन काल में थे वे आज की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं और आवश्यकता के अनुकूल नहीं हैं और आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्धन और परिवर्तन किया जाता है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य अलग–अलग, शिक्षा शास्त्रों के अनुसार अलग–अलग हैं। आदर्शवादी हरमैन हैरिल हार्न सत्यम, शिवम् सुन्दरम जाति के अध्यात्मिक आदर्श हैं। इस कारण शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य बालक के अनुकूल इन आवश्यक यथार्थताओं के साथ विकास करना है, जिनका स्पष्टीकरण जाति के इतिहास के साथ है। प्रकृतिवादी दर्शन में लक्ष्यों का प्रतिपादन मुख्य रूप से जैवकीय और विकासवादी दृष्टिाकोण के आधार पर किया गया है। रूसो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक की विभिन्न शक्तियों का विकास करना है जो बालक की स्वाभाविक क्रियाओं में सहायता प्रदान करके किया जा सकता है। प्रयोजनवादी परिवर्तन एवं गति में विश्वास रखते हैं वे प्राचीनतम प्रभाओं, परम्पराओं, समाज में प्रचलित रूढियों व बन्धनों के घोर विरोधी हैं।

कुन्जी शब्द *– शिक्षा, उद्देश्य, दृष्टिकोण, मूल्य, सामाजिक परिवर्तन*

उद्देश्य ऐसे कार्यों या बातों का बोध कराते हैं जिन्हें हम शिक्षात्मक प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। उद्देश्य शब्द संस्कृत के "उद्देश्य"" शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है किसी कार्य को दिशा निर्देश देना। किसी कार्य को करने में उसके पीछे कोई ऐसा परिणाम या फल भी रहता है जो उसके द्वारा हम प्राप्त करना चाहते हैं। मुख्यतः फल प्राप्ति की यह इच्छा भावना या विचार, उद्देश्य कहलाता है। शिक्षा कार्य करने में जो हमारी मूल धारणा, प्रवृत्ति या प्रेरक तत्व होता है वह शैक्षिक उद्देश्य है, क्योंकि उसी के द्वारा शिक्षा के कार्य की प्रगति होती है, एक दिशा मिलती है।

इस वर्ग के अन्य शब्द ध्येय और लक्ष्य हैं। ध्येय का अर्थ है जिसका ध्यान किया जा सकता हो अथवा जो ध्यान में रखने या लाने योग्य हो। ध्येय और उद्देश्य में अन्तर यह है कि ध्येय में हमारी भावना या विचार का तत्व गौंण रहता है और स्वयं उस कार्य, वस्तु या विषय का भाव प्रधान होता 'है जिस पर हमारा मन केन्द्रित होता है। लक्ष्य शब्द का प्रयोग आखेट या शिकार के क्षेत्र में होता रहा है, उसका शाब्दिक अर्थ है जिस पर कोई चिन्ह या निशान हो। शिकार में हम इस निशान पर ही दृष्टि जमाते हैं। अतः लक्ष्य में दृष्टि' की प्रधानता होती है और ध्येय में ध्यान की। ध्येय में इतना अधिक मनोनिवेश नहीं होता, जितना लक्ष्य में होता है। उद्देश्य अन्तिम और चरम सीमा का द्योतक है तो ध्येय और लक्ष्य उस तक पहुँचने के बीच के विराम स्थल हैं, जिनकों प्राप्त कर हम गन्तव्य की ओर बढ़ते हैं। अंग्रेजी में उद्देश्य के लिए 'ऐम' ध्येय के लिए 'ऑब्जेक्टिव' और लक्ष्य के लिए "टारगेट" शब्दों का प्रयोग होता है।

उद्देश्य की आवश्यकता एवं महत्व–

उद्देश्य रहित शिक्षा अर्थहीन है। उद्देश्य रहित शिक्षा से कभी भी वंछित फल की आशा नहीं की जा सकती। उद्देश्यपूर्ण शिक्षा, शिक्षा की प्रक्रिया को गति देती है, शिक्षक और शिक्षार्थी को जागरूक करती है, उनमें दूरदर्शिता और दीर्घ दृष्टि उत्पन्न करती है। उनमें उत्साह, प्रेरणा और कार्य करने की अपूर्व शक्ति पैदा करती है और इससे समय और शक्ति का सदुफ्योग होता है। शिक्षा के उद्देश्य समस्त शैक्षिक प्रक्रिया को एक दिशा प्रदान करते हैं। इनके माध्यम से शिक्षा के व्यवस्थापक यह पता लगाते हैं कि शैक्षिक प्रक्रिया में प्रासंगिकता तथा औचित्य का समावेश किस सीमा तक है। शैक्षिक पाठ्यक्रमों के निर्माण तथा शैक्षिक विधि तथा शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन जैसी क्रियाओं के समयक सम्पादन हेतु शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण अनिवार्य है। बिना उद्देश्यों के शैक्षिक प्रक्रिया दिशाहीन तथा यन्त्रवत बन जाती है।

उद्देश्य निर्धारण में प्रभावकारी कारक–

जीवन दर्शन राजनैतिक आदर्श और सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व भौगोलिक परिस्थितियां शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती हैं। देशकाल, आदर्श और परिस्थितियों के परिवर्तन होते ही शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा के जो उद्देश्य प्राचीन काल में थे बे आज की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है और आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्धन, संशोधन और परिवर्तन किया जाता है। किसी भी देश के शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में प्रमुख रूप से निम्नलिखित कारक प्रभावकारी हैं–

1. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक**– किसी भी देश की सामाजिक व्यवस्था उसके सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर बनती है। प्रत्येक समाज इस व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान करने के लिए शिक्षा की सहायता लेता है। इस रूप में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन माना जाता है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करता है।

ऐतिहासिक कारक– किसी भी देश का सामाजिक, सांस्कृतिक और राजजैतिक इतिहास कितना पुराना है? उसकी परम्परायें कितने समय से जनजीवन को प्रभावित करती चली आ रही हैं? आदि बातें, शैक्षिक व्यवस्था तथा उसमें प्रकट होने वाले शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में विशेष महत्व रखती है। उदाहरणार्थ, भारत की तुलना में अमेरिका या जर्मन गणवादी राष्ट्र ऐसे हैं जहां का इतिहास अपेक्षाकृत नया है। भारतीय संदर्भ में शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण यहां की पुरानी परम्पराओं से अवश्यमेव सम्बन्धित होता है

भौगोलिक कारक– किसी भी देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का एक महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु, तापमान, भूमि, पर्वतीय क्षेत्र का होना आदि बातें उद्देश्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आर्थिक कारक– किसी भी देश की आर्थिक परिस्थितियां शिक्षा के उद्देश्य को निर्धारित करने में सहायक होती है। जिस समाज के पास आजीविका मात्र के साधन है, वहां जीवनयापन सबसे बड़ी समस्या होती है और सांस्कृति उन्नति की बात उसके सम्मुख आ नहीं सकतीं ऐसे समाजों की शिक्षा प्रायः आविधिक होती है किन्तु जिन समाजों में आधिक्य है अर्थात उत्पादन खपत से कहीं अधिक होता है। वहां शिक्षा पर व्यय करने के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध हो जाता है। इसीलिए ऐसे समाजों में सर्वाधिक शिक्षा दी जाती है और उच्च सांस्कृतिक शिक्षा की व्यवस्था संभव होती है। उसमें संस्कृति और कला कौशल की उन्नति के शैक्षिक उद्देश्यों का भी समावेश होता है।

राजनैतिक कारक– किसी देश की राजनैतिक व्यवस्था शिक्षा के उद्देश्यों को सीधे रूप में प्रभावित करती है। राजतंत्र, कुलीनतन्त्र तथा प्रजातंत्र की अपनी अलग–अलग विचारधारायें हैं जिनके अनुरूप शिक्षा

के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। कोई विचारधारा व्यक्ति को समाज के अधीन मानती हैं तो कोई व्यक्ति की महानता पर बल देती है। प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य साम्यवादी अथवा अधिनायकवादी व्यवस्था से भिन्न होता है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य शासक वर्ग के हितों की रक्षा करना है। बट्रेण्ड रसल ने कहा है कि सभी प्रकार की शिक्षा में कोई न कोई राजनैतिक प्रयोजन अवश्य रहता है।

जीवन के विचार व दर्शन आदि से सम्बन्धित कारक– शिक्षा जीवन है। अतः जीवन के आदर्श, विचार, दर्शन उसकी प्रतीति सभी का शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धरिण में प्रभाव पड़ता है। आदर्श, दर्शन, विश्वास और चिन्तन आदि अलग–अलग होते हैं। इसलिए विभिन्न देशों के शिक्षा के उद्देश्य एक समान नहीं होते। विकसित और विकासशील देशों में शिक्षा के उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं। पिछड़े हुए अफ्रीकी समाजों और प्रगतिशील अमेरिकी समाज के उद्देश्यों में बहुत अन्तर है। यही कारण है कि शिक्षा के उद्देश्य प्रायः मनुष्य के विकास के साथ–साथ बदलते रहते हैं।

रेमाण्ड का यह कथन सत्य ही है कि शैक्षिक सफलता ईटों और गारे में नहीं रहती, न व्यापक उपकरणों में होती है, न कागजी पाठ्यक्रम में होती है, बल्कि उन विद्वानों और सुसंस्कृत स्त्रियों और पुरूषों के प्रभाव में होती है जो वे अपने संरक्षण में आये विद्यार्थियों पर डालते हैं।

आदर्शवादी दार्शनिक हार्न ने कहा है कि "शिक्षा उच्च वास्तविकताओं तथा अस्तित्व के अर्थो के प्रति जीवन का जागरण हैं।

वास्तव में शिक्षा और जीवन दो भिन्न–भिन्न वस्तुएँ नहीं है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। अतः शिक्षा को स्वयं में लक्ष्य नहीं माना जाता है। बल्कि यह लक्ष्य की प्राप्ति का साधन मात्र है।" इस प्रकार शिक्षा जीवन के अनुरूप होती है और जीवन के अनुरूप ही शिक्षा के उद्देश्य हो जाते हैं। रिलिविन के अनुसार "शिक्षा एक सप्रयोजन तथा नैतिक क्रिया है। अतएव यह कल्पना ही नहीं की जा सकती है कि यह उद्देश्यहीन हैं अतः शिक्षा के निश्चित रूप से उद्देश्य होते हैं। शिक्षा के लक्ष्यों में देशकाल एवं समसामयिक परिस्थीतयों के कारण परिवर्तन निश्चित रूप से होता है। आज सामाजिक जीवन में राजनीतिक व्यवस्थाओं को स्वीकार करने के कारण शिक्षा का क्षेत्र व्यापक हो गया है। इसीलिए बद्रेण्ड रसेल ने कहा था कि "शिक्षा के प्रभाव में प्रजातन्त्रीय प्रणाली का विकास सन्देहास्पद है।'' आज सभी स्वतन्त्रता चाहते हैं तथा जीवन में समान अवसरों की मांग करते हैं। आज यह अनुभव किया जा रहा है कि भ्रातत्व भावना बढ़ाये बिना सच्ची स्वतन्त्रता और समानता की स्थापना नहीं हो सकती है। अतः शिक्षा का मुख्य लक्ष्य आर्थिक राष्ट्रवाद की नीति का परित्याग, जातीय एकता और विश्व समाज के लिए स्वतन्त्रता तथा निष्ठा के आधार पर विश्व की पुर्नव्यवस्था करना है।

किसी भी देश में सामाजिक आदर्श तथा विश्व के लक्ष्य, महापुरूषों विद्वानों तथा विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा शासन की नीतियों के आधार पर निर्धारित होते हैं। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ऋषि–मुनि, महापुरूषों, विचारकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है। मनु, याज्ञवल्कय, गौतम, कणाद, कपिल, वादरायण, शंकराचार्य, शुक्र, कौटिल्य आदि ऐसे विचारक हैं। वर्तमान समय में अरविन्द, विवेकानन्द, राधाकृष्णन, गांधी, तिलक आदि ने लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। विश्व के अन्य देशों में भी यही परम्परा विकसित हुई है। विभिन्न समाजदर्शनों से यथा भीतिकवादी, व्यवहारवादी, आदर्शवादी, फांसीवादी, मार्क्सवादी, साम्यवादी, जनतन्त्रवादी विचारधाराओं का विकास हुआ। ये पाश्चात्य शिक्षा दर्शन की आधार भूत विचारधारायें हैं। इन्हीं समाज दर्शनों से शिक्षा के आदर्श लक्ष्यों एवं मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। भारतीय विचारधारा आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार शैक्षिक उद्देश्य – पश्चिमी शिक्षा जगत. में आदर्शवादी, व्यवहारवादी, प्रकृतिवादी तथा यथार्थवादी आदि विचारधाराओं का विकास हुआ। शिक्षा के लक्ष्यों पर इन

विचारधाराओं का प्रभाव पडा है। अतः इन विचारधाराओं द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के लक्ष्यों का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है।

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य– जेण्टाइल के अनुसार "आत्मानुभूति शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है।" शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करना है लेकिन आदर्शवाद में इसके अतिरिक्त भी उद्देश्य बनाये गये हैं। हरमैने हैरिल हार्न सत्यम् शिवम् सुन्दरम् जाति के आध्यात्मिक आदर्श हैं। इस कारण शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य बालक के अनुकूल इन आवश्यक यथार्थताओं के साथ विकास करना है, जिनका स्पष्टीकरण जाति के इतिहास के साथ है।'' आदर्शवादी शिक्षा व्यवस्था में धार्मिक, नैतिक लथा आध्यात्मिक आदर्शो को प्रमुखता दी जाती है.। इनमें शिक्षा के निकट के लक्ष्यों को अधिक महत्व दिया जाता है । इनके लक्ष्य अहम् तथा निश्चित दिखायी पडते हैं। हार्न के अनुसार व्यक्तिगत उद्देश्यों में गौण रूप से सामाजिक उद्देश्य सम्मिलित होते है। इनमें अधिकतर शिक्षा के लक्ष्य सार्वभौम होते हैं। आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य मुख्यतः माध्यमिक होने के कारण इसका लक्ष्य मानव समाज को अधिकाधिक नैतिक तथा अध्यात्मिक बनाने का है। रस्क के शब्दों में शिक्षा को मानव जाति को इस योग्य बनाना चाहिए कि वह अपनी संस्कृति की सहायता से आध्यात्मिक जगत में अधिकाधिक पूर्णता सहित प्रवेश कर सके तथा आध्यात्मिक जगत की सीमाओं का विस्तार भी कर सकें।

प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य– प्रकृतिवादी दर्शन में लक्ष्यों का प्रतिपादन मुख्य रूप से जैवकीय और विकासवादी दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है। जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य बालक का उसके परिवेश से समायोजन करना है। विकासवादियों के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के अस्तित्व को संघर्ष योग्य बनाना है परन्तु रूसों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक की विभिन्न शक्तियों का विकास करना है जो बालक की स्वाभाविक क्रियाओं में सहायता प्रदान करके किया जा सकता है। शिक्षा का ध्येय यह है कि वह व्यक्ति को सबसे पहले "मनुष्य" बनाये. प्रकृतिवादी पूर्ण जीवन की तैयारी को शिक्षा का लक्ष्य मानते हैं। स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को पूर्ण जीवन के लिए
तैयार करना है इस प्रकार किसी भी शिक्षा की सफलता इस बात से आंकी जा सकती है कि वह किस सीमा तक व्यक्ति को पूर्ण जीवन के लिए तैयार करती है। नन ने मानव के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास को शिक्षा का लक्ष्य माना है।

प्रयोजन वादियों के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य– प्रयोजन परिवर्तन एवं गति में विश्वास रखता है। यह प्राचीनतम, प्रथाओं, परम्पराओं, समाज में प्रचलित रूढ़ियों, बन्धनों का घोर विरोधी है। व्यक्तियों को मूल्यों का रचियता मानने के कारण इसका विश्वास है कि विगत रूढ़ियों के सम्भ्रम को तोड़कर व्यक्ति खुले वर्तमान में सांस ले तथा परिस्थितियों के साथ अपनी निकटता को बनाये रखते हुए उज्जवल भविष्य का वरण करे। इस प्रकार प्रयोजनवादी शिक्षा शास्त्री एकमात्र विश्वास को ही शिक्षा का लक्ष्य मानते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन डीवी के अनुसार व्यक्तिगत रूप से शिक्षा का उद्देश्य दो प्रकार से बताया है। प्रथम व्यक्ति को मूल्यों तथा उन समस्याओं का निर्धारण करने में सहायता करना है जो उसके लिए तात्कालिक महत्व के हैं। "द्वितीय" व्यक्ति को इस योग्य बनाना कि वह इन मूल्यों तथा अनुमानों की सत्यता की जांच इनके प्रयोगात्मक परीक्षण द्वारा कर सके। डीवी आगे कहते हैं कि "शिक्षा की प्रक्रिया समायोजन की अनवरत प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य हर अवस्था में बुद्धिगत सामर्थ्य के रूप में होता है।'

यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य– यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य अच्छा जीवन है, साथ ही व्यक्ति को कुशल बनाना भी शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया है। शिक्षा का उद्देश्य वास्तविक जीवन को सुचारू रूप से जीने की कला सिखाना है व्यवह्मरिक जीवन को सुख पूर्वक जीने के लिए सामार्जिक एवं प्राकृतिक परिवेश का पूर्ण तथा समग्र ज्ञान आवश्यक है, जिससे व्यक्ति अपने वातावरण के

साथ समायोजित हो सके। यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य है "वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास" वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए तर्कपरक विवेक आवश्यक है। वास्तविक ज्ञान वही है, जो विवेक से युक्त हो।

अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य– इस दर्शन के अनुसार शिक्षा को विद्यार्थियों को इस तरह सहायता देनी चाहिए कि वह अपने में वह बन जाये जो वह बनना चाहते हैं। किन्तु शिक्षक की सहायता आदेशात्मक नहीं होनी चाहिए। उनके ऊपर कुछ थोपा जाना नहीं चाहिए। मनुष्य स्वतन्त्र है शिक्षा के द्वारा बालक को स्वतन्त्र बनाना, जिससे कि वह अपने जीवन के सम्बन्ध में पराश्रित न होकर स्वयं अपनी नियति का निर्धारण कर सके। मनुष्य अपने कृत्यों का चयन करने वाला अभिकरण है। इसमें चयन की स्वतन्त्रता है। अपने चयन का दायित्व स्वयं इसका है। अतः स्वतन्त्र. मनुष्य को निरन्तर पीड़ा की जिम्मेदारी किसी अन्य पर डालकर संतोष नहीं सकता। स्वतन्त्र चयन का फल पीड़ा है। वह अपने कृत्यों के फलागम का भार भावी जन्म पर भी नहीं डाल सकता। अस्तित्ववादी शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को इस अनिवार्य सतत् पीड़ा के लिये तैयार करना है।'' क्योंकि अन्य दर्शन तो फलागम को ईश्वर, नियति, कर्म, प्रकृति अथवा समाज पर छोड़कर इस पीड़ा से मुक्ति पा लेते हैं लेकिन अस्तित्ववादी के लिए कोई आश्रय नहीं है। पीड़ा का भोग उसकी नियति है, और यही मनुष्य के अस्तित्व का फलागम है।

निष्कर्ष – अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि पाश्चात्यवादियों के शैक्षिक उद्देश्यों का आज की वर्तमान परिस्थितियों में विशेष महत्व है जो बच्चों के स्वांगीण विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. मिश्र, एम.एम., साहित्य परिचय शैक्षिक उद्देश्य विशेषांक 1972, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ 25
2. डॉ० राधाकृष्णन, प्राच्यधर्म और पाश्चात्य विचार राज्यपाल एंन्ड संस, दिल्ली, (1970), पृष्ठ 420
3. एच०एच० हार्न "फिलोस्फी ऑफ एजुकेशन, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, (1927), पृष्ठ 102.
4. एच0एच0 हार्न ''दी साइक्लोजिकल प्रिंसिपल ऑफ एजुकेशन'' नेरमिलन, न्यूयार्क, (1906), पृष्ठ 57
5. रस्क, आर०आर०, "दी फिलोसफीकल बेसिस ऑफ एजुकेशन", यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन प्रेस, (1956) पृष्ठ 100.
6. रूसो, जे०जे०, "इमाइल', न्यूयार्क, (1940), पृष्ठ 13.
7. रपेन्सर, हबर्ट पुनः उद्यृत– एस एस. माथुर, "शिक्षा के सिद्धान्त", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, (1986), पृष्ठ 44.
8. नन, टी०पी०, "एजुकेशन इट्स डेट एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपल्स ', एडवर्ड एण्ड कम्पनी, लन्दन, (1930), पृष्ठ 13.
9. जॉन डीवी, "डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन", मैकमिलन, न्यूथार्क, (1916), पृष्ठ 60,
10. लक्ष्मीलाल के० ओड, "शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, (1990), पृष्ठ 89, 104, 105
11. डॉ० राधाकृष्णन, "प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार", राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, (1970).
12. लाल, रमन बिहारी (2001–2002) ''शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त'' रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
13. सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप (2006) ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'' आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
14. शर्मा, आर0ए0 (2015) ''शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार'', आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
15. पचौरी, गिरीश (2016), ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पदृिश्य'' आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

Study of personality traits with regard to life orientation among college students

Dr. Ramendra Kumar Singh
Department of Psychology
Maharaja College, Arrah (Bihar)

Abstract

With the growing amount of stress among students , a need was felt to investigate the personality factors with regard to positive life orientation. The aim of this study is to find out the association between persoanlity with regard to positive life orientation among college students. As a sample 50 college students (25 males and 25 females) in the age range of 18-24 years were selected through purposive sampling. For data collection as a tools personal socio demographic data sheet, Five factor questionnaire and positive life orientation questionnaire were used. Result shows that persoanlity traits are significantly associated with positive life orientation.

Key words: Positive life orientation, persoanlity

Introduction: The United States define youth as persons between the ages of 15 and 24 while in some other parts of the world it refers to the individuals in the age range from 15 to 30 years.Youth is best understood as a period of transition from the dependence of childhood to adulthood's independence and that is why as a category youth is considered being more fluid than other fixed age groups. It is a crucial segment of the society and forms the backbone of any nation. One of the most important aspects in the healthy development of youth is to see the trajectory about their future with an optimistic point of view. This perspective reduces the negativity of the developmental challenges and emphasizes the positivity of life skills as human qualities for adaptations to both routines and changes. Several researchers have dealt with the exploration of protective factors that tends to improve the development of individuals in various domains of everyday life.Among the various factors positive life orientation is one of them. Positive life orientation is an ability that keeps us positive during crisis. It helps people to maintain psychological balance, focus towards brighter side of situation and taking less impact of trauma in life. Everyone wants a good life but circumstances are never the same. In such situation some people can be able to balance their life but some cannot get over it. In that case we can say that positive life orientation is also related to individual's optimism, emotional vitality, emotional well-being and positive emotions. In some current researches positive orientation towards life events has been understood to consist of life satisfaction and optimism (Capapra and Steca, 2005). Positive life orientation differs significantly from optimism as a term. In the present concept of positive life orientation, it is a positive assessment of the current events, whereas optimism is the anticipation of a positive outcome of the future events. Positive life orientation is a predisposition to selectivity focus one's attention on the brighter side of any situation (Agrawal et al. 1995).Operationally, positive life orientation may be defined as

one's ability to emphasize on the positive aspect of crises, make positive comparison and maintain a positive attitude towards life in general, carrying out task in an easy way without giving much stress on any problem or situation occurring in one's life or process of living. Positive life orientation is essential for better emotional and behavioural adjustment. Positive life orientation is related to various factors. Among which personality is one of them. Lucas and Futija (2000) showed the extroversion and neuroticism, two of the big 5 factors of personality (openness, conscientiousness, extroversion, agreeable, neuroticism) were closely related to the characteristics of happiness. Shiota, Keltner and John (2006) found similar results with regards to these big five personality factors and link positive affect to adult attachment styles. Bahiraci et al. (2012) in their research found that there is a significance relationship between all personality dimensions and happiness. Roy and Agrawal (2013) studied if the parents' Ppositive Life Oorientation (PLO) had any influence on PLO of their children. Findings indicated that PLO is learnt from parents' attitude. However, children's view of the world was found more influenced by mothers' attitude about the world. In another study (Agrawal, Shukla & Hai, 2015), PLO significantly correlated with self-esteem and sense of control among young adults. Moreover, PLO was found to be significantly moderating the relationship between self-esteem and happiness. This suggested that when PLO is high, the strength of relationship between self-esteem and happiness is stronger and vice versa. In Indian set up as well as in the western perspective very few studies were conducted on the positive life orientation with regard to personality traits. So, filling the gap in knowledge this study was carried out with an intent to study the nature of positive life orientation and its relation with personality traits in the college students.

Hypotheses:

Ho_1 - There would be no significant difference in personality traits between high and low positive life orientation college students.

Ho_2 - There would be no significant difference in positive life orientation with respect to gender among college students.

Ho_3 - There would be no significant correlation between personality traits and positive life orientation.

Methods:

This study follows cross-sectional ,comparative and correlational research design. Study was carried out in the different colleges .

Sample:

The sample comprised of 50 college students (25 males and 25 females) in the age range of 18-24 years. Following inclusion and exclusion criteria were followed during selection of the sample. Sample was selected by using purposive sampling.

Inclusion criterion: -

1. Students of either gender was taken in the study.
2. Age of the students ranging from 18 - 24 yrs.
3. Students pursuing their graduation or post graduation

Exclusion criterion : -

1. Subjects who have personal and family history of any significant mental and neurological illness.

2.Students who are non-cooperative.

TOOLS USED: -

Following tools were used for the data collection.

Neo-Five-Factor Inventory: - Hindi version The NEO-FFI-3 is developed by Paul T. Costa and Robert R. McCrae consisted of 60- item psychological personality inventory that assesses based on the five -factor model: Openness to Experience, Conscientiousness, Extraversion, Agreeableness, and Neuroticism. Participants are asked to select the response that best represents their opinion on a 5-point scale: 0-Strongly Agree, 1-Agree, 2-Neutral, 3-Disagree, 4-Strongly Disagree.

Scale of Positive Life Orientation by Agrawal and Dalal (1995):

This scale consisted of 11 items about the tendency among people to interpret life situations positively or negatively. Rated on four-point rating scale, the definitions of the scale points are 1= Not at all, 2= Somewhat, 3= Much and 4= Very much. The internal consistency of PLO scale is 0.86, the split-half reliability is found to be 0.62 and the test-retest reliability coefficient obtained was 0.79. Thus, all three reliability

scores are high and suggest that the PLO scale is a highly reliable scale.It was administered in many of the populations, so it is a valid scale for measuring for orientation of any individual.

Procedure:

According to inclusion and exclusion criteria sample was selected. Informed consent was taken from the students and other stakeholders (if necessary). The personal information were collected from students through using especially designed socio-demographic and personal data sheet. After this selected tools were administered on each sample as per the standardized procedure given in the manual. All ethical guidelines given by APA (2016) were followed.

Statistical analysis:

The collected data were analysed by the statistical software – Statistical Package For

Social Sciences (SPSS) version 22 (for windows). Data were analysed by using chi square and Pearson correlation method .

Result:

This study was carried out with intent to study the personality traits with regard to positive life orientation among youths. Result of this study is presented in following sub headings:

Socio demographic characteristics of the sample

The mean age of the sample is 21.65yrs (SD= 3.12 yrs), belongs to urban area of habitat(61%), pursuing post graduation (65%), Hindu religion. Most of the sample were belongs to nuclear family setup (70%) and middle family income group.

Comparison of personality traits between high and low positive life orientation groups of college students

Table: 1-A Comparison of neuroticism traits between high and low positive life

orientation college students

		Neuroticism			
		Low	Average	High	
PLO	High	18	6	3	12.23**
	Low	6	5	12	

Above table-1A shows that there is significant difference between high and low positive orientation groups with regard to neuroticism (X^2 =11.24 p>.01). Most of the studnets of high positive life orientation group have low level of neuroticism.

Table: 1-B Comparison of openness traits between high and low positive life orientation college students.

		Neuroticism			
		Low	Average	High	
PLO	High	6	11	10	3.17 (NS)
	Low	10	6	7	

Above table-1B shows that there is no significant difference between high and low positive orientation groups with regard to openness (X^2 =3.17).

Table: 1-C Comparison of extroversion traits between high and low positive life orientationcollege students

		Neuroticism			
		Low	Average	High	
PLO	High	6	5	15	14.23**
	Low	10	7	14	

Above table-1C shows that there is significant difference between high and low positive orientation groups with regard to extroversion (X 2 =14.74 p>;.01).

Table: 1-D Comparison of agreeableness traits between high and low positive life orientation college students

		Neuroticism			
		Low	Average	High	
PLO	High	5	11	11	.98 (NS)
	Low	5	8	10	

Above table-1D shows that there is no significant difference between high and low positive orientation groups with regard to agreeableness

Table: 1-E Comparison of conscientiousness traits between high and low positive life orientation College students.

		Neuroticism			
		Low	Average	High	

PLO	High	9	7	5	5.98*
	Low	5	9	15	

Above table-1E shows that there is no significant difference between male and female students groups with regard to conscientiousness (X 2 =.94 p>.05).

Table: 2- Comparison of positive life orientation between male and female students

Positive life orientation

		Low	High	
Sex	Male	10	15	.39
	Female	12	13	

Above shows that the there is no significant difference in positive life orientation level between male and female students (X^2 =.39,)

Table-3: Correlation between personality traits and Positive life orientation (PLO)

	Openness	Extroversion	Agreeablness	Conscientiousness	Neuroticism
PLO	.13	.37**	.86	.38**	-.56**

Above table shows that Positive life orientation positively and significantly correlated with extroversion(r=.36) and conscientiousness(r=.38) and negatively correlated with neuroticism (r=-.56).

Discussion:

Result shows that students with high positive life orientation are more extroverted, less anxious and more conscientious than counter groups. This finding is also supported by earlier studies (Carver & Conor- Smith, 2010).They reported that

the lower the level of impairment and emotional instability of the person, the higher the degree of positive expectations regarding future events and the higher the self-esteem. Therefore, individuals with low scores on optimism and self-esteem tend to have high scores on Neuroticism, i.e., when they experience intense emotional pain, excessive anxiety, difficulty tolerating the frustration caused by the non-fulfilment of desires, they provide maladaptive coping responses and tend to have a pessimistic view of the future (Carver & Conor- Smith, 2010;).Between optimism and the personality traits of extraversion and agreeableness, there were weak, but positive correlations, demonstrating that higher scores on these factors predict positive expectations for future events. Thus, optimistic individuals, tend to present more characteristics such as agreeableness, empathy, kindness, organization, and determination.Finding of present study shows that there is no significant difference between male and female with regard to positive life orientation level. Due to, maybe they both faced equal level of challenges and problems in the society or other level The reason for this might be equal level of opportunity to both male and female. Result shows that resilience is positively correlated with positive life orientation, extroversion, openness and conscientiousness but

negatively correlated with neuroticism. Positive life orientation positively correlated with resilience, extroversion and conscientiousness and negatively correlated with neuroticism .Result shows that extroversion is significantly positively correlated with conscientiousness . Some earlier studies findings conducted in this regard also supported the present study findings (Bradshaw,1997;Ewen,1998).That neuroticism was negatively associated with psychological resilience and other predictor variables is not surprising as well. This finding confirmed the earlier literature that neuroticism has an inherent negative denotation (Bradshaw 1997) which is associated with negative emotional states and feelings such as anxiety, anger, guilt, and depressed mood (Matthews & Deary 1998). In the present study, the students with neurotic personality reported being stressed easily and worrying about things and as a result of these, they may not be resilient probably because of their poor reactions to environmental stress and are more likely to interpret ordinary situations as threatening and minor frustrations as hopelessly difficult as earlier reported by Goleman (1997).

Conclusion: Positive life orientation is significantly associated with positive life orientation.

Refrenceses:

Carver CS & Connor Smith J(2010). Personality and coping. *Annual Review of Psychology*.61.:679-704

Ewen, R. B. (1998). *Personality: A topical approach: Theories, research, major controversies, and emerging findings.* Lawrence Erlbaum Associates Publishers.

Lucas, R. E., & Fujita, F. (2000). Factors influencing the relation between extraversion and pleasant affect. *Journal of Personality and Social Psychology, 79*(6), 1039–1056.

Matthews, G., & Deary, I. J. (1998). *Personality traits.* Cambridge University Press

Shiota, M. N., Keltner, D., & John, O. P. (2006). Positive emotion dispositions differentially associated with Big Five personality and attachment style. *The Journal of Positive Psychology, 1*(2), 61–71.

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

PARENTING STYLE ANDPERCIEVED STRESS AMONG STUDENTS

Prof. Shailendra Kumar Singh
Department of Psychology
M.B.S.PG College, Gangapur, Varanasi (UP)

Abstract

Present study was intended to study the association between perceived parenting style and stress among the students. As a sample 100 students within the age range of 14 -19 yrs of either sex were selected by using the purposive sampling method.As a tools of data collection Perceived parenting style questionnaire(Divya,2000), and perceived stress scale (S. Cohen,1983) were administered. Result shows that prevalence of stress among students is 31% and perceived parenting style is significantly correlated with perceived stress.

Key words: Perceived parenting style, Perceived stress.

Intorduction: There are different types of parenting styles existed in our society. Some parenting styles are strict and some are very cooperative to their children and some are not taking care of there children. So, from such different observations from the society there aroused a curiosity to study whether there is any relationship between perceived parenting style and stress. Basically, the study is to understand how the students perceive there parenting style and how it relates to stress of each individual students in the present scenario. The styles were divided into 3 main domains they are authoritative parenting style, authoritarian parenting style and permissive parenting style. The three-parenting style mention in the study were totally different from each other. Diana Baumrind, a developmental psychologist was the one who first thought about parenting styles and he classified into different domains. Authoritative parents rely on positive reinforcement and infrequent use of punishment. Parents are more aware of a child's feelings and capabilities and support the development of a child's autonomy within responsible limits. There is given and taken atmosphere involved in parent child communication, control and support are balanced. Baumrind found that children raised in an authoritarian style home were less cheerful, more moody and more vulnerable to stress. These children also demonstrated passive hostility. Authoritative parenting would be the parents harshly punishing their children and disregarding their children and disregarding their children's feelings and emotion of students. The permissive parents say that their children are free from external constraints and tend to be highly responsive to whatever the child want at the moment. Children of these group are generally happy but sometimes show low level of self-control and self-reliance because they lack structure at home. Jason Coleman (2019) the study is like an experiment the youth were separated from there biological parents and place them in a high risk for behavioural, emotional, social and academic problems and contribute parenting stress to them.Tay Ee Lin, Tam Cai Lian (2010) found that more mothers prefer authoritative parenting compared to fathers and parenting style are not related to adolescent's stress level. They found that stress level has no gender difference.Now a

days stress problems becomes a major problem among students, there are lots of factors which influence the stress in this study. So, I would want to explore that the parenting style affects the stress level of student or not. This will be helpful in the psychosocial management of the stress problem. Very few studies were done in this regard in this area. So, I would like to carry out this work.

Hypotheses:

Ho_1: There would be no significant correlation between domains of perceived parenting style and stress level.

Methods:

This study is based on comparative and correlational research design.

Sample:

Sample of the present study is consisted of 100 students within the age range of 14 -19 yrs. Sample were collected using the purposive sampling method.

Following inclusion and exclusion criteria were followed during the selection of sample.

Inclusion Criteria

- The students get formal education .
- Age from 1419 yrs.
- The students can understand and respond on the scale items.
- Students of either gender.
- The students living with their parents since childhood.

Exclusion criteriia

- Students not cooperating
- Students who have the significant personal and family history of neurological, psychological and physical illness.

Tools used:

The data were collected using the following psychological measures

- Socio demographic data sheet especially designed by the researcher. It includes all the relevant socio demographic and personal information as per the purpose of the study.
- Perceived parenting style Scale (Divya and Dr. K Manikandan, 2013)
- Perceived stress Scale (Sheldon Cohen ,

Procedure of the data collection: As per the inclusion and exclusion criteria the sample were selected. After getting the informed consent from all the stakeholders the selected tools were administered as per the manual. All the ethical guidelines were followed.

Statistical analysis; The data obtained from the participants were analyzed using SPSS (version 26). The relation between parenting style and stress among students were examined using correlation analysis. For comparison Chi square and percentage were used for discrete data.

Result:

Findings of this study is presented in the following sub headings.

Perceived Stress profile of students:

Result shows that 31% of the students felt high level of stress followed by average level of the stress(52%) . The stress faced by the students were classified to different levels like high, average and low. So, prevalence of the stress among students is found to be 31%.

Table-1:Profile of perceived parenting style of the students:

Perceived parenting style	N	%
Authoritative	14	14
Authoritarian	44	44
Permissive	42	42

Above table shows that most prevalent parenting style in Arrah district is authoritarian (44%) followed by permissive (42%).

Table-2 :Correlation between parenting style and stress

Perceived parenting style	Perceived stress
Authoritative	-0.29**
Authoritarian	.39**
Permissive	.24*

Above table 2 shows that there is significant negative correlation between authoritative parenting style (□= -0.29, P<.01), and positive correlation between stress and authoritarian, permissive parenting style (□=0.39, □= 0.24 P>.01). So, here the null hypothesis (Ho1) is rejected i.e. there would be no significant difference between domains of perceived parenting style and stress.

Discussion:

The perceived stress profile indicates that the most of the students were facing average level of stress. Findings of the present study also shows that 31% of the students felt high level of stress. Stress is ubiquitous, not only in western countries like American society but around the world (Schetter,1990). Stress has various negative consequences of physical and mental health. From other study it found that a remarkable amount of anxiety will be generated among the students due to immense pressure exerted by the parents and teachers to execute beyond the students capabilities , is a great threat to the children self esteem (Prasanna,2016).The main agenda of the study was to find whether there is any significant difference in perceived stress with regard to perceived parenting style among students. Result of this study shows that students who felt authoritarian parenting style they felt more stress level than the others. In general, increased parenting stress was associated with greater use of authoritarian and permissive parenting styles, as well as more problems with behaviour regulation for children. Authoritarian and permissive parenting styles were associated with poorer child executive functioning (Hutchison L, Feder M et.al, 2016). From the study it shows that the greater number of stresses from the total population is faced by the authoritarian and permissive parenting style and very less and no stress is faced by authoritative parenting style. Authoritative parenting style is considered to be one of the best parenting exist in the society. The result showing parenting style and stress among students

indicates that the students who approached with authoritative parenting style may face average amount of stress when compared with high, average and low. In authoritarian parenting style they face high stress as compared with authoritative and permissive parenting style. The parenting style and stress level will be according with the peer pressure and school performance.The family appeared to be a major source of stress for many students. Although family was clearly a source of stress for many students, it was also a source of social support. Psychological stress is defined as a particular relationship between the persons and the environment that is appraised by the person as taxing or exceeding his or her resources and endangering his or her wellbeing (Lazarus and Folkman, 1984).

Conclusion: Perceived parenting sty;e is significantly correlated with stress level of the students.

Referenceses:

Hutchison, L.,Feder, M., Abar, B., & Winsler, A. (2016). Relations between parenting stress, parenting style, and child executive functioning for children with ADHD or autism. *Journal of Child and Family Studies, 25*(12), 3644–3656.

Lazarus, R., & Folkman, S. (1984). Stress, Appraisal, and Coping. New York: Springer.

Schetter, C.(1990). Differentiating the cognitive and behavioral aspects of social support. In B. R. Sarason, I. G. Sarason, & G. R. Pierce (Eds.), *Social support: An interactional view* (pp. 267–296). John Wiley & Sons.

Tay Ee Lin, Tam Cai Lian (2010).The relationship between perceived parenting style and stress level among Malasiyan secandary school students.***Sunway Academic Journal;*** Vol. 7, : 89-104

Nav Jyoti, Vol. 10, No. 20, Jan.-June 2022 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

महिलाओं के शिक्षा में डॉ० अम्बेडकर का योगदान

शोधकर्त्री
प्रियंका राय
एम. ए. समाजशास्त्र

सारसंक्षेप

समाज में हर स्तर पर शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। उसी पर मानव जाति की प्रगति की नींव खड़ी है। शिक्षा का नाम सुनते ही हमारी दृष्टि विद्यालय, महाविद्यालयों में दी जाने वाली उपाधियों की ओर जाता है। प्राचीन मनीषियों से लेकर श्री अरविन्द गाँधी जी, विनोबा जी तथा डॉ० अम्बेडकर ने शिक्षा को एक दायरे में न बाँधकर उसके व्यापक गुणों की चर्चा की है। शिक्षा के बारे में डॉ० भीमराव के विचार क्रान्तिकारी तथा आत्मवर्णित रहा है, इस रूप में कि शिक्षा व्यक्ति की आत्मा का निर्माण करती है और उसका समय–समय पर मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान करती है। शिक्षा का क्रान्तिकारी स्वरूप वह इसलिये मानते थे कि शिक्षा मनुष्य को समाज में रहने योग्य बनाती है और उसे जीवनयापन के साधन सुलभ कराती है और साथ ही शिक्षित व्यक्ति ही अपने अधिकारों की मांग कर सकता है तथा उसके लिये संघर्ष कर सकता है।

मुख्य शब्द– शिक्षा, अहितकारी, वंचित, मानवीय अधिकार, समाज, विकास, बाधित, गुलामी।

प्रस्तावना

अम्बेडकर की मान्यता थी कि शिक्षा ही एकता, बन्धुता और देश प्रेम के विवेक को जन्म देती है। सभ्यता और संस्कृति का भवन शिक्षा के स्तम्भ पर ही बनता है और शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करती है। शिक्षा वह पहली सीढ़ी है जिसे पढ़कर समाज के अहितकारी तत्वों से संगठित होकर लड़ा जा सकता है। उन्होंने देश कि शिक्षा से वंचित करोड़ों दलितों को शिक्षित बनो का नारा दिया। अम्बेडकर का मानना था की शिक्षा वह अमृत है जिसे सभी पी सकते हैं चाहे वह बूढ़ा, जवान तथा बच्चा हों, उन्होंने कहा बिना संघर्ष के मानवीय अधिकार नहीं प्राप्त हो सकते है। इसलिये संगठित होकर संघर्ष करो और संघर्ष के लिये शिक्षित बनो। ज्योतिबा फुले तथा सावित्री बाई फुले के विचार से प्रेरित होकर अंबेडकर ने समाज के पिछड़े एंव वंचित वर्गों में शिक्षा का प्रसार किया। फुले ने ब्रिटिश शासन पर यह आरोप लगाया कि वह जनसाधारण की शिक्षा की अनदेखी करके बहुत सारा धन उच्च शिक्षा के विस्तार पर खर्च कर रहा था। डॉ अंबेडकर उच्च शिक्षा का समर्थन करते थे साथ ही उनका यह भी कहना था कि उच्च शिक्षा का लाभ उच्च जातियों तक सीमित नहीं रहना चाहिए निम्न जातियों को भी इसका लाभ मिलना चाहिए। उनका मानना था कि निम्न जातियों में भोजन और वस्त्र की समस्या नहीं है बल्कि हीनता की भावना समस्या की जड़ है जो उनके विकास को बाधित कर दिया है और दूसरों का गुलाम बना दिया है।

अम्बेडकर द्वारा शिक्षा के प्रति कार्य–

अंबेडकर ने 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा एंव 1928 में डिप्रेस्ड क्लासेज एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की, इन छात्रावासों ने अश्पृस्य छात्रों को प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने हेतु वितीय सहायता प्रदान की जाती थी लेकिन यह वर्ग अभी तक उच्च शिक्षा से दूर ही थे। इन विधार्थियों को उच्च शिक्षा दिलाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर डॉ अंबेडकर ने जुलाई 1945 को पीपुल्स एजुकेशन सासोयटी की स्थापना की । सन 1946 को बम्बई में सिद्धार्थ कालेज खोला सन् 1950 में औरंगाबाद में मिलिंद महाविद्यालय की स्थापना जिसमें कला विज्ञान तथा वाणिज्य की पढ़ाई शुरू की गई। 1958 में डॉ अंबेडकर ने मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की नींव रखी। आजादी के बाद जब संविधान लागु हुआ तो आर्टिकल 46 के अनुसार दलितो के शिक्षा की जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी गई। अंबेडकर राज्य प्रायोजित शिक्षा के पक्षधर थे।

निजी विद्यालय तथा फ्री वाले शिक्षा के सख्त विरोधी थे। शैक्षणिक संस्थानों में 1965 में दलित छात्रों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। दलितों के लिए छात्रवृतियों की व्यवस्था की गयी। अंबेडकर ने कहा पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी का उद्देश्य केवल शिक्षा प्रदान करना ही नहीं है बल्कि छात्रों को ऐसी शिक्षा देना है जो बुद्धिमता नैतिकता एवं सामाजिक लोकतंत्र के विकास में सहायक हो सके। आज के आधुनिक भारत को इसकी जरूरत भी है और भारत के सभी शुभचिन्तको को इसी लक्ष्य को आगे बढ़ाना चाहिए ।
अंबेडकर चाहते थे कि प्रोफेसर शिक्षक को हमेशा ज्ञान की तलाश में रहना चाहिए और सत्य की खोज करते हुए श्रेष्ठ आचरण करना चाहिए। डॉ अंबडेकर विश्वविद्यालयों को ज्ञान का पावन स्थल बनाना चाहते थे न कि क्लर्क तैयार करने वाली वर्कशॉप बन कर रह जाए। लेकिन आज के उच्च शिक्षण संस्थान राजनीति का केंद्र बन कर रह गए। विश्वविद्यालयों में शिक्षा देने का कार्य कुछ जाति विशेष तक ही सिमट कर रह गया है जातिवाद का अड्डा बन गया है। वर्तमान समय में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धि का विश्लेषण करे तो पाते है कि शैक्षणिक स्तरों के सम्बन्ध में अनुसूचित जाति के छात्रों की जनसंख्या की गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम है। दलित वर्ग अन्य जातियों की तुलना में अर्थपूर्ण ढंग से पीछे हैं। विद्यालय में नामांकन एंव पढाई बीच में छोड़ने का दर दलितों में ज्यादा है। व्यावसायिक पाठयक्रम में दलितों की उपस्थिति बहुत कम है। दलितों में शैक्षणिक वंचना एंव सामाजिक पक्षपात, जिसके वे अधीन होते है उन ऐतिहासिक एंव संचयी सामाजिक आर्थिक एंव संरचनात्मक वंचनाओं पर अधिकांशतया आरोपित की जाती है जिसको उन्होंने सदियों तक झेला है। अनुसूचित जाति के छात्रों के कम स्कूल नामांकन के लिए अनुसूचित जाति परिवारों की निर्धनता मूलरूप से उतरदायी है।

दलितोत्थान के लिए शैक्षिक कार्य–

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वागीण विकास समाज की चतुर्मुखी उन्नति होती है। शिक्षा मानसिक शारीरिक भौतिक अध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओ का निरन्तर सामंजस्यपूर्ण विकास करके व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार के योग्य बनाती है। शिक्षा मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्तियो का शोध करके उसे सफल सामाजिक व्यक्ति बनाती है। डॉ. अम्बेडकर ने इसलिए सबसे अधिक शिक्षा पर जोर दिया उनके अनुसार शिक्षा मनुष्य की एक विशेष योग्यता है तथा समानता के शिखर पर ले जाने वाली पहली कड़ी है। अम्बेडकर के जीवन काल मे दलित–शोषित एवं अछूत वर्ग हाशियो की जिन्दगी जी रहा था। अछूतो का सार्वजनिक स्थान तालाब मन्दिर तथा सड़के अछूत वर्ग के लिये निषेध थे। अशिक्षा व घोर अज्ञानता के अन्धकार मे डूबा दलित समाज गुलामी शोषण उत्पीड़न अन्याय एवं जातिवाद जैसे गम्भीर अमानवीय कृत्यो के विरूद्ध संघर्ष करने में असमर्थ था। डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवनकाल मे बहुत ही कठिनाईयो का सामना करते हुए प्रारम्भिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक का सफर तय किया था। उन्होने उच्च अध्ययन प्राप्त करके भारत ही नहीं बल्कि अपने समाज का भी गौरव बढ़ाया और देश–विदेश मे सम्पूर्ण मान सम्मान प्राप्त किया। अम्बेडकर द्वारा दलितोत्थान के लिए स्थापित शिक्षण संस्थाये शिक्षा व शिक्षण के आधारभूत माध्यम शिक्षण संस्थाएं ही होती है। इसी कारण अम्बेडकर ने शिक्षणालयो को स्थापित करने मे प्राथमिकता दी थी। अम्बेडकर ने 20 जुलाई 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया जिसमे मुख्य उद्देश्यों मे से दलित व पीड़ित वर्गो मे शिक्षा के प्रसार के लिय मीनम कार्य किये–

1 छात्रावास स्थापित करना, 2 कृषि एवं औद्योगिक विद्यालय स्थापित करना 3 पुस्तकालयो की स्थापना करना था। इस सभा ने दलित समाज के लोगों में स्वाभिमान जगाया। सभा के विद्यार्थियो ने विंग विद्यार्थी शाखा ने एक पत्रिका चलायी जिसका नाम था – सरस्वती विलास विद्यार्थी वर्ग ने बम्बई मे एक वाचनालय स्थापित किया। लोगो को शराब, जुए आदि से रोकने तथा बेकार घूमने–फिरने के बजाय खेलने–कूदने मे मन लगाने के लिए महार हॉकी क्लब स्थापित किया। उन्होने दलित व अछूत बच्चो की प्राथमिक एवं

माध्यमिक शिक्षा से ही सन्तुष्ट नहीं थे अपितु उनको शिक्षा के शिखर पर भी देखना चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर ने 8 जुलाई 1945 को पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। इस संस्था ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया इस संस्था के माध्यम से सबसे पहले डॉ. साहेब ने भगवान बुद्ध के नाम पर बम्बई में सिद्धार्थ कालजे की नींव रखी जो कि वर्तमान समय मे भारत के अग्रणी महाविद्यालयो मे गिना जाता है। शुरूआत मे इसे क्यूज रोड पर कतियो में चलाया गया लेकिन बाद मे फोर्ट क्षेत्र मे इसके लिये दो भवन खरीदे गए जिनके नाम मेकना बिल्डग और अल्बर्ट बिल्डिंग थे। खरीदने के बाद इन बिल्डिंगो के नाम बदल दिए गये थे। प्रथम बिल्डिंग का नाम बुद्ध भवन और दूसरी बिल्डिंग का नाम आनन्द भवन रखा गया। क्यूज रोड़ से 1951 को सिद्धार्थ कॉलजे को इन भव्य भवनो मे स्थान्तरित किया गया। सिद्धार्थ कॉलजे समूह के अन्तर्गत उक्त दोनो भवनो में संचालित निम्नलिखित शिक्षण संस्थाये निरन्तर चल रही हैं। सिद्धार्थ कॉलेज की विभिन्न शाखाएँ जैसे सिद्धार्थ कॉलजे ऑफ कॉमर्स एण्ड इकोनामिक्स बम्बई, सिद्धार्थ कॉलजे ऑफ लॉ बम्बई, कॉलजे ऑफ जर्नलिज्म बम्बई, सिद्धार्थ इन्स्टीटयूट ऑफ कॉमर्स बम्बई, सिद्धार्थ नाइट हाई स्कूल बम्बई डॉ. अम्बेडकर ने दूसरा कॉलजे औरगांबाद मे स्थापित किया जिसका नाम बौद्ध राजा मिलिन्द के नाम पर मिलिन्द कॉलेज रखा। इस कॉलेज के लिए डॉ. अम्बेडकर ने एक विस्तृत भूभाग निजाम हैदराबाद से प्राप्त किया था। इस विस्तृत भूक्षत्रे के एक भाग का नाम डॉ. अम्बेडकर ने नागसेन वन रखा था। नागसेन सम्राट मिलिन्द के गुरू थे। वे एक सुयोग्य भिक्षु थे। यह कॉलजे भी महाराष्ट्र के अग्रणी कॉलजे मे एक है। मिलिन्द कॉलजे की विभिन्न शाखाएँ – मिलिन्द कॉलजे ऑफ आट्र्स औरंगाबाद, मिलिन्द कॉलजे ऑफ साइन्स औरंगाबाद, मिलिन्द मल्टीपर्पज हाई स्कूल औरंगाबाद। तृतीय कॉलेज ग्रुप के अन्तर्गत पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी ने डॉ. अम्बेडकर के नाम पर कॉलजे की स्थापना की थी। इस समूह मे निम्नलिखित कॉलजे है। अम्बेडकर आर्टस साइन्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज महाड़, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर कॉलजे ऑफ कॉमर्स बड़ाला, अम्बेडकर कॉलजे ऑफ लॉ औरंगाबाद, अम्बेडकर कॉलजे ऑफ आर्टस एण्ड कॉमर्स औरंगाबाद । सोसाइटी द्वारा स्थापित और संचालित प्रमुख महाविद्यालय है। वर्तमान मे भी उनके नाम पर देश के हजारो शैक्षिक संस्थाएं विद्यालय छात्रावास पुस्तकालय एवं वाचनालय व विश्वविद्यालयों का संचालन हो रहा है। इसका एक उदाहरण उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उनके नाम पर लखनऊ मे बाबा साहब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है। इसी तरह उनकी जन्म भूमि महूँ जिला इन्दौर (म.प्र.) मे डॉ. अम्बेडकर जी पर नेशनल इन्सटीटयूट ऑफ सोशल साइन्सेज स्थापित किया गया है। वास्तव मे इस तरह के शैक्षणिक संस्थानो की स्थापना द्वारा अम्बेडकर के द्वारा किये गये शैक्षिक चिन्तन के प्रयासो को जारी रखा जा सकता है।

नारी शिक्षा .लगभग सभी समाज सुधारक इस बात को स्वीकार करते हैं कि नारी समाज के उत्थान के बिना आदर्श समाज की संरचना नहीं हो सकती है और न तो अच्छे राष्ट्र का निर्माण ही सम्भव है। परन्तु हमारे देश के बहुतायत समाज सुधारक समाज सुधार की इस मूल भावना को या तो समझ नहीं पाए या समझने के बावजूद इस अवधारणा के अनुरूप कार्य करने में असफल रहे अथवा इन समाज सुधारकों ने पूर्ण निष्ठा एवं अपेक्षित लगन से सतत प्रयास इसलिए नहीं किए क्योंकि सामान्तावादी विचारधारा वाले शक्तिशाली वर्ग का उन्हें कोपभाजन बनने का डर था। बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर ने मानव समाज के उत्थान–पतन सम्बन्धित इतिहास का गहन अध्ययन किया था। इसी लिए वह इस समस्या की मूल जड़ में गए और नारी समाज की स्थिति में सुधार के लिए सराहनीय प्रयत्न किये। वह जानते थे कि भारतीय समाज की नारी सदियों से शोषित, प्रताड़ित, अपमानित एवं अधिकार विहीन रही हैं चाहे वह किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय या धर्म से सम्बन्धित क्यों न रही हो और तब एक नारी समाज के उत्थान हेतु जिसकी जनसंख्या लगभग 50 प्रतिशत है, अलग से कानून नहीं बनाये जायेंगे तब तक नारी वर्ग का सुधार नहीं होगा और

देश में आदर्श समाज की स्थापना का सपना पूरा नहीं होगा। मनु की व्यवस्था जिससे पूरा भारतीय समाज प्रभावित है, इसमें नारी को कोई अधिकार न देकर शूद्रों की तरह केवल सेविका का ही स्थान दिया गया। यही हमारे समाज के पतन और देश की परतंत्रता का मुख्य कारण रहा है। बाबा साहेब ने इस तथ्य को समझा कि नारी– समाज के उत्थान के बिना देश की आजादी का सपना व्यवहारिक रूप से पूरा नही होगा। इसीलिए उन्होंने सर्वप्रथम देश की जनसंख्या के 80 प्रतिशत हिन्दू समाज की नारी के उत्थान को लक्ष्य बनाकर हिन्दू कोड बिल के नाम से विधान बनाया जो आज भी नारी उत्थान में सहयोग कर रहा है । बौद्ध धर्म नारी शिक्षा के प्रति अत्यन्त उदार था। यही उदारता हमें नारी शिक्षा के प्रति डॉ० अम्बेडकर में भी देखने को मिलती है। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य नारी को विदुषी बनाना नहीं बल्कि नैतिक और धार्मिक शिक्षा देना था किन्तु डॉ० अम्बेडकर उन्हें विदुषी बनाने के साथ ही साथ नैतिक बनाने के पक्ष में हैं। धार्मिक शिक्षा को उन्होंने विशेष महत्व नहीं दिया है। संगीत और शिल्प कला आदि में भी वे नारियों को प्रोत्साहित करते दिखायी देते हैं। डॉ० अम्बेडकर चाहते हैं कि नारियाँ अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति करें और समाजोत्थान में अपना योगदान दें। वे सच्ची गृहिणी बनकर जीवन निर्वाह करते हुए पुरुषों की भाँति स्वतन्त्रता का जीवन जिएं। बौद्ध काल में नारी शिक्षा की स्थिति ठीक थी लेकिन बाद में दूषित हो गयी। डॉ० अम्बेडकर उस दूषित स्थिति से नारी को मुक्त करने के पक्षधर थे।

डॉ० अम्बेडकर लड़कों की शिक्षा से अधिक लड़कियों की शिक्षा को महत्व देते थे क्योंकि एक स्त्री पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है। दोनों की हाई स्कूल तक की शिक्षा में एक रूपता होनी चाहिए लेकिन हाई स्कूल के बाद नारी शिक्षा में गृह जीवन की उपयोगी बातों का भी समावेश होना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर लड़कियों को ऐसी गृह शिक्षा देने के पक्ष में थे जिससे वे अपने परिवार का सफलतापूर्वक संचालन कर सकें और परिवार का संरक्षण कर सकें। डॉ० अम्बेडकर ने नारी शिक्षा के प्रति अपने समर्पण को स्पष्ट करते हुए न केवल संविधान में व्यवस्था दी बल्कि उसे व्यावहारिकता का जामा भी पहनाया । व्यावहारिक रूप से संविधान में प्रदत्त अधिकारों एवं हिन्दू कोड बिल के कारण आज भारतीय समाज में सहस्रो वर्षों बाद भी नारी समाज के सुधार एवं उत्थान का कार्य काफी प्रगति पर है जिससे एक आदर्श समाज की स्थापना एवं संरचना का कार्य प्रारम्भ हो गया है। राष्ट्रीय विकास की गति में तेजी आ रही है और बाबा साहब का सपना साकार हो रहा है। सच्चे अर्थों में नारी समाज के उत्थान हेतु बाबा साहब ने जो कार्य करके आदर्श–राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दिया है भारत का नारी समाज उसे सम्मान के साथ युगो–युगों तक स्मरण करता रहेगा।

निष्कर्ष

डॉ अंबेडकर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट है कि जिस चीज को वे दलितो की प्रगति का दुश्मन मानते है वही अशिक्षा निर्धनता मानसिक प्रताड़ना समाज में आज भी व्याप्त हैं। प्रो. विवेक कुमार ने अपनी पुस्तक में दलित साहित्य एव दलित लेखको का वर्तमान हाल का बड़ा ही तर्कपूर्ण विश्लेषण किया है। दलित लेखक एवं दलित साहित्य पर ये आरोप लगते है एवं निन्दा होती है कि वे अन्य सभी साहित्य में कमी निकालते है नकारात्मक दृष्टिकोण हावी है। दलित साहित्य में पुनरावृति हो रही है जबकि सच्चाई यह है कि लेखक या लेखन में वही झलक होती है जो उसकी चेतना का हिस्सा बनता है जो उसने अपने उपर झेला तथा देखा है। इस सन्दर्भ में समाज शास्त्री राबर्ट किंगमर्ट न का यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि सामाजिक स्तरीयकरण के कारण सामाजिक समूह–समूहो सामाजिक मूल्यों, नैतिकता, आचरण आदि की ओर भिन्न–भिन्न मात्रा मे उन्मुख होते है। सभी में इनके प्रति एक सी चेतना नहीं होती। दलित समुदाय की चेतना का विकास सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में वचंनाओं के आधार पर होता है, इन वंचनाओं में सामाजिक वंचना अत्यन्त प्रभावशाली भूमिका अदा करती है। जो

लेखको के साहित्य मे दिखाई देता है। दलित लेखक अनजाने में ग्राम्शी द्वारा प्रतिपादित वर्चस्वता के सिद्धान्त को रेखांकित करते है। 61 ग्राम्शी कमेरों को आगाह करते है कि अगर शासक वर्ग की वर्चस्वता को तोड़ना है तो शोषित वर्ग को वैकल्पिक वर्चस्वता स्थापित करनी होगी। इसलिए उन्हें स्थापित सामाजिक–मूल्यों, संरचनाओ तथा संस्थाओं को अपने दृष्टिकोण से विश्लेषित कर खंडित करना होगा। धार्मिक वर्चस्वता का उल्लेख दलित लेखक ज्योतिबा फुले के जीवनकाल से आरम्भ कर पेरियार डॉ अंबडेकर कांशीराम तक ले जाते है तथा हिन्दूवादी वर्तमान संगठनों के छद्म को अपनी पैनी दृष्टि से चिन्हित करते है और उसके वैशिष्ट ज्ञान संकुचन को भी उजागर करते है। साथ ही ब्राह्मण सता को वे अल्पमत में बताते है। ब्राह्मणवादियों से टकराते हुए तथा उसका विनाश करते हुए दलित लेखक फुले, पेरियार तथा अंबेडकर आदि दलित एवं पिछड़े समुदाय के चिन्तकों एवं मनीषियों के विचारों को प्रेषित करते है। भारतीय राजनीति में जाति के इस्तेमाल को जहां सवर्ण ब्राह्मण लेखक मानवता का कलंक कहकर परिभाषित करते है वही दलित लेखक उसे जाति चेतना का राजनीतिकरण कहकर उसे वंचित जातियों का उत्थान तथा संरचनात्मक परिवर्तन का मार्ग कहकर परिभाषित करते है। दलित लेखक जैक्स डेरिडा की डिस्ट्रक्शन विध्वंस के सिद्धान्त के करीब पहुंच जाते है। इसके अनुसार पश्चिमी विचार केन्द्र की धारणा पर आधारित है और सभी अर्थ इस केन्द्र पर आधारित है। डेरिडा इसी केन्द्र के विध्वंस की बात करते है। दलित लेखक द्विज ब्रहमण जो केंद्र में है और दलित उपेक्षित दमित या उपान्त है। अयोग्य निष्क्रिय हैं इसको खंडित करके दलितो शोषितों के नवीन केंद्र गढ़ने लगे है। अंबेडकर ने दलितों को हर तरह के संवैधानिक अधिकार प्रदान कर दलितों को सशक्त बनाने का भरपूर प्रयास किये हैं। शिक्षा का अधिकार सम्पूर्ण भारतीय को प्राप्त है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. अम्बेडकर भीमराव विशेषांक, उत्तर प्रदेश सन्देश लखनऊ वर्ष–1 अप्रैल 1991अंक 4
2. अम्बेडकर डा. बी. आर. हिन्दू धर्म की पहेलियाँरू महाराष्ट्र सरकार (1987) अम्बेडकर डा. बी.आर. लेख एवं भाषा ग्रंथ माला का चौथा खण्ड
3. अम्बेडकर, साहब बाबा, लेख एवं भाषण सूचना जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, 1993 भीम पब्लिकेशन जलान्धर, पंजाब
4. भारती केवल डा. अम्बेडकर बौद्ध क्यों बने? बोधिसत्व प्रकाशन सिविल लाइन्स, रामपुंर (1977)
5. भूषण चन्द्र डा., डा. बी.आर. अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों पर बौद्ध शिक्षा दर्शन के प्रभावों का समीक्षात्मक अध्ययन (2001)
6. भारती केवल, डा. अम्बेडकंर एक पुनर्मूल्यांकन बोधिसत्व प्रकाशन रामपुर (1947)
7. एस.पी. ग्रेट इण्डियन एजुकेशनल किलांसफर आगरा, विनोद पुस्तक (1987)
8. रदान, डा. बी. आर. अम्बेडकर जीवन और दर्शन पंचशील प्रकाशन जयपुर, (1995)
9. एस.पी. ग्रेट इण्डियन एजुकेशनल किलांसफर आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, (1987)
10. रदान, डा. बी. आर. अम्बेडकर जीवन और दर्शन पंचशील प्रकाशन जयपुर, (1995)